'जिणदत्त चरित' को प्रकाश में लाने का श्रेय उन्हीं डा० कासलीवाल को है, जिन्होंने कुछ समय पूर्व 'प्रद्युम्न चरित' दिया था। प्राचीन हिन्दी का एक और ग्रन्थ देकर कासलीवाल जी ने हिन्दी साहित्य के इतिहास की एक और कड़ी प्रस्तुत कर दी है। 'ग्रन्थ' में रचना-काल दिया हुआ है। उससे यह प्रामाणित रचना 'सं० १३५४' की सिद्ध होती है। इसका रचयिता है 'रल्ह', जिसका पूरा नाम संभवत: 'राजसिंह' था। इस प्रकार यह ग्रन्थ बड़े महत्व का है। इसकी भूमिका में डा० माता प्रसाद गुप्त ने ठीक ही कहा है कि "जिणदत्त-चरित' अपभ्रंश एवं हिन्दी के प्राचीन रूप को भली प्रकार प्रतिष्ठित करती है।" जो भी हो, भाषा की दृष्टि से इसका अध्ययन और अधिक गंभीरता से अपेक्षित है।

......भाषा की दृष्टि से ही नहीं, वरन 'चरित काव्यों' की परम्परा और लोक कथाओं के प्रभाव की स्थिति की दृष्टि से इसका और भी अधिक महत्व है। जैन लेखकों ने किस प्रकार साहित्य-रचना में योगदान दिया, इसके मूल्यांकन के लिए भी इस ग्रन्थ की आवश्यकता थी।

......ऐसे ऐतिहासिक महत्व के इस ग्रन्थ को डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल ने डा० माता प्रसाद गुप्त के साथ भली प्रकार सम्पादित करके हिन्दी साहित्य की अभूतपूर्व सेवा की है।

डा० सत्येन्द्र

अध्यक्ष हिन्दी विभाग, राजस्थान

विश्वविद्यालय, जयपुर

जिणदत्त-चरित

(आदिकालिक हिन्दी काव्य)

रचयिता—कविवर राजसिंह

सम्पादक :

डा० माताप्रसाद गुप्त
एम. ए., डी. लिट्.

डा० कस्तूरचंद कासलीवाल
एम. ए., पी. एच. डी.

प्रकाशक :

गैंदीलाल साह एडवोकेट
मंत्री
प्रबन्ध कारिणी कमेटी, दि० जैन अ० क्षेत्र श्रीमहावीर जी
जयपुर

प्राप्ति स्थान :—

१. साहित्य शोध विभाग

महावीर भवन, सवाई मानसिंह हाईवे
जयपुर (राज०)

२. मैनेजर श्रीमहावीर जी

श्रीमहावीरजी (राजस्थान)

मूल्य ५.००

मुद्रक :
कुशल प्रिंटर्स,
गोधों का रास्ता, जयपुर

प्रथम संस्करण] जनवरी १९६६ [१००० प्रति

—: अनुक्रमणिका :—

———

प्रकाशकीय

हिन्दी पद संग्रह के प्रकाशन के कुछ मास पश्चात् ही 'जिणदत्त चरित' को पाठकों के हाथों में देते हुए अतीव प्रसन्नता है। 'जिणदत्त चरित' हिन्दी साहित्य की आदिकालिक कृति है और इसके प्रकाशन से हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक नया अध्याय जुड़ सकेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। इसके पूर्व साहित्य शोध विभाग की ओर से 'प्रद्युम्न चरित' का प्रकाशन किया जा चुका है। इस प्रकार हिन्दी के दो आदिकालिक एवं अज्ञात काव्यों की खोज एवं प्रकाशन करके साहित्य शोध विभाग ने राष्ट्र भाषा हिन्दी की महती सेवा की है। दोनों ही कृतियां प्रबन्ध काव्य हैं और हिन्दी के आदिकाल की महत्वपूर्ण कृतियां हैं। प्रद्युम्न चरित का जब प्रकाशन हुआ था तो उसका सभी ओर से स्वागत हुआ था तथा स्व० महापंडित राहुल सांकृत्यायन, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल एवं डा० सत्येन्द्र जैसे प्रभृति विद्वानों ने उसकी अत्यधिक सराहना की थी। उसी समय पंडित राहुल सांकृत्यायन ने तो हमें 'जिणदत्त चरित' को भी शीघ्र ही प्रकाशित करने की प्रेरणा दी थी लेकिन इसकी एकमात्र प्रति डा० कस्तूरचंद कासलीवाल को जयपुर के पाटोदी के मंदिर के हस्तलिखित ग्रंथों की सूची बनाते समय उपलब्ध हुई थी इसलिए दूसरी प्रति की आवश्यकता थी। इसके पश्चात् इसकी दूसरी प्रति की तलाश करने का भी काफी प्रयास किया गया लेकिन उसमें अभी तक कोई सफलता नहीं मिली। अतः एक ही हस्तलिखित प्रति के आधार पर ही इसका प्रकाशन किया जा रहा है।

जिणदत्त चरित के सम्पादन में हिन्दी के मूर्धन्य विद्वान डा० माताप्रसाद जी गुप्त अध्यक्ष हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा ने जो सहयोग दिया है उसके लिये हम आभारी हैं। डा० गुप्त जी की हमारे साहित्य शोध विभाग पर सदैव कृपा रही है। उन्होंने पहिले भी प्रद्युम्न चरित पर प्राक्कथन लिखने का कष्ट किया था।

साहित्य शोध विभाग द्वारा खोज एवं प्रकाशन का कार्य तेजी से चल रहा है और शीघ्र ही "Jain Granth Bhandars in Rajasthan" 'राजस्थानी जैन सन्तों की साहित्य साधना' पुस्तकें प्रकाशित होने वाली हैं। राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूची का पांचवा भाग भी शीघ्र ही तैयार होकर सामने आने वाला है। इसमें २० हजार से अधिक ग्रंथों का परिचय रहेगा। इस तरह और भी पुस्तकें प्रकाशित होने वाली हैं। साहित्य शोध विभाग की एक पंचवर्षीय योजना भी क्षेत्र कमेटी के विचाराधीन है। तथा खोज एवं प्रकाशन के कार्य को और भी अधिक गतिशील बनाने का प्रयास जारी है। अभी कुछ समय पूर्व भारतीय ज्ञानपीठ के व्यवस्थापक डा० गोकलचंद जी जैन जब जयपुर आये थे तब उन्होंने इस सम्बन्ध में कुछ सुझाव भी दिये थे। आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आगामी कुछ ही वर्षों में प्राचीन साहित्य की खोज एवं प्रकाशन तथा अर्वाचीन साहित्य के निर्माण की दिशा में हम पर्याप्त प्रगति कर सकेंगे।

महावीर भवन
१-१२-६५

गेंदीलाल साह एडवोकेट
अवैतनिक मंत्री

भूमिका

'जिणदत्तचरित'[1] की उपलब्धि डा॰ कासलीवाल को राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूची बनाते समय हुई थी। इसकी एक मात्र पाण्डुलिपि जयपुर के दि॰ जैन मन्दिर पाटोदी के शास्त्र भण्डार के एक गुटके में संगृहीत है। गुटके का आकार ६३/४"×८" है। इसमें ३४ पत्र हैं। प्रथम १३ पत्रों में 'जिणदत्त चरित' लिखा हुआ है। शेष २१ पत्रों में अन्य छोटी १३ रचनाओं का संग्रह है। ये कृतियां संवत् १७४३ मंगसिर बुदी ७ से लेकर संवत् १७७२ तक लिपिबद्ध हुई हैं। 'जिणदत्त चरित' का लेखन काल सं. १७५२ कार्तिक सुदी ५ शुक्रवार[1] है। यह प्रति पालम निवासी पुष्करमल के पुत्र महानंद द्वारा लिखी गई थी जो पञ्चमीव्रत के उद्यापन के निमित्त व्रतकर्ता की ओर से साहित्य- जगत् को भेंट दी गयी थी। प्रति कागज पर लिखी हुई है। लिपि सामान्यत: स्पष्ट है। प्रत्येक पृष्ठ पर सामान्यत: ३० पंक्तियाँ तथा प्रति पंक्ति में इतने ही अक्षर हैं। लेकिन प्रारम्भ के ३ पत्र मोटी लिपि में लिखे हुये है। इसी तरह अन्तिम पत्रों में लिपि किंचित् पतली हो गयी है। गुटके के पत्रों का एक छोर टेढ़ा कटा हुआ है जिससे कुछ अक्षर कट भी गये हैं।

1. सं. १७५२ वर्षे कार्तिक सुदि ५ शुक्रवासरे लिखितं महानंद पालम निवासी पुष्करमलात्मज।

> यादृशं पुस्तकं दृष्ट्वा, तादृशं लिखितं मया।
> यदि शुद्धमशुद्धं वा, मम दोषो न दीयते॥

शुभं भवेत् लेखकाध्यापकयो: ।श्रीरस्तु।
पंचमीव्रतोद्यापननिमित्तं ।शुभं।

एक

रचना का नाम

लिपिकार ने प्रारम्भ में कृति का नाम 'जिणदत्त कथा' तथा अन्त में 'जिणदत्त चउपई' लिखा है। स्वयं कवि भी अपने काव्य के सम्बन्ध में स्थिर मंतव्य नहीं रख सका है। वह भी कभी 'चरित,' कभी 'पुराण' एवं कभी 'चउपई' के नाम से रचना का उल्लेख करता है। लेकिन जैन चरित काव्यों में जीवन चरित. कथा आख्यायिका तथा धर्म कथा आदि के लक्षणों का समन्वय प्रायः हुआ है। इसलिये चरित-काव्य को कभी कभी 'कथा' एव 'पुराण' भी कहते हैं। इसी दृष्टि को ध्यान में रख कर रल्ह कवि ने भी अपने काव्य को 'चरित,' 'कथा' एवं 'पुराण' शब्दों से अभिहित किया है। 'चउपई' शब्द का प्रयोग मुख्यतः इसी छन्द में कवि ने अपनी रचना निवद्ध करने के कारण किया है जैसा कि अन्यत्र उल्लिखित चउपई-बन्ध शब्द से प्रकट है[1]। प्रस्तुत काव्य को 'चरित' नाम से कहना ही अधिक उचित रहेगा, क्योंकि कवि ने इसे प्रायः 'चरित'[2] ही कहा है और यह (चरित) धार्मिक है इसलिए इसे 'पुराण'[3] भी कहा है।

कवि परिचय

मंगलाचरण, सरस्वतीवन्दना एवं अपनी लघुता प्रदर्शित करने के पश्चात् कवि ने अपना परिचय देते लिखा है कि वे जैसवाल जाति के श्रावक

१. जत्थ होइ कुकइत्तणि अंधु, जिणदत्त रयउ **चउपई** वंधु ॥२५॥
जिणदत्त पूरी भई **चउपही**, छप्पन होणवि छहसइ कही ॥५५३॥

२ मह्लु पसाउ स्वामिनि करि तेम, जिणदत्त **चरितु** रचउ हउ जेम ॥१६॥
तउ पसाइ णाण घवरु लहउ, ता जिणदत्त **चरिउ** हउ कहउ ॥१८॥
यह जिणदत्त **चरिउ** निय कहिउ, असुह कम्मु चुइ सुह संगहइ ॥५४८॥

३. हउ अखउ जिणदत्त **पुराणु**, पढिउ न लखण छंद बखाणु ॥२०॥
मइ जोयउ जिणदत्त **पुराणु**, लाखु विरयउ अइसु पमाणु ॥५५०॥

दो

थे [1]। पाटल उनका गोत्र था। कवि के पिता का नाम 'पंचऊलीया अभइ' था जो एक स्थान पर 'आते' भी कहा गया है। किन्तु 'आते संभवतः अभि ∠अभइ से पाठ-प्रमाद के कारण हुआ है। इनकी माता का नाम 'सिरीया' था [2]। इनके पिता का संभवतः बचपन में ही स्वर्गवास होगया था और लालन पालन माता ने ही किया था, इसलिये इन्होंने माता के प्रति अपना भक्ति-भाव प्रदर्शित करते हुये लिखा है कि सिरिया माता ने इनका बड़े ही करूणा भाव से पालन किया तथा दश मास तक उदर में रक्खा जिसकी कृतज्ञता से उऋण होना संभव नहीं था। इनकी माता धार्मिक विचारों वाली थी। कवि का नाम रल्ह था लेकिन उसके कितने ही छन्दों में 'राजसिंह' अथवा राइसिंह भी नाम आए हैं संभवतः कवि का नाम राजसिंह था लेकिन उनका लघु नाम, जिससे वे जन-साधारण में सम्बोधित किये जाते रहे होंगे 'रल्ह' रहा होगा। इसलिये कवि ने अपनी इस कृति में दोनों ही नामों का उल्लेख किया है। वैसे उस युग में छोटे नामों का अधिक प्रयोग होता था। वल्ह, पल्ह, बूचा, छीहल, पूनो आदि नाम बड़े नामों के ही विकृत नाम हैं जिन्हें कवि ही नहीं किन्तु जन-साधारण भी प्रयोग में लाते थे। ग्रंथ प्रशस्तियों में ऐसे सैकड़ों नाम पढने को मिलते हैं। इसलिये यह निश्चित है कि 'रल्ह और 'राजसिंह कवि के ही दो नाम थे।

---

१. जइसवाल कुलि उत्तम जाति, वाईसइ पाडल उतपाति।
पंचऊलीया आते कउ पूतु, कवइ रल्हु जिणदत्त चरितु ॥२६॥
जो जिणदत्त कउ सुणइ पुराणु, तिसको होइ णाणु निव्वाणु।
अजर अमर पउ लहइ निरुत्तु, चवइ रल्ह अभई कउ पुत्तु ॥५५१॥

२. माता पाइ नमउ जं जोगु, देखालियउ जेहि मत लोगु।
उवरि माश दश रहिउ धराइ, धम्म बुधि हुइ सिरीया माइ ॥२७॥
पुणु पुणु पणवउ माता पाइ, जेइ हउ पालिउ करुणा भाइ।
म उवयारगु हुइसउ उरगु, हा हा माइ मज्झु जिणसरगु ॥२८॥

रचनाकाल

हिन्दी के आदिकाल की कृतियों में 'जिरणदत्त चरित' ऐसी इनी-गिनी कृतियों में से हैं जिसमें स्वयं कवि ने रचनाकाल का उल्लेख किया हो। इस दृष्टि से भी इस रचना का विशेष महत्व है। रल्ह कवि ने इस काव्य को संवत् १३५४ (सं. १२९७) भादवा सुदि ५ गुरुवार के दिन समाप्त किया था[१]। उस दिन चन्द्रमा स्वाति नक्षत्र पर था तथा तुला राशि थी। भारत पर उन दिनों अलाउद्दीन खिलजी (सन् १२९६–१३१६) का शासन था। कवि ने उस समय की राजनैतिक अवस्था का कोई उल्लेख नहीं किया है। संभवतः उसने शासन के पक्ष–विपक्ष में लिखना ही उचित नहीं समझा।

ग्रंथ प्रमाण

कवि ने काव्य के तीन स्थलों पर पद्यों की संख्या का भी उल्लेख किया है। अन्तिम दो पद्यों में पद्यों की संख्या क्रमशः ५४३ व ५४४ वीं कहीं है,[२] जबकि प्रतिलिपि कार ने इन पद्यों की संख्या ५५३ दी है। असंभव नहीं कि मूल के छंदों को प्रतिलिपिकारों ने तोड़ तोड़ कर पढा हो, इसलिए भी छंद–संख्या में कुछ वृद्धि हो गई हो। अन्य कारण भी संभव है। अतः ग्रंथ–प्रमाण हमें कवि द्वारा दिया हुआ ही स्वीकार करना चाहिए। लेकिन वे पद्य कौन से हैं जो बाद में बढा दिये गये हैं, इसका निर्णय तब तक नहीं हो सकता जबतक इस रचना की दूसरी प्रति उपलब्ध न हो।

कथा का आधार

सेठ जिनदत्त की कथा जैन समाज में बहुत प्रिय रही है। इस कथा

---

१. संवत तेरहसें चउवण्णे, भादव सुदि पंचम गुरु दिण्णे।
स्वाति नखत्तु चंदु तुलहृती, कवइ रल्हु पणवइ सरसुती ॥२९॥

२. गय सत्तावन छहसय माहि (५५२)
छप्पन हीणवि छहसय कही (५५३)

पर प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी आदि सभी भाषाओं में कृतियां मिलती है। 'अभिधान राजेन्द्र' कोश में इस कथा का उद्भव प्राकृत भाषा में निबद्ध आवश्यक कथा एवं आवश्यक चूर्णि ग्रंथों में बतलाया गया है[1]। यह कथा वहाँ चक्षुरिन्द्रिय के प्रसंग पर कही गयी है क्योंकि जिनदत पाषाण की पुतली को देखकर ही संसार की ओर प्रवृत्त हुआ था। प्राकृत भाषा में एक और रचना नेमिचन्द्र के शिष्य सुमति गणि की भी मिलती है[2]। संस्कृत भाषा में जिनदत्त चरित्र आचार्य गुणभद्र का मिलता है। यह एक उत्तम काव्य है और जिनदत्त के जीवन पर अच्छा प्रकाश डालने वाली एक सुन्दर कृति है। यह माणकचन्द्र दि० जैन ग्रंथमाला से प्रकाशित भी हो चुका है। इसके पश्चात् अपभ्रंश भाषा में 'जिणयत्त कहा' की रचना करने का श्रेय कविवर लाखू अथवा लक्ष्मण को है जिन्होंने उसे संवत् १२५७ में समाप्त की थी[3]। अपभ्रंश भाषा में रचित यह रचना जैन-समाज में अत्यधिक प्रिय रही है अतः ग्रंथ भण्डारों में इस ग्रंथ की कितनी ही प्रतियाँ उपलब्ध होती हैं। इसमें ११ संधियाँ हैं और जिनदत्त के जीवन पर सुन्दर काव्य रचना की गई है। हमारे कवि रल्ह अथवा राजसिंह ने लाखू कवि द्वारा विरचित 'जिणयत्त कहा' अथवा 'जिणयत्त चरित' के आधार पर नवीन रचना का सर्जन किया जिसका उल्लेख उन्होंने अपने काव्य के अन्त में बड़े आभार पूर्वक किया है[4]। रल्ह कवि ने लाखू कवि द्वारा विरचित

---

१. वसन्तपुरे नगरे वसन्तपुरस्थे स्वनामख्याते श्रावके, आ. क.।
वसन्तपुरे नगरे जियसत्तू राया जिणदत्तो सेट्ठी, आव, ५ अ।
आ. चू. (तत्कथा चक्षुरिन्द्रियोदाहरणे चक्खंदिय शब्दे तृतीय भागे-११०५ पृष्ठे काउसग्गा शब्दे ४२७ पृष्ठे च प्ररूपिता) पृष्ठ संख्या १४६२

२. देखिये जिनरत्न कोश – पृष्ठ संख्या- १३५

३. देखिये डा० कासलीवाल द्वारा संपादित- प्रशस्ति संग्रह पृष्ठ संख्या-१०१

४. मइ जोयउ जिणदत्त पुराणु, लाखु विरयउ अइम पमाणु।
देखि विसूरु रयउ फुडु एहु, हत्थालंबणु बुहयण देहु ॥५५०॥

रचना को 'जिणदत्त पुराण' के नाम से सम्बोधित किया है। रल्ह कवि के पश्चात् भी १५ वीं शताब्दी में दो विद्वानों ने जिनदत्त के जीवन पर अलग अलग कृतियां लिखी। इनमें प्रथम महापंडित रइधू हैं जो अपभ्रंश के भारी विद्वान थे तथा उस भाषा में रचना करना गौरव समझते थे। इसी शताब्दी में गुणसमुद्रसूरि ने संस्कृत गद्य में संवत् १४५४ में जिनदत्त कथा लिखी। इसके पश्चात् २० वीं शताब्दी में पन्नालाल चौधरी ने जिनदत्त चरित्र वचनिका 'एवं बख्तावर सिंह ने' जिनदत्त चरित भाषा (छन्द बद्ध) लिखा। इस प्रकार श्रेष्ठि जिनदत्त की कथा प्रायः प्रत्येक युग में लोकप्रिय रही है और जैन विद्वान उसके जीवन पर एक न एक रचना लिखते आ रहे हैं। रल्ह कवि द्वारा रचित 'जिणदत्त चरित' पूर्वापर समय के अनुसार चतुर्थ रचना है, इस दृष्टि से भी रचना का महत्व है। रल्ह की रचना के अनुसार जिनदत्त की जीवन--कथा निम्न प्रकार है :—

कथा सार

(५६ से ६५) जिनदत्त वसंतपुर के सेठ जीवदेव का इकलौता पुत्र था। उसकी माता का नाम जीवंजसा था। उस समय वसंतपुर पर चन्द्रशेखर नाम का राजा राज्य करता था। जीवदेव नगर सेठ था और उसकी संपत्ति का कोई पार नहीं था। जिनदत्त को खूब लाड प्यार से पाला गया था। १५ वर्ष की अवस्था में उसे पढने के लिये उपाध्याय के पास भेजा गया। वहाँ उसने लक्षण ग्रंथ, छन्द शास्त्र, तर्क शास्त्र, व्याकरण, रामायण एवं महा–पुराण पढे। इसके पश्चात् उसे अन्य कलायें सिखलाई गईं।

(६६ से ७६) युवा होने पर जब उसने विवाह करने की कोई इच्छा प्रकट नहीं की तो सेठ को बहुत चिन्ता हुई। सेठ ने नगर के जुवारियों एवं लंपटों को बुलाया और जिनदत्त को मार्ग पर लाने का उपाय करने के लिये कहा। अब जिनदत्त जुवारियों की संगति में रहने लगा और नगरवधुओं के पास जाने लगा लेकिन फिर भी उसका मन उनकी ओर नहीं झुका।

(७७ से १०५) एक दिन वह नन्दन बन गया और वहां उसने एक पाषाण की पुतली को देखा और उसकी सुन्दरता की प्रशंसा करने लगा। अब वह भी ऐसी ही किसी सुंदरी से विवाह करने की इच्छा करने लगा। जुवारियों ने जिनदत्त को जब इस मनः स्थिति में सेठ को लौटाया तो सेठ बड़ा प्रसन्न हुआ। जुवारियों ने सेठ से अपार धन प्राप्त किया। शिल्पकार को बुलाकर सेठ ने पूछा कि यह प्रतिमा किस स्त्री की थी। शिल्पकार ने बताया कि यह चंपापुरी के नगर सेठ विमलसेठ की कन्या विमलामती की प्रतिमा थी। सेठ ने चित्रकार से अपने पुत्र जिनदत्त का चित्र उतरवाया और एक ब्राह्मण को वह चित्र देकर चंपापुर भेजा।

(१०६ से १२७) विमलसेठ उस चित्र को देखकर एवं माता पिता के सम्बन्ध में जानकारी कर विमलामती का विवाह जिनदत्त के साथ करने की स्वीकृति देदी। वसन्तपुर से बड़ी धूम धाम से बारात चम्पापुर के लिये रवाना हुई। बारात में हाथी, घोडे, रथ, पालकी आदि सभी थे। दोनों का विवाह हो गया और बारात वसन्तपुर लौट आई। जिनदत्त और विमलामती सानन्द रहने लगे।

(१२८ से १४५) एक दिन पालकी में बैठकर जिनदत्त चैत्यालय जा रहा था कि उसकी जुवारियों से भेंट हो गयी। उन्होंने जिनदत्त को जुआ खेलने का निमन्त्रण दिया। जिनदत्त उनकी बात टाल न सका। वह जुआ खेलने लगे और जिनदत्त उसमें ११ करोड़ द्रव्य हार गया। जिनदत्त जब दांव हार कर घर जाने लगा तो जुवारियों ने उसे बिना रुपया चुकाये जाने नहीं दिया। जिनदत्त ने अपना आदमी अपने पिता के भण्डारी (मुनीम) के पास भेजा लेकिन उसने जुआ में हारे हुये रुपयों को चुकाने से मना कर दिया। आखिर उसे विमलावती की कांचली ६ करोड रुपयों में वेचनी पड़ी। जिनदत्त को इससे अत्यधिक दुःख हुआ। वह घर आकर विदेश जाकर धन कमाने की सोचने लगा।

(१४६ से १५८) इसी समय उसने एक चाल चली और एक झूंठा पत्र अपने श्वसुर के यहां से मंगा लिया जिसमें उसको बुलाने के लिये लिखा

हुआ था। जिनदत्त एवं विमलामती चंपापुरी के लिये चल दिये। यह उनकी पहली विदेश-यात्रा थी। विमल सेठ ने उनका अच्छा सत्कार किया। लेकिन ४–५ दिन पश्चात् ही वह उस विमलामती को चैत्यालय में अकेली छोड़कर दशपुर के लिये रवाना हो गया। पति के वियोग में विमलामती अत्यधिक रुदन करने लगी और उसके लौटने तक वह वहीं चैत्यालय में रहने लगी।

(१५६ से १७६) जिनदत्त दशपुर नगर के प्रवेश द्वार पर पहुँचा तो वहाँ के उद्यान को देखने लगा। इतने में ही वहाँ नगर सेठ सागरदत्त आया। इधर वह बागीचा जिनदत्त के आगमन से हरा होने लगा। हरी बाडी को देखकर सागरदत्त प्रसन्न हो गया और उसने जिनदत्त से उस वाडी को सुवासित एवं फलयुक्त करने को कहा। जिनदत्त ने शीघ्र ही प्रक्षाल का जल उन पेड़ों में सिंचन किया और वे शीघ्र ही हरे एवं फलवान हो गये। अब वहाँ आम, नारंगी, छुहारा, दाख, इलायची जामुन आदि के वृक्ष लहलहाने लगे। सागरदत्त उसके इन कार्यों से बड़ा प्रभावित हुआ और उसे अपने घर ले जाकर अपना धर्म-पुत्र घोषित कर दिया।

(१७७से१८६) कुछ समय पश्चात् जिनदत्त सागरदत्त के साथ व्यापार के लिये विदेशयात्रा पर रवाना हुआ। उनके साथ नगर के अनेक व्यापारी एवं १२ हजार बैलों का टाँडा था। वे जहाजों में सामान लादकर चले।

(१९०से२००) उन्हें समुद्र-यात्रा का ज्ञान था। वे हवा के प्रवाह को देखकर चलते थे। **बेरणानगर** को छोड़ कर वे कवरण द्वीप में पहुँचे। वहाँ से **भंभापाटन** चलकर **कुण्डलपुर** पहुँचे और **मदनद्वीप** में होकर वे **पाटल तिलक** द्वीप में पहुँचे। शीघ्र ही वे **सहजावती** नगरी को छोड़कर **फोफलनगरी** में प्रवेश किया। फिर वहाँ के कितने ही द्वीपों को पार करते हुये **सिंघल** द्वीप पहुँचे। वहाँ वे अनेक वस्तुओं का क्रय-विक्रय करने लगे। वे अपनी वस्तुओं को तो महँगा बेचते एवं सस्ते भावों से वहाँ की वस्तुओं को खरीदते।

(२०१से२१६) सिंघल द्वीप का उस समय घनवाहन नाम का सम्राट था। उसके श्रीमती नाम की राजकुमारी थी जो एक भयंकर व्याधिसे पीड़ित थी। जो भी व्यक्ति रात्रि को उसका पहरा देता था, वही मृत्यु को प्राप्त हो जाता था। इस कार्य के लिये राजा ने पहरे पर भेजने के लिये प्रत्येक परिवार को अवसर बांट रक्खा था। उस दिन एक मालिन के इकलौते पुत्र की वारी थी, इसलिये वह प्रातः काल से ही रो रही थी। जिनदत्त उसके करुण विलाप को नहीं सह सका और उसके पुत्र के स्थान पर राजकुमारी के पास स्वयं जाने को तैयार हो गया।

(२१७से२३२) सायंकाल को जब वह जिनदत्त राजा की पीडित कन्या के पास पहरा देने गया, तो राजा उसे देखकर बड़ा दुखित हुआ और राजकुमारी की निंदा करने लगा। जिनदत्त राजकुमारी से मिला। राजकुमारी ने उसके रूप, यौवन एवं आकर्षक व्यक्तित्व को देखकर उससे वापस चले जाने की प्रार्थना की। वे बातचीत करने लगे और इसी बीच में राजकुमारी को निद्रा आगयी। बातचीत के समय जिनदत्त ने उसके मुंह में एक सर्प देख लिया। जब राजकुमारी सो गई, तो वह श्मशान में जाकर एक नर-मुंड उठा लाया और उसे राजकुमारी की खाट के नीचे रख दिया और तलवार हाथ में लेकर स्वयं वही छिप गया। रात्रि को राजकुमारी के मुख में से वह भयंकर काला सर्प निकला। वह नर मुंड के पास जाकर उसे डसने लगा। जिनदत्त ने जब यह देखा तो उसने सर्प को पूंछ पकड़ कर घुमाया, जिससे वह व्याकुल होगया और फिर उसे पोटली में बांध कर निःशंक सोगया।

(२३३से२३९) प्रातः होने पर राजा को जिनदत्त के जीवित रहने के समाचार मालूम पड़े तो वह तुरन्त ही कुमारी के महल में आया और सारी स्थिति से अवगत हुआ। राजा ने श्रीमती के साथ जिनदत्त का विवाह कर दिया। कुछ दिनों तक वे दोनों वहीं सुखपूर्वक रहे और जब जलयान चलने लगा तो वह भी राजा से आज्ञा लेकर श्रीमती के साथ रवाना हुआ। राजा ने विदा करते हुये उसे अपार सम्पत्ति दी।

नौ

(२४०से२४३) सागरदत्त श्रीमती के रूप एवं यौवन को देखकर कामासक्त हो गया एवं उसे प्राप्त करने का उपाय सोचने लगा। उसने एक पोटली समुद्र में गिरा दी। पोटली के गिर जाने पर वह जोर २ से रोने लगा तथा उसे प्राप्त करने के लिये हाहाकार करने लगा। जिनदत्त सागरदत्त की पीड़ा को देखकर एक रस्सी के सहारे पोटली को निकालने के लिये समुद्र में उतर गया। तब सागरदत्त ने डोरी को बीच ही में से काट दिया, जिससे जिनदत्त समुद्र में रह गया।

(२४४से२५८) श्रीमती उसे डूबा हुआ जानकर विलाप करने लगी। सागरदत्त उसे मीठी २ बातों से फुसलाने लगा। लेकिन उसके शील के प्रभाव से जलयान ही डगमगाने लगा। जलयान के अन्य व्यापारियों ने सागरदत्त को खूब फटकारा तथा सब लोग श्रीमती के हाथ पैर जोड़ने लगे। आखिर जल-यान एक द्वीप पर जा लगा। फिर वह श्रीमती सागरदत्त को छोड़कर अन्य व्यापारियों के साथ चम्पापुरी चली गई और चैत्यालय में विमलमती के साथ रहने लगी।

(२५९से२९८) समुद्र में गिरते ही जिनदत्त ने भगवान का स्मरण किया। इतने में ही उसे दो लकड़ी के टुकड़े मिल गये और उनके सहारे वह एक विद्याधर-नगरी में पहुँच गया। तट पर आते हुये देखकर पहिले तो वहाँ के चौकीदार उसे मारने के लिये दौड़े लेकिन बाद में उसकी शक्ति एवं साहस को देखकर उन्होंने उसका स्वागत किया और उसे विमान में बैठाकर विद्याधरों की नगरी रथनूपुर ले गये। वहां उसका भव्य स्वागत हुआ और वहाँ के राजा अशोक ने अपनी कन्या शृंगारमती का उसके साथ विवाह कर दिया। जिनदत्त को दहेज में १६ विद्याएँ मिली तथा इनके अतिरिक्त उसने और भी विद्याएँ प्राप्त की। जिनदत्त वहाँ काफी समय आनन्द से रहा तथा अन्त में प्रस्थान की तैयारी करने लगा। राजा ने उसे काफी सम्पत्ति दी तथा एक विमान दिया। वह विमान से शृंगारमती सहित चंपापुरी में आ गया।

(२९९से३१९) वहाँ सबसे पहिले उसने वही बाडी देखी। वे दोनों उस रात उद्यान में ही ठहर गये। पहिले जिनदत्त सो गया और बाद में शृंगारमती सो गई और जिनदत्त जागने लगा। जिनदत्त ने अपनी स्त्री को अपना कौशल दिखलाने के लिये बौना का रूप धारण किया। शृंगारमती जब जगी और उसने जिनदत्त को नहीं पाया तो वह विलाप करने लगी। वह जिनदत्त का नाम लेकर रोने लगी। इतने में ही वहाँ विमल सेठ आया और उसे चैत्यालय में ले गया जहाँ विमलमती एवं श्रीमती पहिले से जिनदत्त की प्रतीक्षा कर रही थी।

(३२०से३३३) जिनदत्त बौने का रूप धारण कर नगर में अनेक कौतूहल पूर्ण कार्य करने लगा। उसने राजा से भेंट की और अपनी स्थिति पर उससे निवेदन किया। उसने कहा कि वह भूखों मरने के कारण ब्राह्मण से बौना बन गया है। उसने राजा से उसके द्वारा किये हुये कौतुक देखने की प्रार्थना की। राजा ने उसे आज्ञा देदी। वह खेल दिखलाने लगा। वह अपनी विद्यावल से आकाश में उड़ गया और अनेक ताल धर कर ताली बजाने लगा। राजा ने प्रसन्न होकर उससे पुरस्कार माँगने के लिये कहा। तब राज-सभा के किसी सदस्य ने कहा कि यदि यह विमल सेठ की तीनों लड़कियों को जो चैत्यालय में मौन रह रही थी बुला सके तब ही इसे पुरस्कार दिया जाए। बौने ने कहा कि मानव ही नहीं वह पाषाण प्रतिमा को भी बुला सकता है। फिर उसने विद्यावल से पाषाण की शिला को भी हँसा दिया।

(३३४से३४३) राजा ने फिर उससे पुरस्कार के लिये कहा। इस पर किसी अन्य व्यक्ति ने कहा कि जब तक वह विमल सेठ की तीनों लड़कियों को न हँसा दे, तब तक उसे पुरस्कार नहीं दिया जाए। जिनदत्त ने यह भी स्वीकार कर लिया और एक २ दिन उक्त तीनों में से एक २ स्त्री को बुलाने के लिये कहा। उसके कहे अनुसार बारी २ से वे स्त्रियाँ आईं और जिनदत्त ने उनकी सारी बातें बतलादीं। इससे राजा और भी प्रभावित हुआ।

(३४४से३६०) इसी समय राजा के महल का एक हाथी उन्मत हो गया और सब बंधन तोड़कर वह नगरी में स्वच्छंद फिरने लगा। चारों ओर कोलाहल मच गया। तीन दिन तक वह हाथी किसी से भी नहीं पकड़ा जा सका। लोग नगर छोड़कर भागने लगे। राजा ने घोषणा की कि जो भी वीर हाथी को वश में कर लेगा उसे वह अपनी कन्या एवं आधा राज्य देगा। बौने ने राजा की घोषणा को स्वीकार किया। बौने ने विद्या-बल से हाथी को वश में कर लिया, उसने उस पर चढ़कर खूब घुमाया और अंत में उसे ले जा कर ठाण में बाँध दिया। बौने का यह चमत्कार देखकर उपस्थित जनता ने उसकी जयजयकार की।

(३६१से३८४) बौने ने राजा से राजकुमारी के साथ विवाह के लिये कहा। राजा जिन मंदिर गया और उसने अपने गुरु से सारी बात कही। गुरु ने राजा से जिनदत्त द्वारा किये गये अबतक के कार्यों का सविस्तार वर्णन किया। फिर राजा ने बौने को वास्तविक बात बताने के लियेकहा तो वह राजकुमारी के साथ विवाह करने से इन्कार करने लगा। मंत्रियों ने राजा से बौने के साथ राजकुमारी का विवाह करने के लिये मना किया।

(३८५से४२७) मंत्रियों ने बौने से फिर अपने जीवन की सत्य कथा कहने के लिये कहा, तो उसने अपनी सारी राम कहानी कहदी और कहा कि विहार (चैत्यालय) में रहने वाली तीनों स्त्रियाँ उसकी पत्नियाँ थी। यह सुन राजाने उन स्त्रियों को बुलाने भेजा, तो वे मौन धारण कर बैठ गयीं। इस पर राजा, मंत्रीगण एवं प्रजाजन उस चैत्यालय में गये और उनसे बौने द्वारा कही हुई बात पर प्रकट करने के लिये कहा। बौने और उन स्त्रियों में खूब वाद-विवाद हुआ। तीनों स्त्रियों ने उसे अपना पति मानने से इन्कार कर दिया तथा हुप्पा सेठ की कथा कही जिसके विदेश जाने पर एक दूसरा धूर्त आकर हुप्पा सेठ बन गया था और उन स्त्रियों ने भी उसे अपना स्वामी मान लिया था।

(४२८से४४६) अन्त में तीनों स्त्रियों की उसने परीक्षा ली। उसकी परीक्षा में सफल होने के पश्चात् जिनदत्त ने अपना वास्तविक रूप धारण किया।

वह कामदेव के समान देह वाला हो गया। सभी उसके रूप को देखकर चकित हो गयीं। तीनों स्त्रियाँ उसके चरणों में पड़गई और अपनी २ कथा कहने लगी। राजा ने भी उससे क्षमा माँगी तथा अपनी राजकुमारी का विवाह उसके साथ कर दिया। राजा ने उसे अपार धन, सम्पदा, एवं हाथी घोडे आदि वाहन दिये।

(४४७से४५६) जिनदत्त कुछ दिनों तक वहां रहने के पश्चात् सागर-दत्त से मिलने गया। उसके पापोदय से हाथ-पांव गल गये थे। जिनदत्त ने उससे अपना सारा धन ले लिया और चम्पापुर से बिदा लेकर वह अपने देश वसंतपुर को रवाना हुआ। उसने अपने साथ एक बड़ी भारी सेना ली। उसकी सेना को देखकर बड़े २ राजा काँपने लगे और इस तरह वह बडे ठाट-बाट से से वसंतपुर के समीप पहुँच गया।

(४५७से४६४) वसंतपुर की प्रजा सेना को देखकर डर से भागने लगी तथा सारा नगर सेना से वेष्टित हो गया। खाइयाँ खोद कर उन्हें जल से भर दिया। चन्द्रशेखर राजा ने प्रजा को सान्त्वना दी और कहा कि जबतक उसके पास दो हाथ हैं, तबतक कोई भी शत्रु परकोटे में पैर नहीं रख सकता। चारों ओर मोर्चाबंदी होने लगी। राजा ने अपने मंत्रियों से मंत्रणा करके वास्त-विक स्थिति जानने के लिये जिनदत्त के पास दूत भेजा।

(४६५से४७४) चन्द्रशेखर का दूत जिनदत्त के दरबार में गया और उसने उसके आगे रत्नों का थाल रखकर यथायोग्य अभिवादन किया। दूत ने जिनदत्त से व्यर्थ ही प्रजा का संहार न करने एवं उचित दण्ड लेकर वापस लौटने के लिये प्रार्थना की। लेकिन जिनदत्त ने कहा कि उसे किसी प्रकार के दण्ड की आवश्यकता नहीं। वह तो नगर सेठ जीवदेव एवं उसकी पत्नी जीवंजसा को लेना चाहता है। दूत ने सेठ के पवित्र जीवन की प्रशंसा की और कहा कि संभवतः राजा ऐसे भव्य पुरुष को नहीं दे सकता। लेकिन जिनदत्त ने दूत की एक न सुनी और शीघ्र ही उन्हें समर्पित करने का आदेश दिया।

(४७५से४८६) दूत ने वापस लौटकर राजा से सारी बात कही। राजा चन्द्रशेखर ने किसी भी परिस्थिति में सेठ को देना स्वीकार नहीं किया। जब यह बात सेठ को मालूम हुई तो वह जिनदत्त को याद करने लगा और उसने अपने फूटे भाग्य को धिक्कारा। सेठ अपने ही कारण सारे नगर पर इतना संकट लेने को तैय्यार नहीं हुआ और शत्रु सेना में स्वयं जाने को तैय्यार हो गया किन्तु उसकी आंखें फडकने लगीं एवं चित्त पुलकित हो उठा जो उसको पुत्र मिलन की मानो सूचना दे रहे थे। सेठ सेठानी कुछ अन्य व्यक्तियों के साथ, पंच परमेष्ठी का स्मरण करते हुये राजा से मिलने चल दिये।

(४८७से५१२) डरते २ सेठ राजा के पास पहुँचा। जिनदत्त अपने माता पिता को देखकर प्रसन्न हो रहा था। उसने उनके मौन रहने का कारण पूछा, तो सेठ ने अपने विदेश गये हुये पुत्र के बारे में सारी बात कही। सेठानी ने कहा उसके समान उनके भी एक पुत्र था। यह सुनकर जिनदत्त उसके पैरों में गिर गया और उसकी चारों पत्नियाँ भी उसके चरणों में लिपट गयीं। माता के स्तनों से दूध की धारा बह निकली। राजा चन्दशेखर ने जिनदत्त की बड़े आदर के साथ अगवानी की और दोनों वसन्तपुर में राज्य करने लगे। कुछ वर्षों बाद जब चन्द्रशेखर का स्वर्गवास होगया तो जिनदत्त अकेला ही राज्य करने लगा।

(५१३से५४८) एक बार वसंतपुर में निर्ग्रन्थ मुनि का आगमन हुआ जिनदत्त अपनी स्त्रियों के साथ उनके दर्शनार्थ गया और उनका धर्मोपदेश सुना। इसके पश्चात् उसने अपने पूर्व भवों के बारे में जानना चाहा तो उसका भी समाधान कर दिया। संसार की असारता को जानकर उसने चारों पत्नियों सहित जिन दीक्षा ले ली और तपश्चरण कर अष्टम स्वर्ग प्राप्त किया। उसकी चारों स्त्रियाँ भी मर कर स्वर्ग गयीं।

(५४९से५५३) अन्त में कवि ने जिनदत्त चरित की प्रशंसा करते हुये लिखा है कि "जो कोई भी इस काव्य को सुनेगा, सुनावेगा, लिखेगा तथा लिखवायेगा उसे धन धान्य, सम्पदा एवं पुण्य लाभ होगा"।

जैन कथा साहित्य का स्वरूप एवं विकास

जैन कवियों एवं विद्वानों ने कथा ग्रंथों के लिखने में पूर्ण रुचि ली है। इन कथा ग्रंथों का मुख्य उद्देश्य सामान्यतः किसी पुरुष-स्त्री का चरित्र संक्षेप में वर्णित कर उसके सांसरिक सुख-दुखों का कारण उसके स्वयं कृत पाप-पुण्य के परिणाम को प्रकट करना है। धर्मोपदेश के निमित्त लघु कथाओं का निर्माण श्रमण-परम्परा में बहुत ही प्राचीन काल से रहा है। इसके अतिरिक्त कथाकारों का मुख्य उद्देश्य जगत् के प्राणियों को कल्याण मार्ग की ओर प्रेरित करने का रहा है। लघु कथाओं के स्वाध्याय में साधु एवं गृहस्थ दोनों ही विशेष रुचि लेते हैं और वे उन्हें अच्छी तरह से हृदयस्थ कर लेते हैं। इसीलिये लघु एवं वृहद् दोनों ही प्रकार के कथा काव्य हमें प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी भाषा में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। कथाओं के मुख्य विषय का वर्णन करने का ढंग प्रायः इन सभी भाषाओं में एकसा रहा है।

जैन कथा साहित्य को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं।

(१) व्रत कथा साहित्य—

एक प्रकार की कथायें व्रतों के माहात्म्य प्रतिपादित करने के लिये लिखी जाती रही हैं। ये प्रायः लघु कथाओं के रूप में मिलती हैं जिनमें किसी एक घटना को लेकर किसी पात्र-विशेष के जीवन का उत्थान अथवा पतन दिखाया जाता रहा है। कथा के मध्य में किसी संकट अथवा व्याधि विशेष के निवारणार्थ व्रत को पालन करने का उपदेश दिया जाता है। व्रत की निर्विघ्न समाप्ति पर उसके सभी कष्ट दूर हो जाते हैं और तब उसके जीवन को उदा-

हरण स्वरूप रख कर पाठकों से किसी एक व्रत विशेष को पालने का उपदेश दिया जाता है। ऐसी कथाओं में अनन्तव्रत कथा, अष्टाह्निकाव्रत कथा, रोहिणीव्रत कथा दशलक्षणव्रत कथा, द्वादशव्रत कथा, रविव्रत कथा, मेघव्रत कथा, पुष्पांजलिव्रत कथा. सुगन्धदशमीव्रत कथा, मुक्तावलिव्रत कथा, आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

(२) जीवन कथायें—

कुछ ऐसी लघु अथवा वृहद् कथायें हैं जिनमें किसी व्यक्ति विशेष के जीवन का वर्णन रहता है। इसके अतिरिक्त कुछ सामाजिक अथवा घटना-प्रधान कथायें भी लिखी जाती रही हैं। अठारह नाता कथा तथा रक्षाबंधन कथा कुछ ऐसी ही कथा कृतियां है। तीर्थंकर, आचार्य, अथवा व्यक्ति-विशेष से सम्बन्धित कथाओं में ज्येष्ठ जिनवर कथा, अकलंक देव कथा, अंजन चोर कथा, चन्दनमलयागिरि कथा, धर्म बुद्धि पाप बुद्धि कथा, नागश्री कथा, निशिभोजन कथा एवं शील कथा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। ये कथायें भी जीवन के लिये प्रेरणादायक सिद्ध हुई हैं।

(३) रोमाञ्चक कथा साहित्य—

तीसरी प्रकार की वे कथायें हैं जो किसी श्रावक एवं मुनि विशेष के जीवन पर आधारित रहती हैं और उनमें नायक के जीवन का आद्योपान्त वर्णन रहता है। इनमें अधिकांश कथायें रोमाञ्चक होती हैं जिनमें नायक द्वारा आश्चर्यजनक कार्यों को सम्पन्न किया जाता है। इसके जीवन का कभी उत्थान होता है तो कभी उसका मार्ग संकटों से अवरुद्ध दिखाई देने लगता है लेकिन नायक अपनी विशिष्ट योग्यता एवं साहस से उन्हें पार करके पाठकों की प्रशंसा का पात्र बनता है और पुण्य की महिमा का यशोगान किया जाने लगता है। ऐसी कथाओं में नायक का एक से अधिक विवाह, सिंहल-यात्रा, वन में अकेले भ्रमण करके कितनी ही अलौकिक विद्याओं को प्राप्त करना, उन्मत्तगज. को वश में करना, अपनी विद्याओं का प्रदर्शन करना आदि घटनायें मुख्य रूप

से वर्णित होती हैं जो पाठकों में नायक के जीवन के प्रति उत्सुकता बनाये रखती हैं। ऐसे रोमाञ्चक कथा-काव्यों में श्रीपाल, रत्नचूड़, जिनदत्त, नागकुमार, भविष्यदत्त, करकंडु, सनत्कुमार, धन्यकुमार, रत्नशेखर, जीवन्धर, प्रद्युम्न आदि विशिष्ट महापुरुषों के जीवन पर आधारित काव्य उल्लेखनीय हैं। ये काव्य प्रायः उपर्युक्त सभी भाषाओं में मिलते हैं। इन पुण्य पुरुषों के जीवन में घटने वाली प्रमुख घटनायें निम्न प्रकार हैं :—

श्रीपाल—

सिद्धचक्र पूजा के माहात्म्य को प्रकट करने के लिये श्रीपाल के जीवन का स्मरण किया जाता है। उसके जीवन में सर्व प्रथम कुष्ठ रोग पीड़ा की घटना आती है जिसके कारण उसे राज्य-भार छोड़कर जंगल की शरण लेनी पड़ती है। इसी बीच उसका राजकुमारी मैनासुन्दरी से विवाह हो जाता है पाप-पुण्य के अनुसार सुख-दुख की प्राप्ति होती है इस सिद्धान्त पर अटल रहने के कारण वह अपने पिता की कोप भाजन बनती है। मैनासुन्दरी अपनी पतिभक्ति एवं सिद्धचक्र पूजा के प्रभाव से श्रीपाल एवं उसके साथियों का कुष्ठ दूर करती है। श्रीपाल को नया जीवन मिलता है और वह यश एवं सम्पत्ति अर्जन के लिये विदेश जाता है वहाँ उसका कितनी ही राजकुमारियों के साथ विवाह होता है, लेकिन धवल सेठ के द्वारा समुद्र में गिराया जाना, अपने बाहुबल से उसे तैर कर पार करना, राजकुमारी के साथ विवाह होने के समय अपने विरोधियों के कुचक्रों से शूली का आदेश मिलना, पुनः दैवी सहायता से उससे भी बच जाना एवं राजकुमारी के साथ विवाह होना आदि घटनायें उसके जीवन में इस प्रकार आती हैं, इससे पाठक यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि भविष्य में नायक के जीवन में कौन सी विपत्ति एवं सम्पत्ति आने वाली है। श्रीपाल के जीवन की कथा जैन समाज में बहुत प्रिय है।

रत्नचूड़—

रत्नचूड़ कमलसेन राजा का पुत्र था। उसका जीवन भी अनेक रोमा-

रोमाञ्चक घटनाओं से भरा पड़ा है। रत्नचूड ने एक मदोन्मत्त गज का दमन किया था किन्तु वह गज के रूप में विद्याधर था अतः उसने रत्नचूड का ही अपहरण कर उसे जंगल में ला पटका। इस के पश्चात् वह नाना प्रदेशों में भ्रमण करता रहा और उसने अनेक सुन्दर राजकन्याओं से विवाह किया, अनेक विद्यायें प्राप्त की। तदनंतर राजधानी आकर उसने कितनों ही वर्षों तक राज्य सुख भोगा और अन्त में साधु जीवन अपना कर स्वर्ग लाभ लिया। रत्नचूड के जीवन पर प्राकृत भाषा में अनेक रचनायें मिलती हैं

नागकुमार—

श्रुतपंचमी व्रत के माहात्म्य को प्रगट करने के अवसर पर नागकुमार के जीवन का वर्णन किया जाता है। नागकुमार कनकपुर के राजा जयन्धर एवं रानी पृथ्वी देवी का पुत्र था। शैशव में नागों के द्वारा रक्षा किये जाने के कारण उसका नागकुमार नाम पड़ा। नाग देश में ही अनेक विद्यायें सीखकर वह युवा हुआ और वहां की सुन्दर किन्नरियों से उसने विवाह किया। नागकुमार का सौतेला भाई श्रीधर उससे विद्वेष रखता था। नागकुमार जब नगर के एक मदोन्मत्त हाथी को वश करने में सफल होगया तो श्रीधर और भी कुपित हो गया।

नागकुमार अपने पिता की सलाह मानकर कुछ समय के लिये विदेश भ्रमण के लिये चला गया। सर्व प्रथम वह मथुरा पहुंचा और वहाँ के राजा की कन्या को बन्दीगृह से निकाल कर काश्मीर पहुँचा जहां पर वीणा वादन में त्रिभुवनरति को पराजित करके उसके साथ विवाह किया। रम्यक वन में उसका काल गुफावासी भीमासुर से साक्षात्कार हुआ। कांचन गुफा में पहुँच कर उसने अनेक विद्यायें एवं अपार सम्पत्ति प्राप्त की। इसके पश्चात् उसकी गिरिशिखर के राजा वनराज से भेंट हुई और ऊर्जयन्त पर्वत की ओर उसकी पुत्री लक्ष्मी से उसने विवाह किया। नागकुमार वहां से ऊर्जयन्त पर्वत की ओर गया। वहां उसने सिन्ध के राजा चंडप्रद्योत से अपने मामा

गिरिनगर के राजा की रक्षा की और उसके बदले उसकी पुत्री से विवाह किया। इसके पश्चात् उसने अबंध नगर के अत्याचारी राजा सुकंठ का वध किया और उसकी पुत्री रुक्मिणी से विवाह किया। अन्त में उसने पिहितासव मुनि से अपनी प्रिया लक्ष्मीमती के पूर्व भव की कथा एवं श्रुतपंचमी के उपवास के फल का वर्णन सुना। श्रीधर द्वारा दीक्षा लेने के कारण उसके पिता ने नागकुमार को बुलाकर और उसे राज्य देकर स्वयं दीक्षा धारण कर ली। नागकुमार ने राज्य सुख भोग कर अन्त में साधु जीवन अपनाया और मर कर स्वर्ग प्राप्त किया। महाकवि पुष्पदंत का अपभ्रंश भाषा में निबद्ध "णायकुमार चरिउ" इस कथा की एक बहुत सुन्दर रचना है।

भविष्यदत्त—

भविष्यदत्त एक श्रेष्ठि पुत्र है। वह अपने सौतेले भाई बन्धुदत्त के साथ व्यापार के लिये विदेश जाता है वहां वह खूब धन कमाता है और विवाह भी करता है। उसका सौतेला भाई उसे बार-बार धोखा देता है और एक दिन वन में उसे अकेला छोड़कर उसकी पत्नी के साथ लौट आता है। भविष्यदत्त भी एक पथिक की सहायता से घर लौटता है और राजा को प्रसन्न करके राज-कन्या से विवाह कर लेता है। भविष्यदत्त का पूर्वार्द्ध जीवन रोमान्चक और साहसिक यात्राओं एवं आश्चर्यजनक घटनाओं से भरा पड़ा है। उत्तरार्द्ध में युद्ध एवं पूर्व भवों के वर्णन की बहुलता है। भविष्यदत्त के जीवन पर कितनी ही रचनायें मिलती हैं। इन रचनाओं में धनपाल कृत "भविसयत्तकथा" अत्यधिक सुन्दर काव्य है।

करकुण्डु—

मुनि कनकामर ने करकुण्डु के जीवन पर अपभ्रंश में बहुत सुन्दर काव्य लिखा है जो दश संधियों में विभक्त है। यह एक प्रेमाख्यानक कथा है जिसमें करकण्डु का मदनावली से विवाह, विद्याधर द्वारा मदनावली-हरण, सिंहलयात्रा, वहां की राजकुमारी रतिवेगा के साथ विवाह, मार्ग में मच्छ

द्वारा आक्रमण, विद्याधरी द्वारा करकण्डु का अपहरण एवं विवाह, रतिवेगा एवं मदनावली से मिलन की घटनाओं का रोमांचक रीति से वर्णन किया गया है। बीच बीच में अवान्तर कथायें भी वर्णित हैं। करकण्डु अन्त में साधु जीवन व्यतीत कर निर्वाण प्राप्त करते हैं।

प्रद्युम्न—

प्रद्युम्न श्री कृष्ण के पुत्र थे। रुक्मिणी इनकी माता का नाम था। जन्म की छठी रात्रि को ही इन्हें धूमकेतु असुर हरण कर ले गया और वन में इन्हें एक शिला के नीचे दबा कर चला गया। उसी समय कालसंवर विद्याधर ने इन्हें उठा लिया और अपनी स्त्री को पुत्र रूप में पालने के लिये दे दिया। प्रद्युम्न ने युवावस्था को प्राप्त होने पर कालसंवर के शत्रु सिंहरथ को पराजित किया। प्रद्युम्न का बल एवं उसकी शक्ति देखकर अन्य राजकुमार उससे जलने लगे। जिनमन्दिर के दर्शन के बहाने वे उसे वन में ले गये और उसको विपत्तियों से लड़ने के लिये अकेला छोड़ कर भाग आए। लेकिन प्रद्युम्न डरा नहीं और उनपर विजय प्राप्त कर उसने अनेकों विद्याएँ प्राप्त की। वापिस लौटने अपनी माता कंचनमाला से तीन विद्यायें चतुरता से प्राप्त की किन्तु उसके कहे अनुसार काम न करने कारण उनको माता का ही क्रोध भाजन बनना पड़ा। कालसंवर भी प्रद्युम्न को मारने की सोचने लगा लेकिन अन्त में नारद द्वारा बीच बचाव करने पर वास्तविक स्थिति का पता लगा। प्रद्युम्न द्वारिका वापस लौट आये। मार्ग में वे दुर्योधन की कन्या को बल पूर्वक छीन कर विमान द्वारा द्वारिका आए। द्वारिका पहुंचने पर सत्यभामा के पुत्र भानुकुमार को अपनी अनेकों विद्याओं से खूब छकाया। तदनंतर ब्रह्मचारी का वेश बना कर वे अपनी माता रुक्मिणी के पास पहुँचा। वहाँ उन्होंने सत्यभामा की दासियों का विकृत रूप कर दिया। इसके पश्चात् प्रद्युम्न ने मायामयी रुक्मिणी की बाँह पकड़ कर उसे श्रीकृष्ण की सभा के आगे से ले जाते हुए ललकारा। दोनों ओर की सेना आमने सामने आ डटी तथा श्रीकृष्ण एवं प्रद्युम्न में खूब घमासान युद्ध हुआ। किसी की भी हार न होने से पूर्व

नारद ने बीच में आकर प्रद्युम्न का परिचय दिया। इससे सबको बड़ी प्रसन्नता हुई और प्रद्युम्न का खूब स्वागत हुआ तथा नगर में उत्सव मनाया गया। प्रद्युम्न ने वर्षों राजसुख भोगा तथा अन्त में दीक्षा लेकर निर्वाण प्राप्त किया। महाकवि सिंह की अपभ्रंश भाषा में पज्जुण्णकहा तथा कवि सधारु कृत हिन्दी में प्रद्युम्न चरित दोनों ही सुन्दर काव्य हैं।

इस प्रकार रोमाञ्चक कथा काव्य लिखने की परम्परा जैनाचार्यों एवं विद्वानों में बहुत प्राचीन काल से रही है। इनके सहारे पाठक असद्‌गुण को छोड़कर सद्‌गुणों की ओर प्रवृत्त होता है। इन रोचाञ्चक जीवन कथाओं में बहुत सी घटनाएँ समान रूप से मिलती है जिनका कुछ वर्णन निम्न प्रकार है- —

(१) रोचाञ्चक कथा काव्यों में पुण्यपुरुषों, श्रेष्ठियों तथा राजकुमारों का जीवन वर्णित होता है। ये महापुरुष अपनी अलौकिक प्रतिभा के कारण किसी भी बड़ी से बड़ी विपत्ति का सामना करने में समर्थ होते हैं। इन कथाओं में धार्मिकता एवं लौकिकता का मेल कराया गया है। प्रत्येक नायक अन्त में साधु जीवन धारण करता है और मर कर स्वर्ग अथवा निर्वाण प्राप्त करता है। प्रद्युम्न, जिनदत्त, करकण्डु मर कर निर्वाण प्राप्त करते हैं, जबकि भविष्यदत्त, नागकुमार मर स्वर्ग जाते हैं। इस प्रकार ये कथायें शान्त रस में पर्यवसान्त हैं।

(२) सभी रोमाञ्चक कथाओं में प्रेम, विरह, मिलन का खूब वर्णन मिलता है। इससे जैन कवियों के प्रेमाख्यानक काव्य लिखने के प्रति औत्सुक्य प्रकट होता है। जिनदत्त, भविष्यदत्त, श्रीपाल, नागकुमार के जीवन में कितनी ही घटनायें घटती हैं, उनका कभी किसी पत्नी से मिलन होता है तो कभी किसीसे विरह। वास्तव में इस प्रकार की जीवन-कथाओं को १५वीं शताब्दी तक खूब महत्व दिया गया और इस तरह अनेकों कथा-ग्रंथों का निर्माण हुआ।

(३) ये काव्य युद्ध-वर्णन से भरे पड़े हैं। प्रद्युम्न के जीवन का अधिकांश भाग युद्ध में व्यतीत होता है। कभी-कभी नायक अपनी विद्याओं से युद्ध लड़ते

हैं। जिनमें सारी सेना एक बार मर भी जाती है, किन्तु युद्ध शान्त होने पर नायक उसे अपनी विद्या के बल से फिर जीवित कर देते हैं। वास्तव में ये कथायें वीर-रस से ओत प्रोत होती हैं।

(४) इन कथा-काव्यों में मदोन्मत हाथीं पर विजय, सागर को तैर कर किसी राजकुमारी से विवाह, विद्याधर कुमारियों से विवाह तथा तथा उनसे अनेक विद्याएं प्राप्त कर लेना, समुद्र-यात्रा, विदेश-गमन, यक्ष-गन्धर्व-विद्याधरों से युद्ध आदि ऐसी घटनायें है जिनमें एक से अधिक प्रत्येक नायक के जीवन में मिलती हैं।

(५) रोमाञ्चक कथा काव्यों के नायक एक से अधिक विवाह करते हैं, तथा वे सभी जातियों की कन्याओं को ले आते हैं। इसे मध्यकाल में बहु विवाह प्रथा प्रचलित होना जाना जाता है। नागकुमार एक सौ से भी अधिक राजकुमारियों से विवाह करता है।

(६) इन चरित-नायकों के जीवन में देवता, राक्षस, गन्धर्व, यक्ष, विद्याधर नाग आदि की पूरी सहायता मिलती है और कभी कभी विरोध भी सहना पड़ता है। जिनदत्त एवं प्रद्युम्न को विद्याधरों से अनेक विद्यायें प्राप्त हुई थी। इसी तरह नागकुमार को नागों से खूब सहायता मिली थी।

(७) चरित-नायकों के इन कथा काव्यों में पूर्व भवों का भी वर्णन मिलता है जिससे उनके पूर्व भव में किये गये पुन्यापुन्य का फल दर्शित होता है। बाद में वे व्रत अथवा साधु जीवन धारण करने की ओर प्रेरित होते हैं।

इसी प्रकार का जिनदत्त चरित भी एक रोमाञ्चक शैली का काव्य है जिसका अध्ययन प्रस्तुत किया जारहा है।

जिणदत्तचरित—एक अध्ययन

भाषा :—हिन्दी के आदिकाल में निर्मित एवं विकसित काव्यों में 'जिणदत्तचरित' का स्थान विशेषत: उल्लेखनीय है। इस कृति की रचना उस समय हुई थी जब यहाँ साहित्य में अपभ्रंश की प्रधानता थी। महाकवि

स्वयम्भू, पुष्पदंत, धनपाल, वीर, नयनन्दि, धवल कनकामर, लाखू. जयमित्र-हल, नरसेनदेव जैसे विद्वानों ने अपनी कृतियों से अपभ्रंश साहित्य को श्रीवृद्धि प्रदान कर रक्खी थी। वर्त्तमान भारतीय भाषाओं के साहित्य पर भी अपभ्रंश का प्रभाव बना हुआ था। विक्रमीय ग्यारहवीं से चौदहवीं शताब्दी का काल जिसे हिन्दी का आदिकाल कहा जाता है, भाषा की दृष्टि से अपभ्रंश से बहुत प्रभावित है। जिणदत्त चरित की भाषा को हम पुरानी हिन्दी के नाम से सम्बोधित कर सकते हैं। 'जिणदत्त चरित' अपभ्रंश एवं हिन्दी भाषा की एक बीच की कड़ी है। अपभ्रंश भाषा ने धीरे धीरे हिन्दी का रूप किस प्रकार लिया, यह इस काव्य से और सधारु के 'प्रद्युम्न-चरित[1]' जैसी रचनाओं से अच्छी तरह जाना जा सकता है। रचना अपभ्रंश एवं राजस्थानी बहुल शब्दों से युक्त है किन्तु हिन्दी के ठेठ शब्दों का भी उसमें प्रयोग हुआ है।

भारत पर उस समय यद्यपि मुसलमानों का शासन था लेकिन उनको साहित्य एवं संस्कृति का उस समय तक भारतीय जीवन, साहित्य एवं संस्कृति पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ा था। साहित्य में प्राय: पूर्ण रूप से भारतीयता थी। हिन्दी के काव्यों का विकास प्राय: अपभ्रंश काव्यों के अनुसरण से हुआ। १४ वीं शताब्दी तक हिन्दी साहित्य की जो रचना हुई उस पर तो अपभ्रंश का प्रभाव रहा ही, किन्तु १४ वीं के बाद लिखे गये पौराणिक एवं रोमांचक शैली के प्रबन्ध काव्यों पर भी अपभ्रंश के काव्यों का सीधा प्रभाव दिखलाई पड़ता है।

काव्य—रूप

'जिणदत्त चरित' रोमाञ्चक शैली का चरित है जिनका नायक धीरोदात्त है। वह सद्वंशोत्पन्न है, वीर है। अनेक विपत्तियों में भी नहीं

१. प्रद्युम्न चरित – संपादक डॉ. कस्तूरचंद कासलीवाल
   प्रकाशक – दि० जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी।

घबराता और उसमें सफल होकर निकलता है। अपनी सूझ-बूझ से ही वह श्रेष्ठि होकर भी राज्य प्राप्त करता है और वर्षों तक योग्यता पूर्वक शासन चलाता है। अन्त में वह वैराग्य धारण कर स्वर्ग प्राप्त करता है। महा-काव्य की जो विशेषताएं प्रस्तुत काव्य में मिलती हैं वे निम्न प्रकार हैं :—

(१) जिनदत्त का कथानक पुराण सम्मत लिखा गया है। कवि ने उसमें अपनी ओर से न कहीं जोडा है और न घटाया है।

(२) नायक एवं उससे सम्बन्धित पात्रों की पूर्व भव की कथा मुख्य कथा का एक अंग मात्र है।

(३) यह काव्य अन्त में वैराग्य मूलक एवं शान्तरस पर्यवसायी है। नायक अन्त में मुनि बनकर स्वर्ग लाभ करता हैं और उसकी चारों पत्नियां भी स्वर्ग जाती है।

(४) प्रस्तुत काव्य में अलौकिक तत्वों का समावेश हुआ है; जैसे अंजनी मूल से अपने आप को प्रच्छन्न करना, विद्याधरों से विद्याओं को प्राप्त करना, आकाश मार्ग से विमान में बैठकर जिन चैत्यालयों की वन्दना करना, अपने बाहुबल से सागर पार करना, बौना बनकर अनेक कौतुक करना तथा मदोन्मत्त हाथी को वश में करना आदि।

(५) प्रारम्भ में तीर्थंकरों की स्तुति की गयी है। सरस्वती का स्मरण एवं काव्य रचना का उद्देश्य बतलाया गया है। इसके अतिरिक्त विनम्रता का प्रदर्शन, हीनता का प्रकाशन करते हुए लोक भाषा में काव्य लिखने का हेतु बताया गया है।

इस प्रकार उक्त विशेषताओं के आधार पर 'जिणदत्त चरित' महाकाव्य कोटि में आ सकता है किन्तु इसमें वर्णनों की कमी है, शैली का चमत्कार नहीं है. और न छंद विधान में किसी प्रकार की विशिष्टता लाने का प्रयास किया गया है। इससे यह रचना एक उदात्त व्यक्ति का चरित-काव्य ही मानी जानी चाहिए।

पुन: इसे कवि ने सर्गों में विभाजित नहीं किया है। केवल जब कथा को नया मोड देना होता है तो कवि यह कह उठता है कि 'एतहि अवरु कथंतरु भयउ' (१२७) अर्थात् अब कथा का प्रभाव दूसरी ओर मुडता है। काव्य को सर्गों में विभाजित करने की परम्परा को हिन्दी में जैन विद्वानों ने बहुत कम अपनाया है। दो-चार कवियों के अतिरिक्त किसी ने भी अपनी रचनाओं को सर्गों एवं अध्यायों में विभाजित नहीं किया। जैन कवियों ने रास, वेलि, फागु, चरित, कथा, चौपई, व्याहलो, सतसई, संबोधन आदि के रूप में जो काव्य लिखे, वे प्राय: बिना सर्गों अथवा अध्यायों में विभाजित हुए रचे गये हैं। संभवत: इन कवियों का उद्देश्य कथा को बिना किसी व्यवधान के अपने पाठकों को सुनाने का रहा है।

नायक—नायिका

काव्य के नायक जिनदत्त हैं किन्तु नायिका का सम्मान किसको दिया जावे इस विषय में कवि मौन है। जिनदत्त एक नहीं चार विवाह करता है। चारों ही पत्नियां परिणीता हैं। किन्तु इन सबमें प्रथम पत्नी का अवश्य उल्लेखनीय स्थान है क्योंकि उसी के कारण जिनदत्त का चरित्र आगे बढता है तथा दूसरी एवं तीसरी पत्नी भी उसी के आश्रय में आ कर रहती हैं। इसलिये यदि नायिका का ही स्थान किसी को अवश्य देना हो तो वह प्रथम पत्नी विमलमती को दिया जा सकता है। लेकिन प्रतिनायक का पद तो किसी भी पात्र को नहीं दिया जा सकता। यद्यपि सागरदत्त सेठ उसकी पत्नी पर आसक्त होकर उसे समुद्र में डुबो देता है लेकिन यह घटना तो उसके जीवन को एक और मोड़ पर ले जानेवाली घटना है। सागरदत्त प्रारम्भ में तो जिनदत्त का परम सहायक रहा है। इसलिये इस काव्य में कोई प्रतिनायक नहीं है। घटनाओं के वश नायक का स्वयमेव व्यक्तित्व निखरता रहता है और उसमें अन्य किसी विरोधी व्यक्ति की सहायता की आवश्यकता नहीं होती।

रस

जिणदत्त चरित शांत रस का महाकाव्य है। यद्यपि काव्य में कहीं कहीं

श्रृंगार, वीर, वीभत्स रसों का भी वर्णन हुआ है किन्तु काव्य का मुख्य रस शान्तरस ही है। जिनदत्त वणिक-पुत्र है। विवाह होने के पश्चात् वह व्यापार के लिये देशाटन को निकल जाता है और उसमें अपार सम्पत्ति अर्जन कर वापस स्वदेश लौट आता हे। राजा चन्द्रशेखर और उसकी सेनाओं में जो युद्ध की आशंका होती है वह केवल आशंका मात्र बन कर ही रह जाती है। हां इतना अवश्य है कि जिनदत्त भी अपने ऐश्वर्य एवं विद्याओं के बल पर चन्द्रशेखर की उपस्थिति में आधा राज्य और उसकी मृत्यु के पश्चात् संपूर्ण राज्य का एक मात्र स्वामी बन जाता है। लेकिन इस परिवर्तन में खून की एक धारा भी नहीं बहती तथा न चन्द्रशेखर और न जिनदत्त को हथियार उठाने की आवश्यकता पड़ती है। अन्त में वह वैराग्य धारण कर स्वर्ग लाभ करता है।

श्रृंगार रस का वर्णन विमलमती के सौन्दर्य-वर्णन करने के प्रसंग में हुआ हैं। कवि ने विमलमती की सुन्दरता का अच्छे एवं अलंकृत शब्दों में वर्णन किया है। उस का वर्णन करते हुये कवि कहता है कि वह अनिंद्य सुन्दरी थी[1]। हंस के समान उसकी गति थी। वह क्रीडा करती हुई, सरोवर तट पर बैठी हुई और जल से खेलती हुई रूपराशि लगती थी। उसकी पिण्डलियों में सभी वर्ण शोभित थे मानो वे कंथु की पिंडलिया हो। कदली के समान उसकी जांघें थी तथा उसकी कटि में समा जाने वाली थी। वह मानों कामदेव का छत्र थी। उसका शरीर चंपा के समान था। वह पीन स्तनों वाली थी। उसकी उदर की पेशियां एवं कटितल फैले हुये थे। चन्द्रमा के समान उसका मुख था। उसके नेत्र दीर्घ थे तथा वह मृगनयनी थी। उसके शरीर से

सोजि सुन्दरी णयण पुत्तार।
लंतिय हंस गइ कीलमाण सरवरु वइठी।
खेलंती जल पयउ रूप रासि मइ दिठिय॥

किरणें फूटती थी। उसकी भौंहे कामदेव के धनुष के समान थी। उसकी चाल मस्ती को लिये हुये थी एवं उसकी एक झलक पाकर ही कुमुनि भी पिघल जाते थे।

सहिय समाणिय तहो भणिय, इम जंपइ सुतधारी।
तासु रूव गुण वण्णियउ, कइ रल्ह सविचार ॥९०॥
मुंदड़िय सहु कसु सोहइ पाउ, चालत हंसु देउ तस भाउ।
जाणू थाणु विहितहि घणे, तहि ऊपरि नेउर वाजणे ॥९१॥
सवई वण्णु सोहइ पिंडरी, जणु छहि ते कुंथू पिंडरी।
जंघ जुयल कदली ऊयरइ, तासु लंक मूठिहि माइयइ॥९२॥
जणु हूइ छति मणंगहु तणी, सहइ जु रंग रेह तहि घणी।
नीले चिहुर स उज्जल काख, अवरु सुहाइ दीसहि काख ॥९३॥
चंपावण्णी सोहइ देह, गल कंदलह तिण्णि जसु रेह।
पीणत्थणि जोव्वण मयसार, उर पोटी कडियल वित्थार ॥९४॥
हाथ सरिस सोहहि आंगुली, णह सु त दिपहि कुंद की कली।
भुव वल जंतु काटि जणु ठाणें, वण्णि सु रेख कविन्ह ते कहे ॥९५॥
इलोणी अरु माठी लीव, हरु सु पट्टिया सोइय गीव।
काणि कुंडल इकु सोवनु मणी, नाक थाणु जणु सूवा तणी ॥९६॥
मुह मंडलु जोवइ ससि वयणु, दीह चक्खु नावइ मियणयणि।
जहि केहो वर चाले किरणु, ज णु रि डमणी हीरा मणि छिरण॥९७॥
भउह मयण धणु खंचिय धरी, दिपइ लिलाट तिलक कंचुरी।
सिरह मांग मोत्तिय भरि चलिइ, अवरु पीठ तलि विणी रूलई ॥९८॥
नाद विनोद कथा आगनी, पहिरी रयण जडी कंचुली।
इकु तहि अत्थि देह की किरणी, अवर रल्ह पहिरइ आभरण ॥९९॥
जिम तणु वाहइ दिठि पसारि, काम बाण वसु घालइ मारि
तिह को रूपु न वण्णइ जाइ, देखि सरीर मयणु अकुलाइ ॥१००॥
माल्हंतो विलासगइ चलइ, दरसन देखि कुमुणिवर ढलइ।

वीर रस का वर्णन जिनदत्त के स्वदेश लौटने के समय हुआ है। उसके अतुल वैभव, परिजन, सेवक एवं योद्धाओं को देखकर चन्द्रशेखर राजा उसे आक्रमण कारी राजा मानकर उनका सामना करने के लिये युद्ध की तैय्यारी करने लगता है। इसी प्रसंग को लेकर कवि ने कुछ पद्य लिखे हैं जिन्हें वीर-रस से युक्त कहा जा सकता है। जिनदत्त की सेना में दश लाख घुड-सवार, छह हजार हाथी एवं असंख्य ऊंट थे। पैदल एवं धनुषधारी दश करोड़ थे जब उसकी सेना ने अभियान किया तो धूल के उडने से सूर्य का दिखना बन्द होगया और जब निशानों को जोड़कर चोट मारी गई तो उसकी ध्वनि से बहुत से नागरिक एवं राजा देश छोड़ कर भाग गये। किसी राजा ने भी उसका सामना करने का साहस नहीं किया। जब वह वसंतपुर के पास पहुँचा तो वहाँ की सारी प्रजा भागकर किले में चली गई। चारों ओर की परिखा को जल से भर दिया गया। राजा चन्द्रशेखर ने दरवाजे की रक्षा का भार स्वयं सम्हाल लिया। चारों दिशाओं में सुभट खडे हो गये [1]

१. लए तुरंग मोल दह लाख मइगल छ सहस्र करह असंख।
सहस बत्तीस जोडणि.........., चाउरंगु वलु वलु दीन पवाणु ॥४५१॥
पाइक धाणुक हइ दह कोडि, पयदल चलउ रायसिंहु जोडि।
छत्तधारी वुसि गिरि जिन्हु पाहि, ते असंख रावत दल माहि॥४५२॥
जिणदत्त चलतहि कंपइ धरणि, उत्थइ धूलि न सूझइ तरणी।
हाकि निसाण जोडि जगु हणु, अपनइ देश पलाणे घणे ॥४५३॥
कउणइ गरहिउ उटवहि थाट, क (उणइ) राय दिखालहि वाट।
दूसहू राउ ण को अंगवइ, नामु कहइ जइनी चक्कवइ ॥४५४॥
भाजइ नयर देस विमल......, पर चक भउ नवि असिऊल सहहि।
चाले कटक किए वहु रोल, अरि मंडल मणि हल्ल कलोल ॥४५५॥
ठा ठा करत जोडि नीसरइ, जाइति मगध देस पइसरहि।
परिजा भाजि गई जहि राउ, वेढिउ सो वसंतपुरु ठाउ ॥४५६॥
परिजा भाजी, गहढ महंत, लागी पउलि तिऊ भेजंत।
भयउ ढोकुलि अरु गोफणी, रचे मारु कहु सीसे घणी ॥४५७॥

जिनदत्त के चरित में साहस और वीरता के स्थल हैं; देशाटन के लिये निकल पडना, सागरदत्त की गिरी हुई पोटली के लिये उसका समुद्र में कूद पडना, तथा अन्य अनेक उदाहरण इस संबंध में दिये जा सकते हैं। कवि ने इन प्रसंगो में भाव चित्रों को प्रस्तुत करने का प्रयास अवश्य बहुत कम किया है। जिनदत्त ने जो कौतुक दिखाए हैं, वे अद्‌भुत रस की सृष्टि करते हैं। कुछ अन्य रसों का भी यत्र तत्र समावेश हुआ है।

छन्द

काव्य का मुख्य छन्द चउपई है किन्तु वस्तु बन्धछन्द का भी खूब प्रयोग हुआ है। काव्य के ५५३ पद्यों में से ५५३ चउपई छन्द एवं वस्तु बन्ध हैं लेकिन कितनी चौपई छन्द के बाद में वस्तुबन्ध छन्द प्रयोग होगा इस का कोई निश्चित सिद्धान्त कवि की दृष्टि में नहीं था। वस्तुबन्ध तथा चौपई छन्द का प्रयोग उसकी इच्छानुसार हुआ है। काव्य में दोहे छन्द का भी प्रयोग हुआ है।

समग्र रूप से रचना चउपई-बन्ध काव्य रूप में प्रस्तुत की गई है, जिससे यह प्रकट है कि उसका मुख्य छन्द चउपई है, केवल एक रसता निवारण के लिये उसमें कुछ अन्य छन्दों का समावेश भी कर दिया गया है।

वर्णन और उल्लेख

प्रस्तुत काव्य में जिन वस्तु व्यापारों का वर्णन हुआ उन्हे हम निम्न श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं:—

(१) देश एवं नगर वर्णन—

इस काव्य में मगधदेश, (३१) वसन्तनगर (४०-४२), चंपापुरी (८६-८८), दशपुर (१६०), वेणानगर (१६६), कुण्डलपुर (१६६), भंभापाटन (१६६) मदनद्वीप, पाटल द्वीप (१६६), सिंहलद्वीप २००-२०१), रथनुपुर (२६८) आदि देशों, नगरों एवं द्वीपों का वर्णन एवं उल्लेख हुआ है।

सबसे विस्तृत वर्णन मगध देश एवं वसन्तपुर का है जो हमारे नायक का जन्म स्थान था। यह वर्णन परम्परा-मुक्त है। कवि ने कहा है कि उस समय का वह सबसे सुखी एवं वैभवशाली नगर था, जहाँ घर२ में आम के पेड थे, जहाँ केला, दाख एवं छुहारा के पेड फलों से लदे रहते थे। अतिथियों का स्वागत सत्तू से किया जाता था। दुष्टों के लिए दण्ड व्यवस्था थी लेकिन वहाँ चोर-चरट कहीं भी दिखलाई नहीं देते थे। वह नगर मानों साकेतपुर था। वह धनधान्य से पूर्ण एवं ऊँचे ऊँचे महलों वाला था। सभी जातियों के लोग उसमें बसते थे। कवि ने उसे स्वर्ग का एक टुकड़ा ही कहा है[1]। इसी तरह

---

१. सवइरण पाउ वत्थ जहि ठाउ, मगह देसु तहि कहियउ णाइ ।
पामरि घरणि अवासहि चडी, जणु चइ छूटि सग्ग ते पड़ी॥३१॥
णिसुणहु देसु तण्यों व्योहार, घरि घरि सफल अंवसाहार ।
करहि राजु सकुटंवउ लोइ, परतह दुखी न दीसइ कोइ ॥३२॥
पहिया पंथ न भूखे जाहि, केला दाख छुहारी खाहि ।
गामि गामि छेते सतूकार, पहियह कूरु देहि अनिवारु ॥३३॥
गामि गामि वाड़ी अंबराइ, जइसे पाटण तेसे ठाइ ।
धम्मु विपे गरु भोयण देहि, दाम विसाहि न कोई लेहि ॥३४॥
णांकरु कूड दंड तहि चरइ, अपुणइ सुखि परजा व्यवहरइ ।
चोर नु चरडु आंखि देखिये, अरु परणारि जणणि पेखियइ ॥३५॥
मगह देसु भीतरि सुहि सारु, वासव सुग्ह अहिउ सो चारु ।
घण कण कंचण सव्व वियूर, मंदर तुंग रिहिय कय मूर ॥३६॥

वणिकु वंभण वइद वासीठ ॥
वाढइ वेसा वरुड वंदरा, विग्रारी विहारहं ।
वाणु वाह वारी वुरु वहु विहारछ जीवरखहं ॥
वरु विहारि वारिठिया वुह विडह वणिग्रार ।
तह वसंतपुरि रल्ह कइ छहि चउवीस वकार ॥३७॥

चम्पापुरी और रथनुपुर नगरों का वर्णन हुआ है। रथनुपुर के राजा की स्त्रियों से प्राचीन काल के देशों का पता चलता है[1]।

सूर सामीय साहु सोतियहि ।
सरि सरवर सावयहं सव्वल अत्थि सारंग साहणा सिऊ ।
सोहा सहियणहं सिखी संत सहीयण समाणहं ।।
दंसण सीमा सत्थवइ सत्थ सवण सुहसार ।
सुव्वस सील वसंतपुर छहि चउवीस सकार ।।
मोह मछरु माणु मायारु ।
मउ मग्गी मारणु मरविणु मलिणु मलणु जहि कोवि सीसइ ।
महु मंस मयरासहि उतहि मच्छिदु मउरउण दीसइ ।।
मूढु मुसण मंगलु मखरु जहि ण मलइ जल मीणु ।
भणइ रल्ह सु वसंतपुर वीस मकार विहीणु ।।३९।।
राज-थाणु किमु करि वण्णियइ, पच्चखु सग्गु खंड जाणियइ ।
वसइ वसंतु णयरु सो घणउ, चंदसिहरु राजा तह तणिउ ।।४०।।
चंदसेखर राजा के भवण, दिपहि त माणिक मोती रयण ।
सयलु अंतेउरु रूपनिवासु, वीस वीस सवण्हु अवासु ।।४१।।
वसहि त सयल लोय सुवियार, कंचणमइ तिन्हु कियए विहार ।
पर कहु मीचु ण वंछइ कोइ, जीव दया पालइ सब कोइ ।।४२।।
कोली माली पालहि दया, पटवा जीवकहु इंछहि मया ।
पारधो जीव ण घालहि घाउ, दया धम्मु कउ सबही भाउ ।।४३।।
बाभण खत्री अवरति चर्म, ते सब पालक सरावग धम्मं ।
मारण णाइ दियइ कलमली, जिणवरु णवहि छत्तीसउ कुली ।।४४।।

× × ×

१. तहि असोक विज्जाहर राउ, असोकसिरी राणि कहु भाउ ।
णं सुरेन्द्र जो थापिउ सुरहं, गरुव णरेंद सेवज सु करहं ।।२६८।।
साहण वाहण न मुणउ अंतु, करहि राजु मेइणि विलसंत ।

सामाजिक रीतिरिवाज—

'जिनदत्त चरित' के अध्ययन से प्राचीन सामाजिक रीति-रिवाजों का भी थोड़ा आभास मिलता है। विवाह सम्बन्ध निश्चित करने के लिये ब्राह्मण जाया करते थे[1]। वे ही लड़की को देखकर सम्बन्ध निश्चित कर दिया करते

अंतेउरु चउरासी राणि, तिन्हु के नाम रल्हु कवि जान ॥२६९॥

कानडि गूजरि अरु मरुहटी, लाडि चोडि दक्षिण सोरठी।
पूरविणी कणवजि बंगालि, मंगाली तिलंग सुरतारि ॥२७०॥

दवडी गउडी करणा भणी, रूपादे कंचणदे घणी।
उपमादे मामादे नारि, अचामउ सुतमउ रूव मुरारि ॥२७१॥

चित्तरेह तहिवर सो रेख, कित्तरेख जणु सोवन रेख।
गुणगा सुग्गा नवरस देइ, भोगमती गुणमती भणेइ ॥२७२॥

उरभादे रंभादे कांति, विहमणदे अछइ विलसंति।
सुमयादेवि रूरसुन्दरी, पदमावती मयणसुन्दरी ॥२७३॥

मारोगा कन्हादे राणि, सावलदे मुहगींदे जाणि।
रेह सुमई सुय पदवणि, भोगविलासनि हंसागमणि ॥२७४॥

दरसणिदे सुखसेणावलि, तारादे कहु रल्ह सभालि।
मंदोवरि अरु चंद्रामती, हीरादे राणी रेवती ॥२७५॥

सारंगदे अरु चंद्रावयणि, वीरमदे राणी भावती।
गंगादे राणि गजगमणि, कमलादे अरु हसागमणि ॥२७६॥

मुक्तादेवि रूव आगली, चित्तिणि हंसिणी अरु पद्मिनि।
सोनवती वरंगत हो घणी .... ॥२७७॥

अवली वाला पोढा तिरी, पियसुंदरी सुमइल मनपुरी।
मोरवती रामा अविचार, भोगवती कइलास कुमारि ॥२७८॥

श्रीवसंतमाला सोभाष, हरइ चित्त कामिणी कडाष।
सव्वइ दानि दारिद्रु घालहि, सव्वइ असोइराय बालही ॥२७९॥

× × ×

१. विप्पु एक कउ आइसु भयउ, सो पड़ लइ चंपापुरि गयउ।
भेटिउ विमलमती सा वात, देइ अमोल पड छोडि दिखाल ॥१०५॥

थे। वे कभी-कभी अपने साथ लड़के का चित्र भी ले जाते थे। बारात खूब सज-धज के साथ निकलती थी[1]। बारात की खातिर भी खूब की जाती थी। विवाह में ज्यौनार होती थी। विवाह मण्डप में होता था जहां चौक पूरा जाता था। स्त्रियां माङ्गलिक गीत गाती थीं। दहेज देने की प्रथा तब भी खूब थी। जिनदत्त को चारों विवाहों में इतना अधिक दहेज मिला कि उससे सम्हाले न सम्हाला गया[2]। पुत्र जन्म पर खूब खुशियां मनायी जाती थी। गरीबों अनाथों और अपाहिजों को उस अवसर पर खूब दान दिया जाता था। जिनदत्त के जन्म पर उसके पिता ने दो करोड़ का दान दिया था[3]। भविष्यवाणियों पर विश्वास किया जाता था। राजा महाराजा कभी २ अपनी कन्याओं का विवाह भी इन्हीं भविष्यवाणियों के आधार पर कर दिया करते थे। समाज में बहु विवाह की प्रथा थी। राजागण तो अनेक विवाह करते ही थे, बड़े-बड़े सेठ साहूकार एवं व्यापारी भी चार-चार पाँच-पांच विवाह तक कर लिया करते थे और इन्हें कोई बुरा भी नहीं बतलाता था। जिनदत्त ने चार विवाह किये और तब भी उसका भारी स्वागत हुआ। जिस समय को ध्यान में रखते हुए कथा

१, पंच सबद वाजेवि तुरंतु, वहु परियणु चाले सु वरातु ॥१२०॥
एकति जाहि सुखासण चढे, एकतु वाखर भीडे तुरे।
एकतु साजित सिगरी घरी, एकणु साजि पलाणी वरी ॥१२१॥
एकति डाडी डोला जाहि, एकति हस्त चढे विगसाहि।
एकति जाहि विवाहणु वइठ, सवु मिलि चंपापुरीहि पइठ ॥१२२॥
चंपापुरि कोलाहलु भयो, आगइ होनि विमलु आइयो।

\+ \+ \+ \+

२. राय मोय पुणु नीकउ कीयउ, कडइ चूड करि मंडिय धीय।
अरु मनु चिंतिउ दिन्नु विमाणु, तहि दियइ रयण अपमाण ॥२६५॥

× × × ×

३. देहि तंबोल त फोफल पाण, दीणे चीर पटोले पाण।
पूत वेधाए नाहीं खोरि, दीने मेठि दाम दुइ कोडि ॥६१॥

की रचना की गई है उस समय सामाजिक बन्धन कम ही था। जिनदत्त के विवाह अपनी ही जाति तक सीमित न रह कर अन्य जातियों में भी हुए थे।

नगर में जुआरी होते थे एवं वेश्यायें होती थीं। कभी २ भद्र व्यक्ति भी अपने लड़कों को चतुर एवं गार्हस्थ जीवन में उतारने के पहले ऐसे स्थानों में भेजा करते थे। जिनदत्त को कुछ दिनों तक ऐसे व्यक्तियों की छाया में रखा गया था। ऐसे ही लोगों का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है :—

वार वार वेसा घरि जाहि, अरु जूवा खेलत न अघाहि।
चोरी करत न आलसु करइ, गांठ काटि अंतरालइ धरइ॥
जिन कै दव्व गइय तिन्हु दिठि, सो जगु कियउ आपुर्णा मुठि।
गंजणु कूडू मारि जिणु सही, तिणि सहु सेठि वात सहु कही॥

समाज में जुआ खेलने की प्रथा थी और उसे समाज विरोधी नहीं समझा जाता था। उनके बड़े बड़े केन्द्र थे, जहां भोले भाले एवं नवसिखिये व्यक्ति फँस जाया करते थे। जिनदत्त भी एक बार में ११ करोड का दांव हार गया था[1]। हारे हुए पैसो को दिये बिना जुवारियों से मुक्ति मिलना सभव नहीं था।

विद्याध्ययन की प्रथा थी किन्तु कभी-कभी १४-१५ वर्ष होने के बाद उसे उपाध्याय के पास भेजते थे। शिक्षक को उपाध्याय कहते थे। वहां उसे लक्षण ग्रंथ, छंद शास्त्र, न्याय शास्त्र, व्याकरण, रामायण, महाभारत, भरत का नाटय शास्त्र, ज्योतिप, तंत्र एवं मंत्र शास्त्र आदि की शिक्षा देते थे। विद्याध्ययन के पशचात् उसे शस्त्र चलाना भी सिखाते थे जिससे वह समय आने पर अपनी आत्म रक्षा भी कर सके।

समाज में जातियों एवं उप जातियों की संख्या पर्याप्त थी। कवि ने

१. खेलत भई जिणदत्तहि हारि, जूवारिन्हु जीति पच्चारि।
भणइ रल्हु हमु नाहीं छोडि, हारिउ दव्वु एगारह कोडि॥१३०॥

अपने काव्य में २४ प्रकार की 'वकार' एवं २४ प्रकार की 'सकार' नाम वाली जातियों के नाम गिनायें है जो उस समय वसंतपुर में रहती थी। उस नगर की एक और विशेषता यह थी कि २० प्रकार की 'मकार' वाली जातियाँ वहाँ नही थी जिन से उस नगर का वातावरण सदैव शांत एवं पवित्र रहता था।

प्राकृतिक सौन्दर्य वर्णन

काव्य में प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन भी यत्र तत्र मिलता है। कवि को पेड पोधों एवं फल-पुष्पों से अधिक प्रेम था इसलिये उसने नगर-वर्णन के साथ उनका भी वर्णन किया है। सागरदत्त सेठ के उद्यान में विविध पौधे थे। अशोक एवं केवडा के वृक्ष थे। नारियल एवं आम के वृक्ष थे। नारंगी, छुहारा, दाख, पिंडखजूर, सुपारी, जायफल, इलायची, लोंग आदि कितने ही फलों के नाम गिनाये हैं पुष्पों में मरुआ, मालती, चम्पा, रायचम्पा, मुचकन्द, मोलसिरि, जपापुष्प, पाडल, कठ पाडल, गुडहल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार का वर्णन हिन्दी की वहुत कम रचनाओं में मिलता है। सधारु कवि ने भी आगे चलकर प्रद्युम्नचरित (सं. १४११) में भी इसी तरह का अथवा इससे भी विशद वर्णन किया है। परवर्त्ती अपभ्रंश काव्यों में भी ऐसे वर्णनों की प्रमुखता है।

रल्ह कवि ने इन वृक्षों पौधों एवं लताओं के नाम उनकी विशेषता सहित गिनाये हैं। कवि के शब्दों में ऐसा ही एक वर्णन देखिये:—

> जो असोक करि थविकउ सोगु, अन पर परितहि दीनउ भोगु।
> जो छउ कमिर रहिउ केवडउ, सिचिउ खीर भयो रूवडउ ॥१६६॥
> जे नालियर कोपु करि ठिए, तिन्हइं हार पटोले किए।
> जे छे सूकि रहे सहकार, तिन्हु अंकवाल दिवाए वाल ॥१७०॥
> नारिंगु जंबु छुहारी दाख, पिंडखजूर फोफिली असंख।
> जातीफल इलायची लवंग, करणा भरणा कीए नवरंग ॥१७१॥

काथु कपित्थ वेर पिपली, हरड बहेड खिरी आवली ।
सिरीखंड अगर गलींदी धूप, एरहि नारि तहि ठाइ सरुप ।।१७२।।
जाई जुहि वेल सेवती, दवणा मरुवउ अरु मालती ।
चंपउ राइचंपउ मचकुदं, कूजउ वउलसिरी जासउदु ।।१७३।।

इसी तरह जब चंपापुरी में मदोन्मत्त हाथी अपने बंधन तोडकर राज-पथ पर विचरण करने लगा, उस समय का भी कवि ने अच्छा वर्णन गिया है । कवि ने कहा कि वह मद विह्वल हाथी अंकुश को नहीं मान कर, खम्भ को उखाड़ कर सांकल के टुकड़े२ कर दिये । उसके दांत एवं सूंड भूमि को भयंकर रूप से खोद रहे थे । उसको बड़े २ वीर पकड़े हुये थे । उसकी भयंकर चीत्कार थी । भ्रमरों की पंक्ति उसके पास मंडरा रही थी । लोग उसे साक्षात् काल ही समझने लगे थे । लोग टीलों पर जा चुके थे । इसी वर्णन का अंश देखिये:—

मय भिमलु गउ अंकुस मोडी खंमु उपाडि दंतू सलि तोडि ।
सांकल तोडि करि चक चूनि, गयउ महावतु घर कौ पूतु ।
गयउ महावत्थु एयरी जित्थ,. गज भूडउ भऊ अखइ तत्थु ।
हउ उवरिउ जुन खूटउ कालु, तउ मूडिउ तोडितु भालु ।।

इस प्रकार के वर्णनों से ज्ञात होता है कि कवि में वर्णन करने की यथेष्ट क्षमता थी, यद्यपि उसने उसका उपयोग सीमित ही परिमाण में किया है ।

रोमाञ्चक तत्व

काव्य में रोमाञ्चक कार्यों का विस्तृत वर्णन मिलता है । सर्व प्रथम जिनदत्त ने अजनीमूल जड़ी के सहारे अपने आप को प्रच्छन्न कर लिया । जब वह समुद्र तैर कर रथनूपुर पहुँचा तो उसका विद्याधर कुमारी से विवाह हुआ और दहेज में सोलह विद्याएँ प्राप्त हुई । इनमें जलगामिनी, बहुरूपिणी,

जलसोखणी, जलस्तंभिनी, हृदयालोकिनी, अग्निस्तंभिनी, सर्वसिद्धि विद्याता-रिणी, पातालगामिनी, मोहिनी, अंजणी, रत्नवर्षिणी, शुभदर्शिनी, बज्रणी आदि विद्याओं के नाम उल्लेखनीय हैं। जिनदत्त ने वहां तिमिरदृष्टि विद्या अणीबंध एवं सर्वौषध विद्याएँ भी प्राप्त की थी। विद्याबल से ही उसने विमान बनाया और अकृत्रिम चैत्यालयों की वन्दना की [1]। चम्पापुर पहुँच कर वहाँ राज दरबार में बौने के रूप में जो उसने अपनी विद्याओं का प्रदर्शन किया और मदोन्मत्त हाथी को वश में किया वह सब उसकी प्राप्त विद्याओं के आधार पर ही था। जैन काव्य एवं पुराणों में इसी तरह की विद्याओं का बहुत वर्णन मिलता है। जैन काव्यों के नायक प्रायः ऐसी विद्याएँ प्राप्त करते हैं और फिर उनके सहारे कितने ही अलौकिक कार्य करते हैं।

विदेश यात्रा

कवि के समय में भारत व्यापार के लिए अच्छा माना जाता था। व्यापारी लोग समूह बनाकर तथा बैलों पर सामान लाद कर एक देश से दूसरे देश एवं एक नगर से दूसरे नगर तक जाया करते थे। कभी नावों से यात्रा करते तो कभी जहाज में चढ कर व्यापार के लिये जाते। इस व्यापारिक यात्रा के समय एक प्रमुख चुन लिया जाता था और उसी के आदेशानुसार सारी व्यवस्था चलती थी। जिनदत्त जब व्यापार के लिए निकला तो रचना के अनुसार उसके संघ में १२ हजार बैल थे एवं अनेक वणिक-पुत्र थे। सिंहल द्वीप उस समय व्यापार के लिये मुख्य आकर्षण का केन्द स्थान था। वहां जवाहरात का खूब व्यापार होता था। लेन देन वस्तुओं में अधिक होता था। सिक्कों का चलन कम ही था। ऐसे अवसरों पर व्यापारी खूब मुनाफा कमाते थे। नाविक एवं जहाज के कप्तान जलजंतुओं का पूरा पता लगा लिया

---

१. आयउ जगमगंतु सो तित्थु, जीवदेव नंदणु हइ जित्थु।
विज्जा चवइ निसुणि जिणदत्त, वंदि अकिट्टमि जिणमलचतु ॥

करते थे। वे अपने साथ मुद्गर एवं लोहे की सांकल भी रखा करते थे। समुद्र में बड़ बड़े मगर रहते थे, उनसे बचने का उपाय भी वे लोग भली प्रकार जानते थे। व्यापारिक यात्रा से वापिस लौटने पर उनका राजा एवं प्रजा द्वारा बडा स्वागत-सत्कार किया जाता था। उन्हें उचित रीति से सम्मानित करने की भी प्रथा थी।

इस प्रकार जिणदत्त हिन्दी के आदिकाल की एक उत्कृष्ट रचना है आशा है उसको हिन्दी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त होगा।

ग्रंथ सम्पादन

'जिणदत्त चरित' की पर्याप्त खोज करने के पश्चात् भी कोई दूसरी प्रति उपलब्ध नहीं हो सकी। इस कारण इसका सम्पादन एक ही प्रति के आधार पर किया गया है और इसी कारण से इसके पाठ-भेद आदि नहीं दिये जा सके। फिर भी हमें संतोष है कि ऐसे प्राचीनतम हिन्दी काव्य का सम्पादन एवं प्रकाशन हो सका है। मूल प्रति प्रारम्भ में काफी स्पष्ट लिखी हुई है लेकिन अन्त के कुछ पृष्ठ प्रतिलिपिकार ने संभवतः जल्दी में लिखे हैं। इसलिये उसने प्रारम्भ के समान आगे प्रत्येक पद्य के आगे संख्या भी नहीं दी है। फिर भी प्रति सामान्यतः शुद्ध एवं स्पष्ट है। पाठकों की सुविधा के लिये मूल ग्रंथ का हिन्दी अर्थ भी दे दिया गया है तथा पद्यों के नीचे महत्वपूर्ण शब्दों के अर्थ एवं उनकी उत्पत्ति तथा अन्त में विस्तृत शब्दकोश अर्थ सहित दिया गया है। हिन्दी शब्दकोष के विद्वानों को इस काव्य में कितने ही नये शब्द मिलेंगे जिनका संभवतः अभी तक अन्य काव्यों में उपयोग नहीं हुआ है।

जिणदत्त चरित के समान राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों में और भी महत्वपूर्ण काव्य उपलब्ध हो सकेंगे ऐसा हमारा विश्वास है इसलिये इस दिशा में विशेष प्रयत्न की आवश्यकता है।

आभार :—

हम श्रीमहावीर क्षेत्र कमेटी एवं उसके अध्यक्ष महोदय कर्नल डा० राजमलजी कासलीवाल तथा मंत्री श्री गेंदीलालजी साह एडवोकेट के आभारी हैं जिन्होंने इस को अपने साहित्यशोध विभाग से प्रकाशित राया है। क्षेत्र के साहित्यशोध विभाग की ओर से प्राचीन हिन्दी रचनाओं के प्रकाश में लाने का जो महत्वपूर्ण काम हो रहा है उसके लिये सारा हिन्दी जगत उनका कृतज्ञ है। क्षेत्र के स हित्य शोध विभाग के अन्य विद्वान् श्री अनूपचंद न्यायतीर्थ, सुगनचंद जैन एवं प्रेमचंद रांवका के भी हम आभारी हैं जिन्होंने इस ग्रन्थ के प्रकाशन में अपना महत्वपूर्ण सहयोग दिया है। श्री दि० जैन मन्दिर पाटोदी जयपुर के शास्त्र भण्डार के व्यवस्थापक श्री नाथूलालजी बज के भी हम कृतज्ञ हैं जो अपने शास्त्र भण्डार की हस्तलिखित प्रति देकर इस काव्य के प्रकाशन में सहायक बने है। अन्त में हम श्री पं० चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ के प्रति पूर्ण आभार प्रदर्शित करते हैं जिनकी सतत प्रेरणा ही इस ग्रन्थ के प्रकाशन में महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है।

माताप्रसाद गुप्त
कस्तूरचंद कासलीवाल
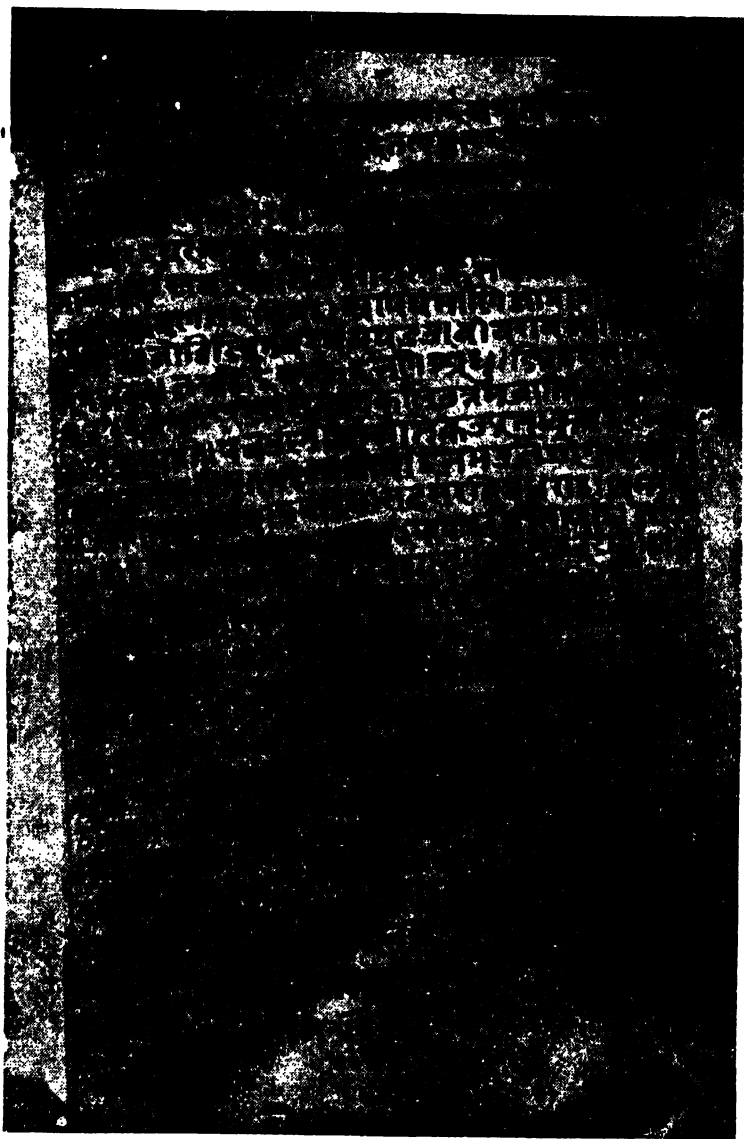
जिणदत्त चरित की पाण्डुलिपि का एक चित्र

जिणदत्त चरित

(स्तुति - खण्ड)

(वस्तुबंध)

[१]

णविवि जिणवर आसि जे वित्त ।

रिसहाइं धम्मुद्धरण, णविवि तं जि गय कालि होसहि ।
सइ सत्थहि खित्ति पुणु, ताहं णविवि जं कम्मसोहहिं ।।

णाहिणरेसरु सुउ रिसहु, वरिसिउ धम्म पवाहु ।
सो जय कारणि रल्ह कइ, आइ-अणाहु जगणाहु ।।

अर्थ :—धर्म का उद्धार करने वाले जो ऋषभादि वर्तमान तीर्थंकर है, उन्हें नमस्कार करके तथा जो तीर्थंकर हो गये हैं और जो भविष्य में होंगे, उन्हें नमस्कार करके तथा उनके साथ (संघ) में पृथ्वी तल पर जो कर्मों का शोषण करने वाले सिद्ध हुए, उन्हें नमस्कार करके नाभि नरेश के सुत जिन ऋषभदेव ने धर्म-प्रवाह की वर्षा की रल्ह कवि ऐसे जय के कारण स्वरूप जगत् के नाथ आदिनाथ (को नमस्कार करता है) ।

आसि – अस् – होना । वित्त : (वि० प्रसिद्ध, विख्यात) अथवा वृत : वि० उत्पन्न, संजात, प्रतीत । रिसहु – ऋषभ । सोहहिं-सोह – शोषय । सुउ – सुत । कइ – कवि । आइ-अणाहु – आदिनाथ ।

[२]

संजमु नेमु धम्मु तसु जाणु, जो णिसुणइ जिणदत्त पुराणु ।
संपत्ति पुत्त प्रवर जसु होइ, महियलि दुक्खु न देखइ कोइ ।।

अर्थ :—जो इस जिनदत्त पुराण को सुनता है (जीवन में) संयम, नियम और धर्म उसको (प्राप्त हुआ) जानो। उसको वैभव, सन्तान तथा यश (का लाभ) होता है तथा वह पृथ्वी पर कोई भी दुःख नहीं देखता है।

संजमु पु० (संयम) – हिंसादि पाप कर्मों से निवृति - दश धर्मों में से एक धर्म। नेमु – नियम धर्म, व्रत उपवास आदि।

[३]

जय जगणाह रिसीस जिणंद, णवहि अजिय गय गणहरविंद ।
जिणु, संभव अहिणंदण देउ, सुमइनाहु पणवउं गय लेउ ।।

अर्थ :—जगत् प्रभु ऋषभ जिनेन्द्र की जय हो तथा गणधरों द्वारा पूजित अजितनाथ के चरणों में नमस्कार हो। जिनेन्द्र संभवनाथ, अभिनन्दनदेव, सुमतिनाथ को प्रणाम करता हूँ जो गत लेप (निष्पाप) हुये हैं।

रिसीस – ऋषभेश, ऋषमदेव स्वामी। गणहरविंद – गणधरवृंद। गय लेउ – गतलेप–चला गया है पाप जिसका।

[४]

पउमप्पहु सामिय दुहहरण, जिण सुपासु जण असरण सरण ।
चंदप्पहु समचित्त सहाउ, पुप्फयंतु सिवपुरि कउ राउ ।।

अर्थ :—पद्मप्रभ स्वामी दुःखों का हरण करने वाले हैं तथा सुपार्श्वनाथ

जिनेन्द्र अनाथों को शरण देने वाले हैं। चन्द्रप्रभ स्वामी शान्त चित्त एवं शान्त स्वभाव वाले हैं तथा पुष्पदंत मोक्ष नगरी के राजा हैं।

पउमप्पहु – पद्मप्रभ। सामिय – स्वामी। सहाउ – स्वभाव। सिवपुरि – शिवपुरी–मोक्षनगरी।

[५]

जिण सीयलु अरु सीयल वयणु, तुहु सेयंस जयत्तय सरणु।
वासुपुज्ज अरुणेइ सरीरु, जय जय विमल अतुल बलवीर ॥

अर्थ :—और शीतलनाथ जिनेंद्र शीतल वचन वाले हैं तथा हे श्रेयांसनाथ, तुम तीन-जगत के शरणभूत हो। वासपूज्य स्वामी, तुम लाल रंग के शरीर वाले हो तथा अतुल बल के धारक हे विमलनाथ तुम्हारी जय हो।

सीयलु – शीतल। जगत्तय – जगत्रय।

[६]

जिणु अनंतु तिहुवण जगत्तणु[1], धम्मु धम्म उद्धरण समत्थु।
जय पहु संतिणाह दुह हरण, जय जय कुंथु जीव दय करण ॥

अर्थ :—अनन्तनाथ जिनेंद्र जो तीनों लोकों तथा जगत के स्वामी हैं, धर्मनाथ जो धर्म का उद्धार करने में समर्थ हैं, शान्तिनाथ जो जगत के नाथ हैं तथा दुःखों का हरण करने वाले हैं तथा जीवों पर दया करने वाले कुंथनाथ स्वामी की जय हो।

तिहुवण – त्रिभुवन। धम्मु – धर्मनाथ। समत्थु – समर्थ। पहु – प्रभु। १. मूलपाठ 'जगणाहु' है।

[७]

अरु अरिकम्म दप्पु जिह हरिउ, मल्लिरणाहु सुर रिगयरें नमिउ ।
मुरिणसुव्वउ जिरण गुरण की रासि, रणमि[1] जिरणवरु खलु दोसहु रणासि ।।

अर्थ :—अरहनाथ जिन्होंने कर्म शत्रु के दर्प का हरण किया है, देवताओं के द्वारा पूजित माल्लिनाथ को नमस्कार हो, मुनिसुव्रत जिनेन्द्र जो गुणों की राशि हैं तथा नमि जिनेन्द्र निश्चय ही दोषों को नाश करने वाले हैं ।

नियर – निकर-समूह । १. मूलपाठ 'रणवि' है ।

[८]

समद विजय सुतु रोमि जिरांदु, पासरणाहु पय परसइ इंदु ।
धर सिरु लाइ राइसिहु कवइ, बहुफलु वीरणाहु जो रणवइ ।।

अर्थ :—समुद्रविजय के पुत्र जिनेंद्र नेमिनाथ तथा पार्श्वनाथ जिनके चरणों का स्पर्श इन्द्र करता है (इन सभी को नमस्कार है) । कवि राजसिंह (रल्ह) साष्टांग नमस्कार करके कहता है कि सबसे अधिक फल उसे होता है जो भगवान् वीरनाथ (महावीर) को नमस्कार करता है ।

परसइ – स्पृश-स्पर्श करना ।

[९]

चउवीसइ सामिय दुह हरण, चउवीसइ मुक्के जर मरण ।
चउवीसहु मोक्खहु कउ ठाउ, जिरण चउवीस नमउ धरि भाउ ।।

अर्थ :—चौबीसों स्वामी (तीर्थंकर) दुःखों के हर्ता हैं, सभी चौबीस जरा एवं मरण से मुक्त हो चुके हैं । सभी चौबीस मोक्ष के निवासी हैं इसलिये सभी चौबीस तीर्थंकरों को भाव धारण कर (भाव पूर्वक) नमस्कार करता हूं ।

मुक्के – मुक्–मुच्–छूटना, मुक्त होना । ठाउ – स्थान ।

[१०]

चक्केसरि रोहिणि जयसारु, जालामालणि अरु खेतपालु ।
अंबिमाइ तुव नवऊ सभाइ, पवमावती कइ लागउ पाइ ।।

अर्थ :—देवी चक्रेश्वरी, रोहिणी, ज्वालामालिनी तथा क्षेत्रपाल (देव) की जय हो। माता अम्बिका को भी भावपूर्वक नमस्कार करता हूँ तथा पद्मावती देवी के पांय लगता हूँ।

सभाइ – स+भाव–भावपूर्वक ।

[११]

जे चउवीस जक्ख[1] जक्खिणी, ते पणमउ सामिणि आपुणि ।
कुमइ कुबुधि वेवि महु हरहु, चउविह संघह रष्या करहु ।।

अर्थ :—जो चौबीस यक्ष यक्षिणियां हैं, (तथा जो) स्वयं ही (जिन शासन) की स्वामिनी हैं उन्हें नमस्कार करता हूँ। हे देवियों, मेरी विकृत मति एवं विकृत बुद्धि का हरण करो तथा चतुर्विध संघ की रक्षा करो।

जक्ख – यक्ष। कुमइ – कुमति। सामिणी – स्वामिनी। रष्या – रक्षा। चउविहसंघह – चतुर्विध संघ–मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका इन चारों का संघ कहलाता है। १. 'जख' मूलपाठ है।

[१२]

इंव वहण जम णेरिउ जाणु, वरुणु वाय धणदुवि ईसाणु ।
पणमउं पोमिणिवइ धरणिंदु, रोहिणीकंतु जयउ णहिचंदु ।।

अर्थ :—इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋत, वरुण, वायु, कुबेर तथा ईशान तथा पद्मावती देवी के पति धरणेंद्र को नमस्कार करता हूँ तथा रोहिणी देवी के स्वामी चन्द्रदेव की जय हो।

इस पद्य में कवि ने दशों दिशाओं के दश दिग्पालों को नमस्कार किया है।

इंद – इन्द्र। दहण – अग्नि। जम – यम। णेरिउ – नैऋत। वरुणु – जल। वाय – वायु, पवन। धणदु – धनद-कुबेर। ईसाणु – ईशान। पोमिणिवइ पद्मिनी – (पद्मावती)। धरणिंदु – धरणेंद्र। चंदु – सोम।

१. इन्द्रो वह्नि : पितृपति, नैऋतो वरुणोमरुत ।
कुबेर ईश : पतय : पूर्वादीनामनुक्रमात् ।। अमरकोश ।

[१३]

सूर सोम मंगल दुह डहउ, बुहु विहप्पइ सुह विच्छरउ ।
सुक्क राहु सनि केउ[1] गरिठ, ए णव गह जिण आगम सिठ ।।

अर्थ :—रवि, सोम, मंगल दुःखों को भस्म करें। बुध एवं बृहस्पति सुख का विस्तार करें। शुक्र, शनि, राहु और केतु विशिष्ट ग्रह हैं, ये सभी नव ग्रह जिनागम में प्रसिद्ध हैं।

सूरु – सूर्य। दुह – दुख। डह – दह-दग्ध करना। बुह – बुध। विहप्पइ – बृहस्पति। सुह – सुख। विच्छरउ – विस्तृ–फैलाना। सुक्क – शुक्र। केउ – केतु। गह – ग्रह। गरिठ – गरिष्ठ-विशिष्ट। सिठ – शिष्ट-प्रतिष्ठित। १. 'करउ' मूल पाठ है।

(शारदा स्तवन)

[१४]

जहि संभव जिणवर मुह कमल, सप्तभंग वाणी असु अमल ।
आगम छंद तक्क वर वाणि, सारद सहु अत्थ पय वाणि ।।

अर्थ :—जो (शारदा) जिनेन्द्र भगवान के मुख से प्रकट हुई है, जिसकी सप्तभंगमय वाणी है, जो आगम, छंद एवं तर्क से युक्त है, ऐसी वह शारदा शब्द, अर्थ एवं पद की खान है।

संभव – जन्म। सप्तभंग-स्याद्वाद के सात सिद्धान्त (१) स्यात् अस्ति (२) स्यात् नास्ति (३) स्यात् अस्ति-नास्ति (४) स्यात् अवक्तव्य (५) स्यात् अस्ति अवक्तव्य (६) स्यात् नास्ति अवक्तव्य (७) स्यात् अस्ति-नास्ति अवक्तव्य। सारद – शारदा। तक्क – तर्क। सद्द – शब्द। अत्थ – अर्थ। पय – पद।

[१५]

गुणणिहि वहु विज्जागमसार, पुठि मराल सहइ अविचार ।
छंद बहत्तरि कला भावती, सुकइ रल्ह पणवइ सरसुती ।।

अर्थ :—जो गुणों की निधि एवं विद्या तथा आगम की सार-स्वरूपा है, जो स्वभावत हंस की पीठ पर सुशोभित हैं जिसे छंद एवं बहत्तर कलायें प्रिय है, ऐसी सरस्वती को रल्ह कवि नमस्कार करता है।

गुणणिहि – गुणनिधि। विज्जागम – विद्या और आगम। पुठि – पृष्ठ-पीठ।

[१६]

करि थुइ सुकइ ठणवइ तुहु[1] पाइ, परसन्नी तुहु सारद माइ ।
महु पसाउ स्वामिनि करि तेम, जिणदत्त चरितु रचउ हउ जेम ।

अर्थ :—कवि स्तुति करके तुम्हारे चरणों में नमस्कार करता है। हे शारदा माता! आप प्रसन्न होओ। हे स्वामिनि, मुझ पर अपनी कृपा उस प्रकार करो जिस प्रकार मैं जिनदत्त चरित की रचना कर सकूं।

थुइ – स्तुति। पसाउ – प्रसाद-कृपा। १. नहु—मूलपाठ।

(शारदा का प्रकट होना)

[१७]

सुणिवि वयण सारद यौ कहै, मेरउ अन्त न कोई लहै ।
किमइ काजु आराहहि मोहि, मांगि मांगि संतुट्ठी तोहि ।।

अर्थ :—प्रार्थना को सुनकर शारदा यों कहने लगी "मेरा पार कोई नहीं पा सकता है। किस कार्य के लिये तू मेरी आराधना करता है ? मैं तुझ पर संतुष्ट हुई। तू मांग, मांग।"

आराह – आराध्-आराधना करना। संतुट्ठ – संतुष्ट।

[१८]

भणइ सुकइ करि सुधउ भाउ, जा निरु अम्हहं कियउ पसाउ ।
तह पसाइ णाण घवरु लहउ, ता जिणदत्त चरिउ हउ कहउ ।।

अर्थ :—कवि शुद्ध भाव करके कहता है—निश्चित रूप से यदि तुमने मुझ पर प्रसाद किया है तो तुम्हारे प्रसाद से अपार ज्ञान प्राप्त करूं, जिससे मैं जिणदत्त-चरित को कह सकूं।

भाउ – भाव। निरु – निश्चित रूप से। णाण – ज्ञान। घवरु – गहवर, भारी, गम्भीर, अपार।

(शारदा का वरदान)

[१९]

सा भारती गुसाइणि देवि, तूठी साणंदे पभणेवि ।
सुकइ कहा तू कहण समत्थु, तुहु सिरि रल्ह दिण्णु मइ हत्थु ।।

अर्थ :—वह स्वामिनि भारती (शारदा) देवी प्रसन्न होकर आनन्द के

साथ कहने लगी, "हे सुकवि तू कथा कहने में समर्थ है। हे रल्ह, तेरे शिर पर मैंने अपना हाथ रख दिया है।

गुसाईणि – गोस्वामिनी-स्वामिनी। पभण – प्र+भण-कहना। समत्थु – समर्थ। हत्थु – हस्त, हाथ।

(कवि द्वारा लघुता प्रदर्शन)

[२०]

हउ अखउ जिणदत्त पुराणु, पढिउ न लक्खण छंद बखाणु।
अक्खर[1] मत्त हीण जइ होइ, महु जिण दोसु देइ कवि कोइ।।

अर्थ :—मैं जिनदत्त पुराण को कह रहा हूं। मैंने काव्य के लक्षण एवं छंदों का बखान (वर्णन) नहीं पढा है। इसलिये यदि कहीं अक्षर एवं मात्रा की हीनता हो तो मुझे कोई भी कवि दोष न देवें।

अख – अक्ख-आ+ख्या-कहना। अक्खर – अक्षर। मत्त – मात्रा। जइ – यदि। १. अग्वर—मूलपाठ।

[२१]

हीण बुधि किम करउ कवित्तु, रंजि ण सकउ विबुह जण चित्त।
धम्म कथा पयडंतह दोसु, दुज्जण सयण करहि जिणु रोसु।।

अर्थ :—मैं हीन बुद्धि हूं कविता किस प्रकार करूं ? (क्योंकि) मैं विद्वानों के चित्त को प्रसन्न भी नहीं कर सकता हूं। धर्मकथा को प्रकट (प्रतिपादित) करने में दोष होते ही हैं; इसलिये दुर्जन एवं सज्जन (दोनों से ही प्रार्थना है कि वे) रोष न करें।

पयड् – प्र+कटय्–प्रकट करना।

[२२]

भुवरण कईस प्रतीते घणे, वहुले प्रत्थहिं ठाइ आपुणे ।
कइतणु फुरइ विवुह जण पेखि, पाय पसारउ अंचल देखि ।।

अर्थ :—भुवन (जगत) में बहुत से कवीश्वर (महाकवि) हुए हैं और बहुत से अपने स्थानों पर विद्यमान हैं। कवित्व विबुध जनों (विद्वानों) को देखकर स्फुरित होता है। (और मैं सीमित बुद्धि का हूँ)। अतः अपने अंचल-वस्त्र (अपनी सामर्थ्य) को देखकर ही मैं पैर पसार रहा (काव्य रचना कर रहा) हूँ।

भुवन – जगत्। कईस – कवीश–महाकवि। अत्थहि – स्था–बैठना। कइतणु – कवित्व। पेखि – प्र+ईक्ष्–देखना।

[२३]

जइ अइरावइ मत्त गइंदु, जोयण लखु सरीरह विंदु ।
तासु गाज जइ भुवण समारण, गइयर इयर आपुणे मारण ।।

अर्थ :—यद्यपि ऐरावत मत्त गजेन्द्र है, उसका शरीर एक लाख योजन प्रमाण जाना जाता है और उसकी गर्जना भुवन में व्याप्त है तो भी इतर गज अपने मान (सामर्थ्य) के अनुरूप गर्जते ही हैं।

जइ – यदि । अइरावइ – ऐरावत । गइंद – गजेन्द्र । जोयण – योजन । विंद – विद्–जानना । इयर – इतर । मारण – मान–सामर्थ्य ।

[२४]

जोइसु कला पुणु सांति भा जाहिं, सवइ अमिउ सीयलक सव काहिं ।
तासु किरण तिहुवण जइ दिपइ, आप पमारण जोगणा तपइ ।।

अर्थ :—चन्द्रमा षोडश कला पूर्ण कहा जाता हैं, वह संपूर्ण रूप से अमृतमय है और सबके लिए शीतल (होता) है। यदि उसकी किरणें तीनों भुवनों को प्रदीप्त (प्रकाशित) करती हैं, (तो भी) अपनी शक्ति के प्रमाण से (सामर्थ्य भर) जुगुनू तपता (चमकता) ही है।

पुणु – पूर्ण । अमिउ – अमृत । सीयल – शीतल । तिहुवण – त्रिभुवन । पमाण – प्रमाण । जोगणा – जुगुनू-खद्योत ।

[२५]

हाथ जोडि जिणवर पय पडउ, वीयराग सामिय मणि धरउ ।
जत्थ होइ कुकइत्तणे अंधु, जिणदत्त रयउ चउपई बंधु ।।

अर्थ :—हाथ जोड़ कर मैं जिनेन्द्र भगवान के चरणों में पड़ता हूँ तथा वीतराग स्वामी को मन में धारण करता हूँ, जिससे कुकवित्व अंधा हो जाए, और मैं जिनदत्त (की कथा) चउपई बंध (काव्य रूप) में रच सकूं।

पय – पद । वीयराग – वीतराग । सामिय – स्वामी । कुकइतणा – कुकवित्व । रयउ – रच्–रचना करना ।

(कवि परिचय)

[२६]

जइसवाल कुलि उत्तम जाति, बाईसइ पाडल उतपाति ।
पंचऊलीया आते कउ पूतु, कवइ रल्हु जिणदत्त चरितु ।।

अर्थ :—जैसवाल नामक उत्तम जाति के बाइसवें पाटल गोत्र में मेरी उत्पत्ति हुई है। पंचऊलीया आते का जो पुत्र है ऐसा कवि रल्ह जिनदत्त चरित की रचना कर रहा है।

अन्तिम छंदों में कवि ने अपने को 'अमई' का पुत्र बताया हैं कदाचित यहां भी 'आते' के स्थान पर पाठ 'अमई' होना चाहिए। संभवतः अमई-अमि-आते हुआ है।

पंचऊल – पञ्चकुल। कइ – कवि।

[२७]

माता पाइ नमउ जं जोगु, देखालियउ जेहि मतलोगु।
उवरि मास दस रहिउ धराइ, धम्म बुधि हुइ सिरीया माइ॥

अर्थ :—माता के चरणों में यथायोग्य नमस्कार करता हूँ जिसने मुझे मृत्युलोक दिखाया; तथा जिसने अपने उदर में दस मास तक रखा, ऐसी धर्म बुद्धि वाली सिरिया मेरी माता थी अथवा धर्म बुद्धि में मेरी माता सिरिया (श्रीमती-जिसका उल्लेख कथा में हुआ है) के समान हुई।

पाइ – पाद-चरण। मतलोगु – मृत्युलोक। उवर – उदर-पेट।

[२८]

पुणु पुणु पणवउ माता पाइ, जेइ हउ पालिउ करुणा भाइ।
म उवयारणु हुइसउ उरणु, हा हा माइ मज्झु जिण सरणु॥

अर्थ :—मैं बार बार माता के चरणों में नमस्कार करता हूँ जिसने दया भाव से मुझे पाला है। मैं उसके उपकार से उऋण नहीं हो सकूंगा। हे माता मेरे तो जिनेन्द्र भगवान ही शरण हैं।

उवयार – उपकार।

(रचनाकाल)

[२९]

संवत तेरहसें चउवण्णे, भादव सुदि पंचम गुरु दिण्णे ।
स्वाति नखत्तु चंदु तुलहती, कवइ रल्हु पणवइ सरसुती ।।

अर्थ:—संवत् १३५४ की भाद्रपद शुक्ला पंचमी बृहस्पतिवार को जब चन्द्र स्वाति नक्षत्र में था और तुला राशि थी, कवि रल्ह सरस्वती को नमस्कार करता है ।

तुल – तुला ।

(कथा का प्रारम्भ)

[३०]

लवणोवहि चउपासहि फिरिउ, जंबूदीपु मज्झि विप्पुरिउ ।
दाहिण भरहखेत्त जिण भणी, वहइ कालु तहि अवसप्पिणी ।।

अर्थ :—लवणोदधि समुद्र जिसके चारों ओर फिरा हुआ है, ऐसे जम्बूद्वीप के मध्य में विस्फुरित दक्षिण दिशा में भरत क्षेत्र हैं जहां अवसर्पिणी काल चल रहा है ।

लवणोवहि – लवणोदधि । भरहखेत्त – भरत क्षेत्र । विप्पुरिउ – विस्फुरित । अवसप्पिणी – अवसर्पिणी ।

(मगध देश का वर्णन)

[३१]

सवइण पाउ वत्थ जहि ठाउ, मगह देसु तहि कहियइ णाइ ।
पामरि घरणि अवासहि चडी, जणु वइ छूटि सग्ग ते पडी ।।

अर्थ :—जहां पर समस्त वस्तुएँ पाई जाती हैं ऐसे उस देश का नाम मगध कहा जाता है। पामरों (नीच मनुष्यों) को स्त्रियां (उस देश में) महलों पर चढी हुई ऐसी लगती हैं मानों वे छोडी जाकर स्वर्ग से छूट पड़ी हों।

मगह – मगध । णाइ – नाम । पामरि – नीच ।
अवास – आवास–प्रासाद । चइ – चइअ–त्यक्त–छोड़ा हुआ ।
१. सग–मूलपाठ ।

[३२]

णिहुणहु देसु तण्यों व्योहार, घरि घरि सफल अंबसाहार ।
करहि राजु सकुटंबउ लोइ, परतह दुखी न दीसइ कोइ ।।

अर्थ :—अब उस देश का व्यवहार सुनो जहां पर घर घर में फल सहित सहकार आम के वृक्ष थे। लोग सकुटंब राज्य जैसा सुख भोगते थे तथा प्रत्यक्ष में कोई दुखी नहीं दिखाई देता था।

अंब – आम । साहार – सहकार–एक जाति का आम ।
परतह – प्रत्यक्ष ।

[३३]

पहिया पंथ न भूखे जाहि, केला दाख छुहारी खाहि ।
गामि गामि छेतें सतूकार, पहियह कूरु देहि अनिवार ।।

अर्थ :—जहां पर पथिक मार्ग में भूखे नही जाते थे तथा केला, दाख, छुहारा खाते थे। जहां पर गांव गांव में सत्तु के भोजनालय थे जो पथिकों को देखते ही अनिवार्य रूप से (सत्तुओं के) कूट (ढेर) खाने के लिये देते थे।

पहिय – पथिक। कूरु – कूट–ढेर। सत्तूकार – सत्तुक+आलय–सत्तूघर (सत्तू–भुने हुए यव आदि का चूर्ण जो पानी में सानकर मीठा व नमकीन बना कर खाता जाता है)।

[३४]

गामि गामि वाडी अंबराइ, जइसे पाटण तेसे ठाइ ।
धम्मु विवे णरु भोयणु देहि, दाम विसाहि न कोई लेहि ।।

अर्थ :—जहां पर गांव गांव में बगीचे एवं अमराइयां थीं तथा जैसे नगर थे वैसे ही वे स्थान (ग्राम) थे। धर्म–कार्यों में (वहां के) नर (लोग) भोजन (आहारदान) देते थे तथा बेची हुई वस्तु का दाम नहीं लेते थे अथवा दाम देकर कोई वस्तुएं नहीं लेते थे ।

वाडी – वाटिका–बगीचा। अमराइ – अम्रराजि–ग्राम की बगीची। भोयणु – भोजन । विसाहि – विसाहिअ–विसाधित–बेची हुई वस्तु । पाटण – पत्तन–नगर ।

[३५]

णांकरु कूड दंड तहि चरइ, अपुणइ सुखि परजा व्यवहरइ ·
चोर न चरडु आंखि देखिये, अरु परणारि जणणि पेखियइ ।।

अर्थ :—जहां जो अपराधी और कूट [दुष्ट] होते थे उनके लिये दंड चलता था और प्रजा अपने व्यवहार [दैनिक जीवन] में सुखी थी। चोर चरट कहीं भी नहीं दिखायी देते थे तथा पर स्त्री माता के समान देखी जाती थी।

णांकरु – अपराधी। कूड – कूट–कुटिल, दुष्ट। चरडु – चरट–लूटेरों का एक प्रकार। पेख – प्र+ईक्ष्–देखना।

[३६]

मगह देसु भीतरि सुहि सारु, वासव सुरह अहिउ सो चारु ।
धण कण कंचण सब्ब वियूर, मंबर तुंग पिहिय कय सूर ।।

अर्थ :—मगध देश भीतर से भी सुखी और सारवान (संपन्न) था। वह इन्द्र का चारु स्वर्ग था अथवा सुरथ का साकेतपुर था। वह धन धान्य एवं स्वर्ण से पूरित था तथा उसके सूर्य को ढकने वाले ऊंचे मंदिर (पर्वत) के सदृश महल थे।

सुहि – सुखिन–सुखी। सारु – सारवान–संपन्न। सुरह – सुरथ–साकेतपुर का एक राजा। पिहिय – पिहिअ–पिहित–ढका हुआ।

(विभिन्न जातियों के नाम)

वस्तुबंध

[३७]

बणिकु बंभण बइद वासीठ ॥
बाढइ वेसा बरुड बंदरा खिवारी विहारहं।
बाणु वाह बारी बुरु बहु विहारछ जीवरखहं ॥
बरु विहारि बारिठिया वुह विडह [1]बणियार।
तह बसंतपुरि रल्ह कहं छहि चउवीस बकार ॥

अर्थ :—वणिक, ब्राह्मण, वैद्य, वसीठ, बढ़ई, वेश्या, वरुड, बंदरा, खिवारी, विहार, वाणु, वाह, वारी, वुरु, वहु, विहारछ, वरख, वरु, विहारी, वारिठिया, वुह, विडह, वणियार रल्ह कवि कहता है कि ये चौबीस प्रकार की वकार के नाम वाली जातियां वहां वसंतपुर में रहती थी।

१. खणियार–मूलपाठ।

[३८]

सुर सामीय साहु सोतियहि।
सरि सरवर सावयहं सब्बल ग्रत्थि सारंग साहणा सिऊ।
सोहा सहियणहं सिरिव संत सहियण समाणहं ॥

सेसरण सीमा सत्थवइ, सत्थ सवरण सुहसार ।
सुव्वस सील वसंतपुर, छहि चउवीस सकार ॥

अर्थ :—सकार के नाम वाली निम्न चौबीस जातियां बसंतपुर में निवास करती थी :—

सूर, सामी (स्वामी), साहु, सोत्तिय (श्रोत्रिय), सरि, सरवर, सावय (श्रावक), सव्वल, सारंग, साहण, सिऊ, सोहा, सहियण, सिरि (श्री), संत, सहियण, समाण, सीमा, सत्थवइ (सार्थपति), सत्थ (सार्थ), सवरण, सुहसार (सुखसार), सुव्वस, सील, (शील) ।

[३६]

मोह मच्छरु माणु मायारु ।
मउ मरि मारणु मरविणु, मलिणु मलणु जहि कोवि सीसइ ।
महु मंस मयरासहि उतहि, मछिदु मउरउण दीसइ ॥

मूढु मुसरण मंगलु मखरु, जहि ण मलइ जल मीणु ।
भरणइ रल्ह सु बसंतपुर, बीस मकार विहीणु ॥

अर्थ :—रल्ह कवि कहता है कि बसंतपुर में, मोह, मत्सर, मान, माया, मद, मरी (एक रोग), मारण, मरविण, मलिण (मालिन्य), मलन (मर्दन), मधु, मांस, मदिरा, मछिन्दु (मछन्द), मउरउण (मुकुट बिना), मूढ, मुसग, मंगल, मखर तथा मीन सहित जल ये बीस मकार नहीं थे।

नोट :—इस छंद के पाठ में कुछ भूल लगती है चरण २ का 'जहि कोवि सीसइ' चरण ३ के 'मउरउण दीसइ' के साथ आना चाहिए।

(वसंतपुर नगर वर्णन)

चौपई

[४०]

राज-थाणु किमु करि वण्णियइ, पच्चखु सग्गु खंड जाणियइ ।
बसइ वसंतु णयरु सो घणउ, चंदसिहरु राजा तहु तणउ ।।

अर्थ :—राजा के स्थान (राजधानी) का किस प्रकार वर्णन किया जाय ? उसे तो प्रत्यक्ष स्वर्ग का टुकडा ही जानो । वह वसंतपुर नगर घना बसा हुआ था और उसका चन्द्रशेखर नाम का राजा था ।

थाणु – स्थान । पच्चखु – प्रत्यक्ष । सग्गु – स्वर्ग । चंदसिहरु – चन्द्रशेखर ।

[४१]

चंदसेखर राजा के भवण, दिपहि त माणिक मोती रयण ।
सयलु अंतेउरु रूपनिवासु, बीस बीस सवण्हु अवासु ।।

अर्थ :—चन्द्रशेखर राजा के महल से माणिक मोती एवं रत्न चमकते थे (अथवा, वे महल माणिक, मोती एवं रत्नों से चमकते थे) । उसका समस्त अन्तःपुर रूप का निवास था तथा सबके लिये बीस बीस आवास (महल) थे ।

रयण – रत्न । सयलु – सकल, समस्त । अंतेउरु – अन्तःपुर । सवण्हु – सबके लिये–स्वर्ण ।

[४२]

बसहि त सयल लोय सुपियार, कंचण मइ तिन्हु कियए विहार ।
पर कहु मीचु ण बंछइ कोइ, जीव दया पालइ सब कोइ ।।

अर्थ :—सभी लोग प्रेम से रहते थे। उन्होंने अपने विहार (जिन मन्दिर) स्वर्ण-मय बना लिये थे। वहां दूसरे की मृत्यु की वांछा कोई नहीं करते थे तथा सभी जीव दया का पालन करते थे।

सुपियार – सु+पिय+तर–अत्यन्त प्रिय। मीचु – मृत्यु।

[४३]

कोली माली पालहि दया, पटवा जीवकहु इंछहि मया।
पारधी: जीव ण घालहि घाउ, दया धम्मु कउ सबही भाउ॥

अर्थ :—कोली और माली (तक) भी जहां दया धर्म का पालन करते थे। पटवा एवं सपेरा भी दयावान थे। वधिक जीवों पर कोई भी घात नहीं करते थे। (इस प्रकार) सभी का दया धर्म का भाव था।

कोली – कौलिक–सूती वस्त्र बुनने वाले। पटवा – पट+वाय–रेशमी वस्त्र बुनने वाला। जीवक – सपेरा। पारधी – पार्पधि–वधिक।

[४४]

बाभण खत्री अवरति चर्म, ते सब पालक सरावग धम्मं।
मारण णाइ वियइ कलमली, जिणवरु णावहि छत्तीसउ कुली॥

अर्थ :—ब्राह्मण तथा क्षत्रिय चर्म (के प्रयोग) से विरत थे और वे सभी श्रावक धर्म का पालन करते थे। मारने (हिंसा करने) का नाम उनको कष्ट देता था और छत्तीसों जातियां जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार करती थी।

अवरति – अवरत्त–अपरक्त–विरक्त।

(वस्तु बंध)

[४५]

सुवण रंजणु धम्मु गुण वाणि ।

परिवारहं सोहियउ देइ, दाणु जिणणाहु पुज्जइ ।
सयल जीव करुणा करइ, जीवदेउ तहि सेठि छज्जइ ।।

घरणि सुहाइ तासु घरि, जीवंजस सुविसाल ।
दाण कित्ति तिन्हु रल्ह कइ, भमिय पुहमि असराल ।।

अर्थ :—वह सभी सवर्णों (उच्च जातियों) का प्रिय था तथा उसकी वाणी धर्म एवं गुणों से युक्त थी । वह अपने परिवार के साथ शोभित था, जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता था तथा दान देता था । सब जीवों पर करुणा (दया) करता था, ऐसा वहां जीवदेव नाम का सेठ शोभित होता था । उसके घर में सुन्दर गृहिणी (धर्म-पत्नी) 'जीवंजसा' नाम की थी जो बहुत सुन्दर थी । 'रल्ह कवि' कहता है कि उनकी दान देने की प्रशंसा सम्पूर्ण पृथ्वी तल पर निरंतर फैल रही थी ।

असराल – निरन्तर । सुवणु – सवर्ण – उच्च जातियां ।
सयल – सकल । छज्जइ – शोभित होना । भमित – फैलना ।

[४६]

अलहनु पीडि करावइ बेठि, जीउदेव तहि निवसइ सेठि ।
जीवंजसा नामें तसु घरणि, रूव सुरेख हंस-गइ-गमणि ।।

अर्थ :—दुखित जनों की पीड़ा को दूर कर बैठने (विश्राम लेने) वाला जीवदेव नाम का सेठ वहां रहता था । उसकी स्त्री का नाम जीवंजसा था जो रूपवती, शुभ रेखाओं से मंडित तथा हंस की चाल चलने वाली थी ।

[४७]

अइसउ सेठि बसइ तहि नगरी, तिहि समु भयउ न होसइ अउरु ।
धरण करण परियणु सयरण संजुत्त, पर घरि नाही एक्कइ पुतु ।।

अर्थ :—ऐसा सेठ उस नगरी में रहता था, उसके समान न तो कोई हुआ और न दूसरा होगा । वह धन-धान्य एवं सब परिजनों से युक्त था केवल उसके घर में पुत्र नहीं था ।

अउरु – अपरु–दूसरा । परियणु – परिजन ।

[४८]

सेठिरणी भरणइ सेठ रिणसुरणोहि, पुत्तह विणु कुलु बूड तोहि ।
दाण धरमु संपइ सवु दीज, फुरण ऋष पास जाइ तपु लीज ।।

अर्थ :—सेठानी सेठ से कहने लगी "हे सेठ सुनो बिना पुत्र के तुम्हारा वंश डूब (समाप्त हो) जावेगा । दान, धर्म में सब संपत्ति दे दीजिये तथा फिर ऋषि के पास जाकर तप (व्रत) ले लीजिये ।

पुत्त – पुत्र । संपइ – संपत्ति ।

[४९]

कियउ मंतु परियणु बयसारि, कहइ वयणु सुहयरु ऊसारि ।
पूतह विनु कुल बूडइ मोहि, कि किज्जइ वुह पूछउ तोहि ।।

अर्थ :—अपने परिजनों को बैठाकर उसने मंत्रणा की तथा यह सुखकर वचन (मुख से) निकाल कर कहा—"बिना पुत्र के मेरा कुल डूब रहा है । क्या करना चाहिए, यह हे बुद्धिमानों, मैं आपसे पूछता हूँ ।"

मंतु – मंत्र–मंत्रणा । सुहयरु – सुखकर । ऊसारि – उच्चारण कर । वुह – बुह–बुध ।

[५०]

थवइ श्रवण जिणवर वंदियइ, श्रणु दिणु सेठि श्रप्पु णिंदियइ ।
परह पसंसु करइ जो भव्वु, देइ दाण मणि परि हरि गव्वु ।।

अर्थ :—वह सेठ श्रमण भगवान का नाम लेने और जिनेन्द्र की वंदना करने लगा तथा प्रतिदिन वह अपनी निन्दा करने लगा । जो भव्य दूसरों की प्रशंसा करता है तथा मन से गर्व को दूर कर दान देता है ।

थव – कहना । श्रवण – श्रमण–भगवान । परह–दूसरे की ।
पसंसु – प्रशंसा ।

[५१]

जीवदया जो अह निसि करइ, पंचाणुव्वइ निम्मल धरइ ।
गुणवय तिण्णि सिखवय चारि, मुत्ति स्वयंवर आवइ नारि ।।

अर्थ :—जो रात-दिन जीव दया पालन करता है, निर्मल पंचाणुव्रत को धारण करता है, तीन गुणव्रतों और चार शिक्षाव्रतों को (जीवन में उतारता है) मुक्ति-नारी स्वयं आकर उसका वरण करती है ।

अह निसि – अहःनिशि । पंचानुव्वइ – पंचाणुव्रत ।[1]
निम्मल – निर्मल । गुणवय –गुणव्रत ।[2]
तिण्णि – त्रीणि । सिखवय – शिक्षाव्रत ।[3]

[1]अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत एवं परिग्रह परिमाणाणुव्रत ये पांच अणुव्रत कहलाते हैं ।

[2]दिग्व्रत, देशव्रत एवं अनर्थदण्डव्रत—ये तीन गुणव्रत हैं ।

[3]सामयिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण एवं अतिथि संविभाग—ये चार शिक्षाव्रत हैं ।

[५२–५४]

तिहि खणि चवइ जीवधो सेठि, हउ आराहउ निरु परमेठि ।
सयल चराचर जाणउ भेउ, वीयराउ महु जपउ[1] अलेउ ।।

जल चंदण अखय वर फुल्ल, चरु दीवह अंछुइ लइय अमुल्ल ।
अगर धूव कारण निरु लयउ, फल समूह जे जिणवरु गयउ ।।

जिणवर विंबु जोइ मणु तुठ, चिरु संचिउ कलिमलु गउ तुठ ।
अठविह पूय करइ दयवंतु, नियमणु झावइ देउ अरहंतु ।।

अर्थ :—उस क्षण जीवदेव सेठ कहने लगा अब मैं निश्चितरूप से परमेष्ठि की आराधना करता हूँ (करूंगा) क्योंकि वे ही सकल चराचर का भेद जानते हैं (अत:) मैं उन अलिप्त वीतराग भगवान का जप करता (बोलता) हूं । ।।५२।।

एक थाल में जल, चंदन, अक्षत, उत्तम पुष्प एवं बिना स्पर्श किये हुये अमूल्य (निर्मल) नैवेद्य एवं दीपक उसने लिये तथा अगर धूप (दशांग धूप) और उसी कारण (उद्देश्य) से फलों के समूह को लिया और वह मन्दिर में गया ।।५३।।

जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा के दर्शन कर उसका मन पूर्ण संतुष्ट हो गया तथा चिरकाल मे संचित पापमल त्रुटित (नष्ट) हो गये । वह भगवान की अष्ट विधि से पूजा करने लगा तथा अपने मनमें अर्हंत् देव का ध्यान करने लगा ।।५४।।

खणि – खण–क्षण । परमेठि – परमेष्ठि । अखय – अक्षत ।
निरु – निश्चितरूप से । चरु – नैवेद्य । दीपह – दीपक ।
तुठ – त्रुटित–टूटा । झावइ – ध्यावइ – ध्यान करना, चिंतन करना ।

१. जयउ–मूलपाठ ।

[५५–५६]

सत्थु पुज्ज गुरु पूज्जिउ झत्ति, मुनिवर पाइ पडी तिहु पत्ति ।
तुह जाणहि सामिय जिणसुत्त, महु होइ इह मुणिवर भण पुत्तु ।।

हाथु देखि मुनि बोलइ ताहि, जिण सेठिणि हियडइ विलखाहि ।
लखण बत्तीस कला संजूत्तु, कुल मंडणु तुव होसइ पूत्तु ।।

अर्थ :—शास्त्र की पूजा करके शीघ्र ही उसने गुरू की पूजा की तथा (तदनन्तर) उसकी पत्नी मुनि के पांव पड़ गई । (उसने कहा) हे स्वामी आप जिनसूत्रों (आगमों) को जानने वाले हो । मुझे पुत्र हो, हे मुनिवर, (आप) यह कह (आशीष) दें [अथवा, क्या मुझे पुत्र होगा, हे मुनिवर, आप यह बताएँ] ।।५५।।

हाथ देखकर मुनि उस समय बोले "हे सेठानी हृदय में दुखित मत हो । बत्तीस लक्षणों एवं कला से युक्त एवं कुल की शोभा वाला पुत्र तुम्हारे होगा ।।५६।।

सत्थु – शास्त्र । पत्ति – पत्ती–पत्नी–भार्या । झत्ति – झटिति–झट–शीघ्र ।

[५७–५८]

सेठिणि सगुणु गांठि बांधियउ, णिय घर जाइ महोछउ कीयउ ।
मोसिउ मुणिवरु कहिउ गुणंगु, तूठी सेठिणि माइ ण अंग ।।

पुणु असहावी बोलइ सोय, रिसि भासियउ न भूठिउ होय ।
णिरु आणंदिउ बोलइ साहु, पिव होसइ मणु चिंति उछाहु ।।

अर्थ :—सेठानी ने उस शकुन (शुभ सूचना) की गांठ बांध ली और अपने घर जाकर महोत्सव किया । गुणों के धारी मुनिवर ने मुझ से (इस प्रकार) कहा है "इससे प्रसन्न सेठानी अपने अंगों में समा नहीं रही थी ।।५७।।

फिर प्रसन्न होकर कहने लगी "ऋषि का कहा हुआ कभी झूंठा नहीं होता है। सेठ भी निश्चित रूप से आनन्दित होकर बोला-प्रिय (अच्छा हो) होगा ऐसा मनमें सोचकर उछाह करो। ॥५८॥

णिय – निज। महोछउ – महोत्सव। मोसिउ – मुझसे। णिरु – निश्चित रूप से। पिव – पितृ–पिता–प्रिय।

[५९–६०]

(पुत्र जन्म)

राजु करत दिन केते गये, सेठिणि गब्भु मास दुइ भए।
आइ भए पूरे दस मास, पूतु जम्मु भौ पूरिय आस॥

जीवदेउ घरि नंदण भयउ, घर घर कुटंब बधाऊ गयउ।
गावहि गीतु नाइका सउकु, चउरी पूरिउ मोतिन्ह चउकु॥

अर्थ:—राज करते हुये (सुख भोगते हुये) कितने ही दिन बीत गये। कालान्तर में सेठाणी को गर्भ रहा जो दो मास का हो गया फिर दस मास पूरे हो गये। पुत्र का जन्म हुआ और सबकी आशा पूरी हुई ॥५९॥

जीवदेव के घर जब पुत्र उत्पन्न हुआ तो उसके कुटुम्बियों द्वारा घर-घर में बधावा गाया गया। स्त्रियां उत्साहपूर्वक गीत गाने लगी तथा उन्होंने मोतियों के चौक पूरे ॥६०॥

गब्भु – गर्भ। नाइका – नायिका–स्त्री। सउकु – स+उत्क– उत्साहपूर्वक।

[६१–६२]

देहि तंबोल त फोफल पाण, दीणे चोर पटोले पाण।
दूत बधाए नाहो खोरि, दीने सेठि दाम दुइ कोडी॥

वाढइ पूतु कला जिमु चंद, जाइ विहार कियउ आणंद ।
जिणवर पूज मुणिह पयो पडइ, रिषि जिनदत्त नाउ तिस धरइ ।।

अर्थः—सेठ ताम्बूल, सुपारी तथा पान (बीड़े) देने लगा । उसने सूती एवं रेशमी वस्त्र दान में दिये । पुत्र (जन्म) के बधावे में कोई खोरि (कसर-कमी) नहीं रखी । सेठ ने दो करोड़ दाम (मुद्रा) दान में दिये ।।६१।।

चन्द्रमा की कला के समान पुत्र बढ़ने लगा तथा जिन मन्दिर जाकर उसने आनन्दोत्सव मनाया । जिनेन्द्र भगवान की पूजा करके वह मुनि के चरणों में पड़ा तथा ऋषि (मुनि) ने उसका नाम जिनदत्त रखा ।

फोफल – पूगफल–सुपारी । पटोल – पट्टफूल–रेशमी वस्त्र ।

[६३–६४]

वरष दिवस वाढइ जे तडउ, दिन दिन विरध करइ ते तडउ ।
वरष पंच दस को सो उछाह, विज्जा पढण उवझाउरि जाइ ।।

ओंकार जयउ मणु जाणि, लखणु छंदु तवक परिवाणि ।
मुणि व्याकरण विरति कउ जाणु, भरह रमायणु महापुराणु ।।

अर्थः—वर्ष और दिन ज्यों-ज्यों व्यतीत होने लगे वे उसमें उतनी ही वृद्धि लाने लगे । जब उसकी १५ वर्ष की अवस्था हुई तो विद्या पढ़ने के लिये वह उपाध्याय कुल (विद्यालय) जाने लगा ।

सर्व प्रथम उसने 'ओंकार' शब्द को मनमें जाना । फिर लक्षण शास्त्र, छंद शास्त्र तथा तर्क शास्त्र को प्रमाणित किया (पढा) । व्याकरण जानकर वैराग्य का विषय उसने जाना और इस प्रकार भरत (नाट्य शास्त्र) रामायण तथा महापुराण का (ज्ञान प्राप्त किया) ।

उछाइ – उच्छ्राय–ऊँचाई, अवस्था । विज्जा – विद्या ।

उज्झाउरि – उपाध्याय कुल–विद्यालय। लखणु – लक्षण। तक्क – तर्क। मुण् – जानना। विरति – वैराग्य–अध्यात्म।

[६५–६६–६७]

लिखत पढत सीखिउ असुरालु, जोतिषु तंत मंतु सब सारु।
छुरी सयलु अरु खंडागरु, सीखी सयलु कला बहुत्तरु॥

भउ जुवाणु मइ सुद्धि सहाउ, लजालु वउ धम्मु कउ भाउ।
सीलवंत कुल मज्ञा फिरइ, विषयह ऊपरि भाव न धरइ॥

देखिऊ पूत तणऊ विवहारु, भणइ सेठि कुल बूडण हारु।
पूत विषय मनु लगु ण तोहि, कैसे बंस विद्धि हुई मोहि॥

अर्थ :—निरन्तर पढ़ कर जोतिष, तंत्र शास्त्र और मंत्र का सब सार सीख लिया। सभी प्रकार से छुरी और तलवार चलाना (आदि) सभी ७२ कलायें उसने सीख ली ॥६५॥

वह युवा हुआ किन्तु वह स्वभाव में शुद्ध मति का था, इस अवस्था में भी वह लज्जाशील था तथा उसे धर्म का भाव था। वह शीलवंत कुल की मर्यादा के भीतर आचरण करने वाला था तथा विषयों पर ध्यान नहीं देता था ॥६६॥

पुत्र का (ऐसा) व्यवहार देखकर सेठ कहने लगा "(मेरा) कुल (इसके कारण) डूबने वाला है। (पुत्र से, उसने कहा,) हे पुत्र तुम्हारा मन विषयों में लग नहीं रहा है, अतः मेरे वंश की वृद्धि कैसे होगी" ॥६७॥

असरालु – निरंतर। तंत – तंत्र। मंतु – मंत्र। – खंडागरु– तलवार।

जुवाणु – युवा। मइ – मति। लजालु – लज्जाशील। वउ – वपुष्–शरीर अवस्था। बंसविद्धि – वंश वृद्धि।

[६८]

(वस्तु बंध)

कवड जिणि कै वसइ णिय चित्ति ।
जगु अ हडहि आरडहि, गंठि मुठि तवकंते जोवहि ।
जुवारिउ लज्ज विणु, विसय भत्तु न विरत्ति सोवहि ।।

जिन्ह परदव्वहं मनु ठविण्णु, अरु वंछहि परनारि ।
तिन्ह हक्कारि वि सेठि निरु, कहिय वत्त वय सारि ।।

अर्थ :—जिनके चित्त में नित्य कपट वसता है, तथा जो दुनियां को गाली देते हैं (बुरा भला कहते) तथा शोरगुल मचाते हैं, तथा जो (दूसरों की) गांठ और मुट्ठी ताकते हुये देखते रहते हैं। जुवारी जन जो निर्लज्ज होकर विषयों के भक्त होते हैं और जिन्हें वैराग्य अच्छा नहीं लगता है जिनका मन सदैव दूसरों के द्रव्य में स्थित रहता है तथा जो दूसरों की स्त्री की वांछा करते रहते हैं ऐसे व्यक्तियों को सेठ ने बुलाने एवं बैठाकर (अपनी) बात करने का निश्चय किया।

कवड – कपट। हड ∠ हंड ∠ भण्ड – बुरा कहना, गाली देना। आरड् ∠ आ+रद् – चिल्लाना, शोर करना। हक्कारि – बुलाना। भत्तु ∠ भक्त। निरु – निश्चित रूप से। विरत्ति – वैराग्य।

[६९–७०]

तवहि सेठि मंतु परिठविउ, जुवारीन्हकुं हक्कारउ गयउ ।
भट भट जो न करहि बहु काए, ते सहु सेठि बुलाए जाए ।।

बार बार वेसा घरि जाहि, अरु जूवा खेलत न अघाहि ।
चोरी करत न आलसु करइ, गांठ काटि अंतरालइ धरइ ।।

अर्थ :—तब सेठ ने मंत्र (विचार) परिस्थापित (निर्धारित) करने हेतु जुवारियों को बुलाया। नट तथा भट जो बहुत कानि (लज्जा) नहीं करते थे उन सबको भी सेठ ने जान बूझकर बुलाया ।।६९।।

जो बार बार वेश्या के घर जाते थे तथा जुवां खेलते हुये तृप्त नहीं होते थे, जो चोरी करने में आलस्य नहीं करते तथा (दूसरों की) गांठ काट करके अपने घर के भीतर धरते थे ।।७०।।

[७१–७२]

जिनु के दव्व गइय तिन्हु दिठि, सो जणु कियउ आपुरणी मुठि ।
गंजणु कूडू मारि जिणु सही, तिरिण सहु सेठि बात सहु कही ।।

अहो वीर तुम्ह एसउ करहु, बूडिउ कुल मेरउ उद्धरउ ।
जो जिरणदत्त विषय मनु लावै, निछ्य लाख दामु सो पावै ।।

अर्थ :—जिनकी दूसरों के धन पर दृष्टि जाती थी उनको उसने अपनी मुट्ठी में कर लिया। जिनका कार्य तिरस्कार करना (कपट करना) एवं मारना (इस प्रकार का) सभी कुछ था, उनसे भी सेठ ने वे सभी बातें कहीं ।।७१।।

"अरे वीरो तुम इस तरह करो कि मेरे डूबे हुए वंश को उबार लो। जो जिनदत्त का मन विषयों की ओर लगा देगा, वह निश्चित रूप से एक लाख दाम पावेगा ।।७२।।

गंजण ∠ गञ्जन – अपमान, तिरस्कार ।
दाम ∠ द्रम्म – एक सोने का सिक्का ।

[७३–७४]

जुवारिउ हंसि बोलइ बोलु, तुम्हि तौ धरिउ हमारौ तोलु ।
जइयहु रमइ नयर नर नारि, तउ तुम पाछै सकहु सवारि ।।

राजा सेठि सु अंपइ ताहि, महु समु वलियउ अउर न आहि ।
यहु लीला रसु बंछइ आहि, तउ हमु उत्तरु दीवउ ताहि ।।

अर्थ :—जुवारियों ने हँस करके यह बात कही "तुम ने तो हमको टटोल लिया (हमारा मूल्य आंक लिया) । यदि वह (जिनदत्त) नगर–नारियों (वेश्याओं) के साथ रमने लगे, तो (उसके) पीछे तुम उसे (अपने लक्ष्य के अनुसार) ठीक कर सकोगे ?"

राज–सेठ ने उमसे कहा कि मेरे समान लज्जित दूसरा कोई नहीं है इससे अधिक क्या कहूँ । वह जिनदत्त लीला रस (भोग विलास) में जब इच्छा करने लगे, तब हमें उसका उत्तर देना (विवाहादि के विषय में उसके विचार बताना) ।

जइ ∠ यदि । नयर ∠ नगर ।
वलियउ ∠ व्रीडित – लज्जित, शरमिन्दा ।

[७५–७६]

चले वीर जिणदत्त हकारि, नवजोवणी दिखालहि नारि ।
कवणइ वीर थका मनु लाव, पुणु वत्तहिं नु एक्कइ भाव ।।

कवणइ वीर जुवा रस रमइ, कवणइ लेइ वेसा घरि वसइ ।
लइ ठाढउ पुणु तिय महि कियउ, तोवि ण तासु वेधियउ हियउ ।।

अर्थ :—वे वीर जिनदत्त को बुला कर ले चले तथा उन्होंने नव युवतियों को दिखलाया । किसी वीर ने उसका मन किसी अन्य प्रसंग में लगाया लेकिन जिनदत्त का मन एक में भी नहीं लगा ।।७५।।

कोई वीर उसे जुए के रस में रमाने लगा तथा कोई उसे वेश्या के घर में ले जाकर रहने लगा । किसी ने उसे ले जाकर स्त्रियों के बीच में खड़ा कर दिया, तब भी उसका हृदय (उनसे) विह्वल न हुआ ।

हकारि ∠ आ+धारय् – बुलाना ।
वेसा ∠ वेश्या । थका ∠ थक्क – अवसर, प्रस्ताव-समय ।

[७७–७८]

एत्थंतरि ते कहा कराहि, णंदण वण चैत्यालइ जाहि ।
बइसि वीरुन्ह वंदण ठई, उह की दिठि लिलाडेहि गई ।।

दीठी पाहणमय पूतली, गय जिणदत्त दिठि भिभली ।
बहु लावण्ण गढी सुतधारि, भूले देखि अचेयण नारि ।।

अर्थ :—इसके पश्चात वे क्या करते हैं कि नंदन वन के चैत्यालयों में जाते हैं । वहां पर बैठकर उन वीरों ने भगवान की वंदना की । इसके पश्चात् उसकी दृष्टि (चैत्यालय) के ललाट पर गई ।

जब एक पाषाणमय (पाषाण निर्मित) पुतली दिखाई पड़ी तो जिनदत्त की विह्वल दृष्टि उस पर जा लगी । वह सूत्रधार (शिल्पकार) के द्वारा अति सुन्दर गढ़ी गई थी । उस अचेतन स्त्री (पुतली) को देखकर वह जिनदत्त अपने आप को भूल गया ।

एत्थतरि : इत्थंतर – इसके बाद । दिठि ∠ दृष्टि ।
पाहणमय – पाषाणमय । गय – गत ।

[७९–८०]

भूलिवि पडिउ ताहि मुख देखि, इह परि आहि रूप की रेख ।
काम बाण तसु वेधिउ हियउ, बार कुवारिन्ह अंचलु कउ लयउ ।।

बाहरि वीर ति वेहहि आइ, लइ जिणदत्त उछंग चढाइ ।
देखि पूतली विंभिउ एहु, सेठिणि भणिउ बधाउ देहु ।।

अर्थ :—उसका मुख देखकर वह अपने आपको भूल गया और कहने लगा हो न हो यह रूप की सीमा है। उसके हृदय को जब मदन बाण ने बींध दिया तो उसने दौड़ कर जुवारियों का आंचल पकड़ लिया।

उन वीरों ने उसे बाहर आकर देखा और जिनदत्त को गोद में उठा लिया। "पूतली को देखकर वह विस्मित हो गया है इसलिये सेठानी से कह कर बधावा दें" ॥८०॥

उछंग — उत्संग—गोद।

[८१]

तंखरण वीर पहूंते तहा, निय मंदिरह सेठि हौ जहा।
कुंवरह लछरण परखि किन लेहु, हम कहु सेठि बधाऊ देहु॥

अर्थ :—उसी क्षण वे वीर वहाँ पहुँचे जहाँ सेठ अपने मन्दिर में था। (उन्होंने कहा) हे सेठ, कुमार के लक्षणों को क्यों न परख लो? हमको भी हे सेठ, (अब) बधाई (पुरस्कार) दो।

तंखिरण ✓ तत्क्षरण।

[८२–८३]

तर्वाह सेठि तूठउ सतभाउ, लाख दामु तिन दियउ पसाउ।
बइ तंबोल घरह पठाइ, अंग डाहु जिरणदत्तु भरणाइ॥

रिणसुरिण पूतु तुहि कहउ विचारि पुतली रूपजा आरणहि नारि।
जइ र विजाहरि रूपहि रासि, अवसि करउ तोहि घरि वासि॥

अर्थ :—यह सुनकर सेठ बहुत सन्तुष्ट हुआ और प्रसन्न होकर लाख दाम उन्हें पुरस्कार-स्वरूप दिये। उन्हें (तदनन्तर) पान देकर घर विदा किया और अपने शरीर के दाह (चिंता) को जिनदत्त से कहा॥८२॥

"हे पुत्र, सुनो। मैं तुम्हें विचार कर कहता हूँ। जिस नारी को तुम पुतली के रूप में जानते हो, यदि वह रूप की राशि विद्याधरी भी हो, तो ऐसी स्त्री को तुम्हारे घर में दासी के रूप में लाऊँगा ।।८३।।

तंबोल ∠ ताम्बूल–पान। विजाहरि ∠ विद्याधरी।

[८४–८५]

सुत्तधारि लइयउ हकराइ, किसु कइ रूप घरी ते नारि ।
कहिहि देसु महु वहियउ आइ, कर कंकण तुव देउ पसाउ ।।
निसुणहि सेठि कहउ फुड तोहि, बारह बरस भमत भये मोहि ।
फिरत देस महु चित्त पइठु, नयरी एक भली मइ दिठु ।।

अर्थ :—उसने सूत्रधार को बुलवा लिया और उससे पूछा "तूने किस स्त्री के रूप की यह (पुतली) गढ़ी है? उसका देश मुझसे कहो, मैं व्यथित हूं। मैं तुम्हें प्रसाद के रूप में कर कंकण दूंगा।

(यह सुनकर वह कहने लगा) "हे सेठ, सुनो, मैं तुमसे स्पष्ट कहता हूँ कि जब मुझे बारह वर्ष देशों में फिरते हुए हो गए। देशों में भटकते हुए मैंने ऐसी एक भली नगरी देखी और वह मेरे हृदय में प्रविष्ट हो गयी"।

वहिय – व्यथित। फुड – स्फुट–स्पष्ट।

[८६–८७]

चंपापुरी नयरी सा भणी, धण कण कंचण सोहइ घणी ।
अंड दंड एक सोवन घडी, मंदिर दिपहि पदारथ जडी ।।
घरि घरि कूवा वाइ विहार, कंचण मइ जिन कीए पगार ।
उत्तम लोक वसहि सा भरी, जणु कइलास इंद की पुरी ।।

अर्थ :—वह चंपापुरी नगरी कहलाती थी जो धन-धान्य एवं कंचन से

खूब सुशोभित थी, जहां एक स्वर्ण-निर्मित अण्ड दण्ड नाम की गढी है तथा रत्नों से जड़े हुए महल दीप्त रहते हैं ।।८६।।

जहाँ घर घर में कुवा, बावड़ी एवं विहार बगीचा हैं जिनके प्राकार स्वर्ण के बने हैं। उत्तम लोग उसमें भरे रहते हैं और (वह ऐसी लगती है) मानों इन्द्र की पुरी कैलाश हो ।।८७।।

वाइ – वापी—बावड़ी ।

[८८–८९]

बंदिरिण जरण के हु देहि जु चाउ, नीयवंतु गुरणवाल जु राउ ।
सयल सरुउ अंतेउरु नारि, करहि राजु ते नयर मझारि ।।
विमल सेठ विमला सेठिरणी, तंहि कीरति महि मंडल धरणी ।
विमलामती नंदनि सा किसी, रूप विसेषइ जिह उरवसी ।।

अर्थ :—बंदी जनों को जो [अपनी कीर्ति से] उत्साह प्रदान करता है उस नगरी का [चम्पापुरी का] राजा गुरणपाल है जो नीतिवान है। उसके अन्तःपुर की समस्त स्त्रियाँ रूपवती हैं ऐसा राजा नगर में राज्य करता है ।।८८।।

उसी नगर में विमल सेठ और विमला सेठानी हैं जिनकी कीर्त्ति मही मण्डल में घनी है। विमलामती नाम को उनके जो लड़की है वह मानों रूप की विशेषता में उर्वशी है।

नीय – नीति ।

[९०]

वस्तु बंध

सोजि सुंदरी रणयरण पुत्तार ।
संतिय हंस गइ कीलमारण सरवरु बइठी ।
खेलंती जल पयड कमरासि मइ दिठिय ।।

सहिय समाणिय तहो भणिय इम जंपइ सुतधारी ।
तासु रूव गुण वण्णियउ कइ रल्ह सुविचार ।।

अर्थ :—उस सुन्दरी नयनाभिराम [आँखों की पुतली के समान] हँस गति लिये हुई, क्रीड़ा करती हुई, सरोवर [के तट] पर बैठी हुई और जल से खेलती हुई, प्रकट रूप राशि को मैंने देखा। उसकी सखियां और समवयस्काएँ भी उसके अनुरूप थी, ऐसा सूत्रधार ने कहा। "[तदन्तर] रल्ह कवि कहता है कि वह विचार करके उसके रूप और गुण का वर्णन करने लगा।

णयणपुत्तार – आँख की पुतली। कीलमाण – क्रीडमाण।
पयउ – प्रकट। सहिय - सखिन्। समाणिय – समान+इक–समवयस्का।

[६१–६२]

मुंदडिय सहु कसु सोहइ पाउ, चालत हंसु [1] देउ तसु भाउ ।
जाणू थाणु विहितहि घणे, तहि ऊपरि नेउर वाजणे ।।
सवई वण्णु सोहइ पिंडरी, जणु छहि ते कुंथू पिंडरी ।
जंघ जुयल कदली ऊयरइ, तासु लंक [2] मूठिहि माइयइ ।।

अर्थ :—छल्लों से युक्त उसके पैर सुशोभित थे। उसकी चाल हँस की चाल का भाव प्रगट करती थी। घुटनों के नीचे के स्थान टिकोणे बहुत घने थे और उन पर बजने वाली नेवरियाँ थी।

उसकी पिण्डलियों में सभी वर्ण शोभित थे, मानों वे कुंथु (मनुष्य विशेष) की पिण्डलियाँ हों। उनके ऊपर कदली के (तने के) समान उसकी युगल जाँघें थीं और उसकी कटि मुट्ठी में समा (आ) जावे ऐसी क्षीण थी।

कुंथु – एक पौराणिक राजा, मनुष्य विशेष।

१. हंसु – मूलपाठ। २. लोक – मूलपाठ।

[६३–६४]

जणु हुइ छति अणंगहु तणी, सहइ जु रंग रेह तहि घणी ।
नीले चिहुर स उज्जल काल, अवरु सुहाइ दीसहि काल ।।
चंपावण्णी सोहइ देह, गल कंवलहु तिण्णि जसु रेह ।
पीणत्थणि जोव्वण मयसार, उर पोटी कडियल विस्थार ।।

अर्थ :—वह (कटि) मानो कामदेव का छत्र थी और समस्त रंग तथा घनी रेखाएँ उसमें थीं । उज्वल एवं नील वर्ण की रोमावलि थी जो अत्यन्त सुन्दर एवं सुशोभित थी ।

उसका चंपा पुष्प के रंग का शरीर शोभित हो रहा था उसके उदर में तीन रेखाएँ पड़ती थीं । वह पीन (उन्नत) स्तनों वाली थी तथा (उसके स्तन) यौवन-मद से युक्त थे । उसके उदर की पेशियाँ कटिस्थल तक फैली हुयी थी ।

चिहुर ∠ चिकुर – केश – रोमावलि । पोटी ∠ पोहि – उदर पेशी ।

[६५–६६]

हाथ सरिस सोहहि आगुली, णह सु त दिपहि कुंद की कली ।
भुव बल जंतु काटि जणु ठाणें, वण्णि सु रेख कविन्हु ते कहे ।।
इलोणी अरु माठी लीव, हरु सु पट्टिया सोइय गीव ।
काणि कुंडल इकु सोवनु मणी, नाक थाणु जणु सूवा तणी ।।

अर्थ :—हाथों के समान ही उसकी अंगुलियाँ सुशोभित थी । उनके नख कुंद–कलिकाओं के समान चमकते थे । उसकी बलशाली भुजाएँ थीं जो मानो (सिंह जैसे) उस स्थान पर जंतु को काटकर लगाई हों । ऐसा उसकी सुन्दर रेखाओं का वर्णन कवियों ने किया है ।।६५।।

लावण्यपूर्ण और माठित (सुडौल) वह बालिका थी और एक हलकी पट्टि उसकी ग्रीवा में थी। कानों में स्वर्ण के एक-एक कुण्डल थे। तथा नाक मानों सुए (तोते) की जैसी थी।

माठी – माठित–वर्मित। लीव – बालक, बालिका।

[६७–६८]

मुह मंडलु जोवइ ससि वयणु, दीह चखु नावइ मियणयणि।
जहि के हो वप चाले किरण, जणु रि डसणी हीरा मणि छिरण॥
भउह मयण धणु खचिय धरी, दिपइ लिलाट तिलक कंचुरी।
सिरह मांग [1] मोतिम भरि चलइ, अवरु पीठ तलि विणी रूलई॥

अर्थ :—चन्द्रमा के वदन के समान उसका मुख मण्डल दीखता था। वह मृग नयनी अपने दीर्घ नेत्रों को नीचे किये हुए थी। उसके शरीर से किसी न किसी प्रकार की किरणें (दीप्ति) निकलती रहती थी। उसके दांत हीरामणि की कांति के समान थे।

उसकी भौंहें ऐसी थी मानों कामदेव ने धनुष चढ़ा रखा हो। उसके ललाट का तिलक तथा हार (?) चमक रहे थे। सिर की मांग में मोतियों को भरकर वह चल रही थी और उसकी पीठ के नीचे तक वेणी हिल रही थी।"

कंचुरी – कंचुली–हार।

[६६–१००]

नाव विनोद कथा आगली, पहिरी [2] रयण जडी कंचुली।
इकु तहि अस्थि वेह की किरणी, [3] अवर रलह पहिरइ आभरण॥
जिसु तणु बाहइ दिठि पसारि, काम बाण तसु घालइ मारि।
तिहु को रूपु न वण्णइ जाइ, वेखि सरीर मयणु अकुलाइ॥

१. मोग–मूलपाठ। २. मूलपाठ – पटि। ३. मूलपाठ – किरणि।

अर्थ :—"वह संगीत विनोद एवं कला में बढ़ी-चढ़ी थी तथा उसने रत्न-जटित कंचुकी पहिन रखी थी। एक तो उसके शरीर की ही किरणें थी, फिर रल्ह कवि कहता है उसने (ऊपर से) आभूषण पहिन रखे थे ॥९९॥

जिसको भी वह एक वार दृष्टि फैला कर देखती थी उसे वह काम के वाणों से मार डालती थी। उसके रूप-सौन्दर्य का वर्णन नहीं किया जा सकता है; (क्योंकि) उसके शरीर को देखकर स्वयं कामदेव भी आकुल हो उठता था।

[१०१-१०२]

माल्हंती विलासगइ चलइ, दरसन देखि कुमुणिवर ढलइ।
अइसी विमलमइ गुण आगली, धम्म बुधि सों भइ साभली॥
हंस गमणि सा पदमणि जाणि, सरवर दिठि सखी सिहु न्हाति।
रूप देखि सुर विभउ करइ, नरसुर लोइ सयलु पटतरइ[1]॥

अर्थ :—वह लीलापूर्वक एवं विलास गति से चलती थी और उसका दर्शन (रूप) देखकर कुमुनि पिघल जाते थे। इस प्रकार की वह गुणों में बढ़ी-चढ़ी विमलमती (नाम की) थी जिसकी भली बुद्धि धर्म की ओर थी ॥१०१॥

वह हंस की सी चाल चलने वाली मानों पद्मिनी थी और वह अपनी सखियों के साथ नहाते हुये सरोवर में दिखाई पड़ी। उसका रूप देखकर देवता भी विस्मय (आश्चर्य) करते थे और समस्त लोग नरलोक एवं सुरलोक में (उससे) तुलना करते थे ॥१०२॥

[१०३-१०४]

सुत्तधार कउ भयउ पसाउ, दीन्यों लाख दाम कौ ठाउ।
पाट पटोले दीने जाण, विड मंतु किउ चित्त परवाणि॥

१. पटतरे — मूलपाठ।

चित्तकार तवु लइयउ बुलाइ, पूत रूपु पडि लिखु निकुताइ ।
लिखतह् कहिउ सरीरह् ठवणु, भणइ सेठि लइ जाइ हे कवणु ।।

अर्थ :—उस सूत्रधार को सेठ ने प्रसाद (पारितोषिक) दिया, एवं एक लाख द्रव्य का उसने ठाउ (उपहार) दिया, उसे उस ज्ञानी ने रेशमी कपड़े दिये तथा अपने चित्त को प्रमाण (स्थिर) करके उसने (एक) दृढ़ विचार किया।

उसी समय उसने चित्रकार को बुलाया (तथा कहा)—मेरे पुत्र के रूप का चित्र बिना किसी कुताही (कमी-कसर) के लिखो। जब (चित्रकार ने) कहा कि शरीर का उसने चित्र उतार लिया है, तब सेठ (अपने स्वजनों से) कहने लगा "इसे कौन ले जावेगा।"

दाम – द्रव्य, एक सोने का सिक्का। पाट – पट्ट–रेशम।
पटोल – पट्टकूल–रेशमी वस्त्र। ठवण – स्थापना–चित्र, प्रतिकृति।

[१०५–१०६]

विप्पु एक कउ आइसु भयउ, सो पड लइ चंपापुरि गयउ ।
भेटिउ विमलमती सा बाल, देइ आसीस पड छोडि दिखाल ।।
विमलमती पडु दीठउ जाम, गय विहलंघल सधर पडि ताम ।
हार डोर जसु सोहहि अंग, चंदन सिंचि लई उछंग ।।

अर्थ:—एक विप्र को आज्ञा हुई; वह पट (चित्र) लेकर चंपापुरी गया। उस बाला विमलमती से उसने भेंट की तथा आशीर्वाद देकर चित्रपट को खोल कर उसने दिखलाया।

विमलमती ने जब चित्रपट देखा तो वह विह्वलाङ्ग होकर धरा पर गिर पड़ी। उसके शरीर में हार व माला सुशोभित हो रहे थे। उसे चंदन से सींच कर सचेत कराया गया।

पड – पट–चित्रपट। विहलंघल –विह्वलाङ्ग–व्याकुल शरीर वाली।

[१०७-१०८]

किं यहु ब्रह्मा किं चउ वयणु, किं यहु सकरु किं महमहणु ।
किं यहु रूव मयणु की खानि, किसु की कला चरीतइ आणि ।।
निसुनहि सेठि कहउ हउ विवरु, कहियइ सो वसंतपुर नयरु ।
वसइ जीवदेउ कुटंब संजुत, तिहि जिरणदत्त मनोहरु पूतु ।।

अर्थ :—(जब सेठ ने यह चित्र देखा तो उसने कहा) "क्या यह ब्रह्मा है अथवा यह विष्णु है ? अथवा शंकर है अथवा मधुसूदन कृष्ण है अथवा यह रूप एवं काम (लावण्य) की खान है ? यह किसकी कला है जिसे हे दूत ! तू ले आया है ? ।।१०७।।

उस ब्राह्मण ने कहा, "हे सेठ सुनो मैं तुमसे विवरण के साथ कहता हूँ; उसे वसंतपुर नगर कहते हैं । उस नगर में जीवदेव सेठ सकुटुम्ब रहता है, उसका यह सुन्दर पुत्र जिनदत्त है ।" ।।१०८।।

महमहणु – मधुमथन–विष्णु, उपेन्द्र । रूव – रूप । तइ – तत्र, तदा–वहां, उस समय । चरी – चरीय–चरक–चर, दूत ।

[१०९-१११]

इहां हो तउ गयउ सुतधार, जाइ कही विमलामति नारि ।
तबहि बुलाइ सेठि मंतु[1] कीय, पट्टय वरण तुहारी धीय ।।
रिगय परियण तबु लइ हकारि, पूछइ सेठि मंतु बइसारि ।
परियणु भरगइ विमल अस कीज, विमलमति जिरणदत्तहि दीज ।।
अहो कुटंब तुम्ह नीकउ कियउ, इसवर बोल हम विगसइ हियउ ।
धीय रूवडी कहा सो कीज, ता पर अवस सजण घरि दीज ।।

अर्थ :—(पुनः उसने कहा) "जब यहां से होकर सूत्रधार गया था,

१. मनु–मूलपाठ ।

उसने विमलमती नारी की बात (वसंतपुर) जाकर कही थी। तब सेठ ने (सेठानी को) बुला कर मंत्रणा की कि तुम्हारी लड़की को वरण करने के लिये वे (मुझे) भेजें ।।१०६।।

यह सुनकर सेठ ने अपने परिजनों को बुला लिया और उन्हें बिठाकर उसने मंत्रणा पूछी। परिजनों ने कहा "हे विमल, ऐसा (ही) करो; विमलमती को जिनदत्त को दे दो ।।११०।।

सेठ ने कहा, "हे कुटुम्बियों, तुमने अच्छा किया, तुम्हारे इस श्रेष्ठ वचन से हमारा हृदय विकसित हो रहा है। दुहिता रूपवती हो तो क्या किया जाय? हो न हो उसे अवश्य किसी सज्जन के घर दे दिया जाए" ।।१११।।

[११२-११३]

चवइ सेठि तुव देण्ण सभाइ, नीकौ लगनु विवाहहु आइ।
धीय रूप पुणु पट्ट लिहाइ, कापरु पहिरि विप्पु घर जाइ।।
विप्पह जाइ भेटियउ साहु, सेठि जीवदेउ हलतिनवाहु।
तुमह काजु हम कियउ जु बहुत्त, धण्ण सुलखणु तुहारउ पूतु।।

अर्थ :—तब सेठ (प्रस्ताव स्वीकार करते हुये) दैन्य स्वभाव से कहने लगा "अच्छी लगन में आकर ब्याह करलो।" फिर (उसकी) लड़की का रूप पट्ट पर लिखा कर और कपड़े पहन कर वह ब्राह्मण (वापस) घर गया ।।११२।।

(घर) जाकर ब्राह्मण ने सेठ से भेंट की। सेठ जीवदेव उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। ब्राह्मण ने कहा "मैंने तुम्हारा कार्य बहुत (प्रकार से) किया। तुम्हारा सुलक्षण पुत्र धन्य है ।।११३।।

देण्ण / दइण्ण — दैन्य।

विवाह वर्णन

[११४-११५]

तवहि सेठि दिठियउ तुरंतु, चित्त ग्रहिलाविउ पूछइ संतु ।
ग्रावत जात न लागो बार, तिन्हु कं खेमु कुसल परिवार ।।
तिन्हु कहु खेमु कुसलु सवु काहु, ग्रह ग्राये हमु रोपि विवाहु ।।
बाभणु भरणइ वेण्णि करि जोडि, ग्रवरु लिखतु किन देखहु छोरि ।।

ग्रर्थ :—तब सेठ ने (उसे) शीघ्र देखा ग्रौर मन में प्रसन्न होकर शांत भाव से पूछने लगा, "तुम्हें ग्राने जाने में कोई देर नहीं लगी। क्या उनके परिवार में कुशल क्षेम है" ? ।।११४।।

"उनके यहाँ सब किसी की कुशल क्षेम है ग्रौर मैं विवाह निश्चित कर ग्राया हूँ।" यह कह कर ब्राह्मण ने दोनों हाथ जोड़े ग्रौर कहने लगा "इसके ग्रतिरिक्त (जो कुछ उधर का समाचार है वह) इस लेख को खोल कर क्यों नहीं देखते हो ? ।।११५।।

[११६-११७]

तउ जिरणदत्तह लइय हकारि, पूछइ सेठि बात वइसारि ।
निसुरण पूत हउ ग्रक्खउ तोहि, इकु गिरु लेख वाचि किन मोहि ।।
भगति जुहारु कुंटब कुसलात, ग्रह छइ लिखी लगुरण की बात ।
ग्रति रूवडी नयरण सुतारि, बीठी लिखी विमलमति नारि ।।

ग्रर्थ :—फिर उसने जिनदत्त को बुलाया तथा (पासमें) बिठला कर वह बात पूछने लगा पुत्र ! सुनों मैं तुमसे एक बात कहता हूँ, निश्चित रूप से इस लेख को पढ़ कर मुझे क्यों न सुना दो" ।।११६।।

(पुत्र ने पढ़ कर कहा,) पत्र में भक्ति, जुहारु ग्रौर (ग्रपने) कुटुम्ब की कुशल-क्षेम लिखी है तथा उसमें लग्न (विवाह) की बात भी लिखी

हुई है। (इसके अनन्तर) उसने अत्यधिक रूपवती तथा सुन्दर तारिकाओं के नेत्रवाली विमलमती नारी को (पट्ट पर) लिखा (चित्रांकित) देखा ॥११७॥

[११८-११९]

पुणु जइ देखइ नारि गुणंग, काम बाण धाइय सब्बंग ॥
अतुल महाबल साहर धीर, गउ बिहलंघल तासु शरीर ॥
भणइ सेठि हमु हुइहइ सोगु, करहु विवाह हंसइ जिण लोगु ।
जे र विजाहरि रूवहि रासि, अवसि करमि तोहि घरि दासि ॥

अर्थः—जब उसने गुण सम्पन्ना उस स्त्री (विमलमती) को देखा तो उसके सर्वांग को काम बाण ने बेध दिया। वह अतुल महा बलवान एवं धीर साहूकार था किन्तु (उस नारी के चित्र को देखते ही) वह शरीर से विह्वलाङ्ग हो गया।

सेठ ने कहा "(हे पुत्र, तुम्हारी इस दशा से) हमें तो दुःख होगा। तुम विवाह करो, जिससे लोग हंसी नहीं करें। यदि वह विद्याधरी तथा रूप की राशि है तो भी उसे अवश्य ही तेरे घर की दासी बनाऊंगा" ॥११९॥

साहर / साहार / साधुकार / साहूकार—महाजन।

[१२०-१२१]

तबहि सेठि घरि उछउ कियउ, सहु परियणु न्योते आइयो ।
पंच सबद बाजेबि तुरंतु, बहु परियणु चाले सु बरातु[1] ॥
एकति जाहि सुखासण चढे, एकनु बाहर भोडे तुरे ।
एकनु साजित सिखरी घरी, एकणु साजि पलाणी करी ॥

अर्थ :—तब सेठ ने अपने घर में उत्सव किया। (उसमें) सभी परिजनों

१. बरात – मूलपाठ।

ने निमन्त्रण पाकर भाग लिया। शीघ्र ही पांच प्रकार के बाजे बजने लगे तथा बहुत से परिजन बारात में चले ।।१२०।।

कोई बराती सुखासण (पालकी) पर चढ़े जा रहे थे तथा कोई घोड़ों पर काठी रख करके चले। कोई शीघ्र जाने वाले वाहनों पर चले और किसी ने ऊँटों पर पलाण सजाया।

उछउ – उत्सव। परियगु – परिजन। सुखासण – एक प्रकार की पालकी।

[१२२–१२३]

एकति डाडी डोला जाहि, एकति हस्त चढे विगसाहि ।।
एकति जाहि विवाहणु वइठ, सबु मिलि चंपापुरिहि पइठ ।।
चंपापुरि कोलाहलु भयो, आगइ होनि विमलु आइयो ।
मिलिउ लोगु भउ हल्ल कल्लोलु, उपर परते देहि तबोलु ।।

अर्थ :—कोई डांडी के डोले में चल पड़े। कोई हाथी पर चढ़े हुए प्रसन्न हो रहे थे। कोई विमानों में बैठ कर जा रहे थे और वे इस प्रकार सब मिलकर चम्पापुरी की ओर चले ।।१२२।।

चंपापुरी में कोलाहल मच गया। विमल सेठ अगवानी के लिये आगे आया। लोग जब आपस में मिले तो शोरगुल एवं प्रसन्नता छा गयी और वे एक-दूसरे को तांबूल देने लगे ।।१२३।।

डोला – दोल। हल्ला –हल्ला। तबोल – ताम्बूल–पान।

[१२४–१२५]

भणइ विमलु तुम्हि अैसो करहु, कुमर बरात सबु जेंवण चलहु ।
उठहु सुहड जेंवहु जिवणार, पुनि तौ होइ लगुण की बार ।।

चउरी रचीय हरिए बास, अरु तह थापे पुण्ण कलास ।
गावहि गीतु नाइका सउकु, चउरी पूरिउ मोती चउकु ।।

अर्थ :—विमल सेठ (परिजनों से) कहने लगा, आप ऐसा करें कुमार एवं बरात (को लेकर) सब जीमने चलें । हे सुभटो, उठो और जीमणवार जीमो क्योंकि फिर लग्न का समय हो जावेगा ।।१२४।।

हरे बाँस की चँवरी (वेदिका) बनायी गयी और वहाँ पुण्य कलश स्थापित किए गए । स्त्रियाँ उत्साहपूर्वक गीत गाने लगी तथा उन्होंने चँवरी के बीच मोतियों का चौक पूरा ।।१२५ ।।

जेंवरण – जीमन । सुहड – सुभट । लगुरण – लग्न । पुण्ण – पुण्य, पवित्र । नाइका – नायिका–स्त्रियाँ । सउका – स+उत्क – उत्साहपूर्वक ।

[१२६–१२७]

भयो विवाह विमल कसु किण्ण, अगनिउ दाम[1] वाइजी दिण्ण ।
समदी विमलमती विलखाइ, लइ विवाह बसंतपुरु जाइ ।।
घरह जाइ ते कहा कराइ, चडिवि अवास भोग विलसाइ ।
राज करत दिनु केतकु गयो, एतहि अवरु कथंतरु भयो ।।

अर्थ :—विवाह सम्पन्न हुआ तथा विमल सेठ ने दहेज में अगणित द्रव्य दिया । उसने कुमारी विमलमती को विलखते हुए विदा किया अथवा समधी (व्याही) विलखती हुई विमलमती को लेकर विवाह के पश्चात् बसन्तपुर के लिए रवाना हो गये ।।१२६।।

घर जाकर उन दोनों ने क्या किया । वे अपने महल में रह कर भोग भोगने लगे । इस प्रकार राज्य करते हुए (आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए) कितने ही दिन व्यतीत हो गये । इसके पश्चात् कथा का प्रवाह दूसरी ओर मुड़ा ।

१. मूलपाठ – दास ।

कमु – कीदृश। दास (दाम) – द्रव्य–सोने का सिक्का–सेवक। समद् – विदा करना।

[१२८–१२६]

चडे सुखासरण जात विहार, भई भेट लंपटह जुवार।
आइ कुमारी बोलियो बोलु, अहो जिनदत्त इकु खेलहिं खेलु॥
णं णं कार करत वइसरइ, सूनो वाउ जुवारिउ धरइ।
पहरण मनावी पूर हुवा, आप आपु कू भासहि तिया॥

अर्थ :—एक दिन पालकी में बैठ कर चैत्यालय को जाते हुए जुवारियों एवं दुराचारियों से (जिनदत्त की) भेंट हो गयी। उन्होंने (जिनदत्त को देखकर) कुमारी आ रही है, इस प्रकार बचन कहे और फिर कहा "अहो जिनदत्त (आओ) हम एक खेल खेलें" ॥१२८॥

मना करते रहने पर भी वह वहां बैठ गया। और तब जुवारियों ने एक सूना दाव लगाया। (पासा) खेलने पर उनकी इच्छा पूरी हुई तथा वे अपने-अपने को तीन अंकों वाला कहने लगे ॥१२६॥

तिया – पाँसे की वह ढलान जिसमें प्राप्त अंक ३ के हों।

द्यूत क्रीडा

[१३०–१३१]

खेलत भई जिरणदत्तहि हारि, जूवारिन्हु जीति पच्चारि।
भरणइ रलहु हमु माहीं कोडि, हारिउ दव्वु एगारह कोडि॥
हारि दव्वु घरि चाहइ जारिण, जुवारीन्ह रु दीनी प्राण।
हम विणु दीने जइ घर जाहु, तो तुम्ह जीवदेउ बध करहु॥

अर्थ :—खेलते-खेलते जिनदत्त की हार होनी गयी और (अन्त में)

जुवारियों ने ललकार कर उससे दाव जीत लिया। रल्ह कवि कहता है कि जुवारियों ने कहा, कि हमारा इसमें कोई दोष नहीं है" और इस प्रकार जिनदत्त ग्यारह करोड़ द्रव्य वहां हार गया ।।१३०।।

हारने के पश्चात् जब जिनदत्त ने घर जाना चाहा तो जुवारियों ने उसे सौगंध दिला दी और कहा कि यदि हमें बिना दिये घर जाओगे तो तुम जीवदेव का वध करोगे ।।१३१।।

पच्चारि – प्रचारय्–ललकारना। मूलपाठ–करउ

[१३२–१३३]

सो जिणदत्त अगोंटिउ तहां, पठवउ जण ब भंडारी पहां।
जाइवि तेण कही यह बात, देहु पदारथ जाहु तुरंत ।।
भंडारिउ कोपिउ पभणेइ, जूवा हारे को धणु देइ।
देइ सेठि त रु देखहु मांगि, मइ भंडारहं विलाइबो आगि ।।

अर्थ :—उसके पश्चात् जिनदत्त तो वहीं रुक गया और उसने एक आदमी अपने भंडारी के पास भेजा। उसने वहां जाकर सारी बात कही और कहा कि शीघ्र ही बहु-मूल्य रत्नादि दो जिससे वह जावे ।।१३२।।

भंडारी क्रोधित होकर कहने लगा कि जुए में हारने वाले को कौन धन देता है? यदि सेठ देवे तो उससे मांग करके देखलो। मैं (तो) भण्डार को अग्नि में नष्ट नहीं होने दूंगा ।।१३३।।

[१३४–१३५]

जणु उठि गयउ विमलमति पास, जिणदत्तह छइ पडिउ उपासु।
णिसुणि बात निय मणि आकुली, आफी रयण जडित काचुली ।।
माणिक रतन पदारथ जडी, विचि विचि हीरा सोने घडी।
टए पासि मुत्ताहल जोडि, लइ हइ मोलि सु णव धन कोडि ।।

अर्थ :—वह व्यक्ति फिर विमलमती के पास उठ कर चला गया और कहा कि "जिनदत्त को उपास करना पड़ गया है।" यह बात सुन कर वह अपने मन में व्याकुल हुई तथा उसने अपनी रत्न-जड़ित कंचुकी उसे दे दी ।।१३४।।

वह कंचुकी माणिक्य एवं रत्नों आदि पदार्थों से जड़ी हुई थी तथा बीच-बीच में हीरे एवं सोने से घड़ी हुई थी। इसमें पास-पास में मोती जड़े हुए थी। तथा वह नौ कोटि द्रव्य में मोल ली गयी थी ।।१३५।।

[१३६–१३७]

जणु लइ गयउ काचुली तहां, छइ जिणदत्त अघोटिउ जहां ।
हारिवि दव्व काचुली आपि, तुणु घर जाइवि पडिउ संतापु ।।
पडिउ संतापु भयइ विललाइ, वापु विढंती कुपुरिषु खाइ ।
मो समु अवर कुपूत न भयो, तात अर्थ मइ ह...णु लयो ।।

वह व्यक्ति कंचुकी लेकर उसी स्थान पर गया जहाँ पर जिनदत्त रुका हुआ था। जिनदत्त हारे हुये द्रव्य (के रूप) में कंचुकी अर्पित कर घर चला गया और फिर वहाँ संताप करने लगा ।।१३६।।

वह दुखित होकर विलाप करने लगा और कहने लगा कि पिता की कमाई (इस प्रकार) कु पुरुष ही खाता है। मेरे समान दूसरा कौन कुपुत्र होगा जिसने पिता के धन को इस तरह हारने के लिये लिया हो ।।१३७।।

अघोटिउ – अगोटना, रोकना, छिपाना। आप् – अर्पय्–अर्पित करना। वापु – पिता। विढंती – कमाई हुई पूंजी।

[१३८–१३९]

धीर वीर जे पुरिस गहीर, विढवहि अर्थ जाहि पर तीर ।
विढइ अर्थ जिण भुंवेवा ..करहि, ते पुरिस किन जाम सि मरहि ।।

उद्दिमु करहि जे साहसु करहि, धीरे होइ दिसंतर फिरइ ।
विढइ लच्छि जे पुरवहि आस, आए गुणि यहि दस मास ॥

अर्थ :—जो पुरुष धीर, वीर एवं गम्भीर होते हैं वे परदेश जाकर धन कमाते हैं । जो धन कमा करके उसकी वृद्धि नहीं करते हैं वे पुरुष क्यों नहीं जन्म ग्रहण करते ही मर जाते हैं ॥१३८॥

जो साहस करके पुरुषार्थ करते हैं तथा धीरतापूर्वक देशान्तरों में फिरते हैं, तथा जो लक्ष्मी कमा कर आशा पूर्ण करते हैं ऐसे ही लोगों को दस मास तक माता के गर्भ में रह कर उत्पन्न होना उचित मानना चाहिए ॥१३९॥

[१४०-१४१]

ना विढवहि न दिसंतर फिरइ, दान धरमु उपगार नु करहि ।
दिहि न किसहि पातकी लोणु, बइठे राखहि घर के कवणु[1] ॥
गासत घर बैठे सु खियाहि, पाणिऊ पिवहि वार चउ खाहि ।
आंसु पराई करइ जू मुयउ, सोभित न पूतु गरभ हो मुयउ ॥

अर्थ:—जो न धन कमाते हैं और न किसी देशान्तर में जाते हैं तथा न दान, धर्म एवं परोपकार करते हैं । ऐसे पापी किसी को नमक भी नहीं देते हैं, और वे केवल घर के कोने में बैठ कर रखवाली करते हैं ॥१४०॥

बैठे बैठे घर को नष्ट करते हैं और क्षय को प्राप्त होते हैं । उनका कार्य केवल पानी पीना तथा चार २ बार खाते रहना है । जो दूसरों की आशा करते हैं वे मरे हुये हैं । ऐसा पुत्र (भी) शोभित नहीं होता, वह भी मानों गर्भ में ही मर गया हो ॥१४१॥

दिसंतर – देशान्तर । उपगार – उपकार । लोणु – लवण, नमक । चार चउ – चार बार ।

[१४२-१४३]

एते खरिण जइ आयो पूव, कउण पूत तुम्ह पडिउ संतापु ।
संप (इ) पूत सुपत्तह दीज, जूवा हारि होरिण न हु कीज ।।
जूवा हारिवि खोवहि दव्वु, तिन्ह कहु पूत हसइ जणु सव्वु ।
बडइ खखंदि लछि पाइयइं, सा किमु पूतु अपहि लायइइ ।।

अर्थ :—उसी क्षण जब उसका पिता आया, तो उसने कहा "हे पुत्र, तुम कौन से दुख में पड़े हो ? संपत्ति को सुपात्र को देना चाहिए किन्तु अब जुए में हार कर चिन्ता न करनी चाहिए ।।१४२।।

जुए में हार कर जो द्रव्य खोता है, हे पुत्र ! उस पर सभी जन हँसते हैं । बड़ी कठिनाई से लक्ष्मी पाई जाती है उसे हे पुत्र ! किस प्रकार कुमार्ग में लगाया जाय ? ।।१४३।।

जइ – यदा – जब । पूव – पितृ – पिता । सुपत्त – सुपात्र । होरिण – चिन्ता । खखंदि – कठिनता । अपह – अपथ – कुमार्ग ।

[१४४-१४५]

दीजइ हीरण दीरण कहु पूत, धम्मु काजि वेचियइ बहुत ।
कंइ बालकहु दीज, अउर बछ संपय कहु कीज ।।
इमु समझाइ जिवायौ जाम, जिरणदत्त भयो परहस ताम ।
देखि रलह तिस कोवि उपाउ, घर छाडरण कौ करं उपाउ ।।

अर्थ :—"हे पुत्र ! हीनों (अपंगों) एवं दीनों को देना चाहिए और धर्म कार्य के लिए बहुत कुछ (यदि आवश्यक हो तो) बेच भी डालना चाहिए । तथा (चाहे उसे) किसी बालक को दे दिया जावे किन्तु हे वत्स ! संपत्ति का और क्या किया जावे" ।।१४४।।

इस प्रकार अपने पुत्र को समझा कर जब उसने उसे जिमाया उस

समय जिनदत्त प्रसन्न हो गया। (किन्तु) रल्ह कवि कहता है वह अवसर देख कर घर छोड़ने का कोई उपाय करने लगा ॥१४५॥

[१४६-१४७]

झूठउ लेखि सुसर कहु लिखइ, फुणि बुलाइ जण एकह कहइ ।
कहिउ सेठिस्यों जाइवि तेण, हौं जिणदत्तह आयउ लेण ॥
तउ जिणदत्तह लेइ हकारि, पूछइ मंतु सेठि बइसारि ।
जइयह पूत तत इसउ कीज, नातरु घर पठइ जणु बीज ॥

अर्थ :—(तदनन्तर उसने) अपने श्वसुर का एक झूठा लेख (पत्र) लिखा और एक व्यक्ति को बुला कर कहा, "सेठ के पास जा कर यह कहो कि मैं जिणदत्त को लेने आया हूँ ॥१४६॥

फिर सेठ ने जिनदत्त को बुलाया और अपने पास बैठा कर मंत्रणा की और पूछा "यदि पुत्र, जाना है तो ऐसा करो, नहीं तो इस व्यक्ति को घर भिजवा दो" ॥१४७॥

[१४८-१४९]

तो जिणदत्त भणइ कर जोडि, हम कहु तात देहु जिण खोडि ।
आपु मतं हों कैसे चलौ, जो तुम पिता कहहु सो करौ ॥
पिता मतइ जिणदत्त चलाइ, संबल बहुलकु देइ अघाइ ।
विमलामती चलो तिह ठाइ, सासु सुसरु कइ लागइ पाइ ॥

अर्थ :—तब जिनदत्त हाथ जोड़ कर बोला "पिताजी हमें कुछ दोष न दो। मैं अपने मतानुसार कैसे चलूंगा ? जो आप हे पिता कहेंगे मैं वही करूंगा" ॥१४८॥

पिता से आज्ञा लेकर जिनदत्त चला गया उसके साथ मार्ग के लिये बहुत

सा सामान बांध दिया गया । विमलामती भी सास श्वसुर के पांव लग कर उसी स्थान को चली ॥१४६॥

[१५०-१५१]

जणे पंचदश गोहिरिण चले, वेगि मज्झि चंपाउरि मिले ।
भणइ विमल तुम्ह नीकउ कियउ, आणि भिटाइय म्हारिय धीयउ[1] ॥
दिन दोइ चारि तिहा ठा रहइ, पुणु उवाउ चलिवे कौ करइ ।
सो जिणदत्तु विमलमति कंतु, नंदणवणु चलिलउ वियसंतु ॥

अर्थ :—(जिनदत्त के) साथ में पन्द्रह आदमी और चले और शीघ्र ही चंपापुर आकर उन्होंने पडाव किया । विमल सेठ ने उससे कहा "तुमने अच्छा किया जो यहां लाकर मेरी लड़की से भेंट करादी" ॥१५०॥

दो चार दिन तो वहां वह ठहरा लेकिन फिर चलने का उपाय करने लगा । वह विमलमती का पति जिनदत्त विकसित होता हुआ नंदनवन को चला ॥१५१॥

गोहिरिण – साथी । उवाउ – उपाय

१. धीयो–मूल पाठ

[१५२-१५३]

देखित वासुपूज्ज कौ भवणु, पंचमि ताहि करायौ न्हवणु ।
अंजणु मूलु लई तं जोइ, भयो परछन्नु न देखइ कोइ ॥
पुणिरव असीस देइ सोधरणी, फूलह मांझि होंति अंजणि ।
सिरह असीस आभड़ी जाम, विमलामती न देखइ ताम ॥

अर्थ :—(उस नंदनवन में) वासुपूज्य स्वामी का मन्दिर देख कर जिनदत्त ने पंचामृत अभिषेक कराया । उसने अंजनी मूल (एक प्रकार की

जड़ो) को देखकर लिया—(उसकी सहायता से) वह प्रछन्न हो जाता और उसे कोई न देख पाता था ।।१५२।।

फिर उसने (सभी को) खूब आशीर्वाद दिया तथा वह फूलों के मध्य होने वाली पराग (रूप) हो गया। जब (विमलमती) के शिर पर (हाथ रख कर) उसने आशीष दी, तो विमलमती भी उसे नहीं देख सकी ।।१५३।।

पंचमि — पंचामृत

वस्तु बंध

[१५४]

पुणुवि सिर रूधित्त अंजणीया ।
उझत्ति पछण्णु भयउ, सिग्घु मोवि दसपुरि पइठिउ ।
ता रडियउ विमुलमई, जा न कंतु निय नयणु विठियऊ ।।
छंडि इकल्ली जिणभुवणि, गउ पहु कारिणि कवण ।
पिय विऊय हुय रल्ह कइ, रोवइ हंसागमणि ।।

अर्थ :—जिनदत्त ने फिर सिर पर अंजनी रख ली जिससे वह झट प्रछन्न हो गया और शीघ्र ही दशपुर पहुँच गया। जब उसने अपने स्वामी को अपनी आंखों से न देखा तब विमलमती (रोने) लगी। "मुझे जिन मंदिर में अकेली छोड़ कर मेरा स्वामी किस कारण से चला गया" रल्ह कवि कहता है कि पति से विमुक्ता होकर वह हँसगामिनी रोने लगी।

उझत्ति — झटिति, झट, शीघ्र। सिग्घु — शीघ्र। विऊय — विमुक्त।

अर्द्ध नाराच

[१५५–१५६]

हंसागवणी चंवावइणी, करइ पलाव।
मोही आगइ देखत पेखत, कत गयउ नाह ।।

धाव धूपइ हियडा कोपइ, मणुम्र रडइ ।
हा हा वइया काहोभइया, पिउ पिउ पिउ कराइ ।।
आयउ मरणू णाही सरणू, साइ कहा कराऊ ।
कंठारोहणु वालि हुवासणु, झंपा देइ मराऊ ।।
काठउ कीयउ कैसे जीवउ, पिय विणु तोंहि ।
हाइ वाइ गुसइ सहि, छाडि कति गयउ कंत मोहि ।।

अर्थ :—वह हंसगामिनी और चन्द्रवदनी (विमलमती) प्रलाप करने लगी। "मेरे आगे से देखते देखते, हे नाथ, आप कहाँ चले गये।" वह दौड धूप करती है। उसका हृदय कुपित हो रहा है तथा मन रुदन कर रहा है। हा हा देव, क्या हो गया? (इस प्रकार रटते हुये) वह पिउ, पिउ करने लगी ।।१५५।।

"(अब) मेरी मृत्यु आ गयी है, किसी का शरण नहीं है, अब क्या उपाय करूं? कंठ अवरुद्ध हो रहा है, क्या अग्नि जला कर और उसमें कूद कर मरजाऊँ? तुमने कष्ट दिया है हे पति! तुम्हारे बिना कैसे जीऊँ? हाय मेरे स्वामी कहां छोड़ कर चले गये ।।१५६।।

काठ – कट्ठ – कष्ट। साइ – साति – उपाय।

[१५७]

चौदिसि जोवइ धाहहि रोवइ, कहा कियो करतार ।
वेलि चडंती पडित्थडंतो, गउ सामी अंतराल ।।
भई स दुखी काला मुखी, सासू सुसरे माइ ।
जिणदत्त गुसाईऊ अप्पाणउ, सायउ चल्लो इवहि गवाइ ।।
तसु कौ कंतू सो जिणदंतू, तिसको सुनहु विचार ।
एकल्लउ गइयउ सो जु, भयउ दसपुर वारि ।।

अर्थ :—चारों दिशाओं में वह देखती है तथा धाड़ मार कर रोती है,

परमात्मा, तूने यह क्या किया ? चढ़ती लता को गिराकर स्वामी अंतराल (बीच) में ही चले गये। अत्यधिक दुखित हुई तथा सास श्वसुर एवं माता (के सामने) वह मलिन मुख वाली हो गई। जिनदत्त गुसांई को जो अपने स्वामी थे, उन्हें मैं इस प्रकार गवां चली। अब उसका स्वामी जो जिनदत्त थे उसके बारे में सुनिये। वह जो अकेला गया था वह दशपुर के द्वार पर जा पहुँचा ॥१५७॥

चौपई

[१५८–१६०]

विमलमति जिणहरु निरु रहइ, पिय विओय सो कठ्ठवि सहइ ।
इंदिय दमइ सीलु पालेइ, णमोयार णिय चित्तु गुणेइ ॥
जीवदेव नंदनु नियकंतु, जिणवरु वंदइ परिहरि तंतु ।
जुवा खेले परिहसु भयो, मिमि संघात······दसपुरु गयो ॥
दसपुर पाटण कइ पइसार, वाडी देखतु भई वडवार ।
वृष असोक कैउ ··दि गऊ जहा, खणु इकु नीद विलंब्यो तहा ॥

अर्थ :—विमलमती निश्चित रूप से जिन मन्दिर में रहने लगी। पति के वियोग में वह कष्ट सहन करने लगी। इन्द्रियों का दमन और शील-व्रत का पालन करने लगी तथा सदैव णमोकार मंत्र का चित्त में स्मरण करने लगी ॥१५८॥

जीवदेव का पुत्र मेरा पति है। मन्दिर की वंदना करते समय मुझे छोड़ कर चला गया है। जुवा खेलने से (उसका) जो परिहास हुआ उसी चोट के कारण वह दशपुर चला गया है ॥१५९॥

[उधर जिनदत्त को] दशपुर नगर के प्रवेश द्वार पर उसके बगीचे देखते २ बड़ा समय हो गया। वह अशोक वृक्ष की ओट में गया, वहां उसने एक क्षण (थोड़ी देर) नींद में विश्राम किया ॥१६०॥

[१६१-१६२]

चढिउ सुखासणु सायरदत्तु, आयउ जहि सोइ जिणदत्तु ।
जण ए (कइ) पूछियउ उठाइ, अहो वीर तू सोवहि काइ ।।
णियमणि वीर राइ पयपाइ, तो जिणदत्तु भणइ विहसाइ ।
हउं तहु अछउ निठाले ठवण, तुम्ह तौ आए कारण कवण ।।

अर्थ :—(इतने में ही) सुखासन (पालकी) पर बैठ कर वहां सागरदत्त आया, जहां वह जिनदत्त सो रहा था । (उसके) एक जन (सेवक) ने उसको उठा कर पूछा "हे वीर ! तू क्यों सो रहा है ।।१६१।।

अपने मन में वीर का राज पद प्राप्त करके वह जिनदत्त हंस करके बोला "मैं तो निठल्ली स्थिति का हूँ; तुम यहां किस कारण आये हो ?" ।।१६२।।

[१६३-१६४]

हाथि जोडि तौ नाइकु भणइ, हूं आयो वाडी देखणइं ।
तउ जिणदत्त भणइ वियसाइ, पुर की वाडी दीसइ काइ ।।
कारणु स कौन केम गह गही, मुणिउ न सूकि जेमु यहरही ।
धणु परियणु मो घरह बहुतु, पर पंथी घर नाही पूतु ।।

अर्थ :—हाथ जोड़ कर तब नायक (सागरदत्त) ने कहा "मैं वाड़ी (बगीचा) देखने के लिये आया हूँ ।" जिनदत्त तब विकसित हो (हंसकर) कर कहने लगा "तुम्हें पुर की वाड़ी में क्या दिख रहा है ?" ।।१६३।।

कौन (क्या) कारण है ? किस प्रकार यह आह्लाद है ? यह सूखी वाडी कैसे हरी हो गई यह मैं नहीं जान पाया । मेरे घर में धन और परिजन तो बहुत हैं-किन्तु हे पथिक ! पुत्र नहीं है ।।१६४।।

वियस – विकस् – विकास करना ।

[१६५–१६६]

तउ जिणदत्त बात हसि कहइ, हउ जाण······जहि सूकी अहइ ।
तोहि निपुंस्सकु जंपइ लोगु, ताहि अमरउ रहिउ करि सोगु ।।
भणइ वीरु जइ कहिउ करेहि, वाडी सयल भुगति जइ देहि ।
फूलहि अंब नीव कचनार, सहले करि आफउ सइहार ।।

अर्थ :—फिर जिनदत्त हंस करके बात करने लगा, मैं तो सूखी (वाड़ी) ही जानता हूं । लोग तुम्हें नपुंसक कहते हैं और इसीलिये यह आम्र वाटिका शोक कर रही है ।।१६५।।

पुन: उस वीर(जिनदत्त)ने कहा "यदि आप मेरा कहना करें तो संपूर्ण वाड़ी भुक्ति (भोजन फल) देने लगे; आम, नींबू, कचनार के पेड़ों पर फूल आ जावे तथा मैं सहकार को सफल (फलयुक्त) करके अर्पित करूं" ।।१६६।।

अमरउ (अमराउ) – आम्रराजि – आम्र वाटिका

उद्यान—वर्णन

[१६७–१६८]

जइ तू वाडी करहि सुवास, तौ जिणदत्त हूं तेरउ दास ।
करहि संत जइ आवइ तोहि, निहचै राजु करहि घरि मोहि ।।
जो वाडी हुई थी मइल, अठविह पूज रई तहि सयल ।
पुष्प विडे जे उकटे गए, जिण गंधोवइ सिचण लिए ।।

अर्थ :—सेठ ने कहा "यदि तू वाडी को सुवासित कर दे तो हे जिनदत्त ! मैं तेरा दास हो जाऊं । यदि तुझे (कुछ) आता हो, तो (मेरा यह अनिष्ट) शांत कर और मेरे घर में तू निश्चय राज्य कर ।।१६७।।

जो वाड़ी मलिन हो गयी थी वहां अब सब ने अष्ट प्रकार से पूजा

की । पुष्प के जो विटप (वृक्ष) पहिले उकठ (सूख) गये थे, उनका जिन भगवान के गंधोदक से वह सिंचन करने लगा ।।१६८।।

[१६९-१७०]

जो असोक करि थक्किउ सोगु, अन पर परितहि दीनउ भोगु ।
जो छउ कसिर रहिउ केवडउ, सिंचिउ खीर भयो रूवडउ ।।
जे नालियर कोपु करि ठिए, तिन्हइं हार पदोले किए ।
जे छे सूकि रहे सहकार, तिन्हु अंकवाल दिवाए वाल ।।

अर्थ :—जो अशोक वृक्ष पहिले शोक कर (से) थक रहा था, उस पर (गंधोदक) पड़ते ही भोग में रखने योग्य हो गया । जो केवडे का पौधा पहिले कृश हो रहा था, क्षीर से सिंचित होने के पश्चात् वह सुंदर हो गया ।।१६९।।

जो नारियल क्रोध किए हुए खडे थे ? उन्हें अब हरे एवं मजबूत कर दिये । जो आम पहिले सूख रहे थे उन्होंने अंक पाली में अब मंजरिया दी ।।१७०।।

कसिर – कसिट – कृष्ट । अंकवाल – अंकपाली ।

[१७१-१७२]

नारिंग जंबु छुहारी दाख, पिंडखजूर फोफिली असंख ।
जातीफल इलायची लवंग, करणा भरणा कीए नवरंग ।।
काथु कपित्थ बेर पीपली, हरड बहेड खिरी आंबिली ।
सिरीखंड अगर गलींदी धूप, णरहि नारि तहि ठाइ सरूप ।।

अर्थ :—नारंगी, जामुन, छुहारा, दाख, पिंडखजूर, असंख्य पूगफली (सुपारी), जायफल, इलायची, लोंग, करणा तथा भरणा के वृक्षों ने नया रंग कर लिया ।।१७१।।

वहाँ जो कत्था, कैथफल, बेर, पीपल, हरड, बहेडा, खिरणी, इमली,

श्रीखंड, अगर और गलीदी वृप के वृक्ष थे, वे सुन्दर नर–नारी के समान ही वहां खडे थे। ॥१७२॥

[१७३–१७४]

जाई जूहि वेल सेवती, दवणो मरुवउ अरु मालती।
चंपउ राइचंपउ मचकुंद, कूजउ वउलसिरी जासउवु॥
वालउ नेवालउ मंदारु, सिंदुवार सुरही मंदार।
पाडल कठपाडल घणहूल, सरवर कमल बहुतक हूल।

अर्थ :—जाति, यूथिका, वेला, सेवती, दवणा मरुआ तथा मालती, चंपा, रायचंपा, मुचकुंद, कुब्जक मोलसिरी तथा जपापुष्प ॥१७३॥

बाला, निवारिका, मंदार, सिंदुवार, सुरभित मंदार, पाडल, कठपाडल, गुडहल तथा तालाब में (खिले हुए) कमलों में (भ्रमरादि का) बहुतेरा हल्ला (शब्द) होने लगा ॥१७४॥

वउलसिरी – बकुलश्री – मोलसिरी। सुरही – एक प्रकार कीघास।

[१७५–१७६]

अंबराउ फल लीयउ असरालु, कोइल शब्द कियो बंचालु।
उवहिदत्त तहि कहा कराउ, पाइ लागि पुणु घरि लइ जाइ॥
उवहिदत्त घरि गउ जिणदत्तु, धर्मपुत्त करि ठयउ तुरंतु।
तिस हित मुख अखंड सरीर, जो इह वणिज जाण पर तीर॥

अर्थ :—(अब) अमराव (आम्र वाटिका) ने निरंतर (सघन रूप से) फल धारण किए, कोयलों ने जोरशोर का शब्द किया। तब सागरदत्त ने क्या किया कि पैरों पड़ कर वह उसे घर ले गया ॥१७५॥

जब जिनदत्त सागरदत्त के घर गया तो सागरदत्त ने उसे तत्काल

धर्म पुत्र कह के मान्यता दे दी। उसके शरीर सुख के लिये पूर्ण व्यवस्था कर दी ताकि वह समुद्र पार व्यापार के लिये न [जावे] ॥१७६॥

अंबराउ – आम्रराजि। असरालु – निरंतर। बंबालु – द्वन्द्व+आलु – जोर शोर का।

[१७७–१७८]

एतहि खणि वणिवर सामहहि, ता जिणदत्त हियउ गहगहइ।
हाथ जोडि पुण पूछइ बात, हमहू वणिज पठावहु तात॥
उवहिदत्त बोलइ मुह पेखि, पूत वियोग ण सकउ देखि।
हमि तुम्हि एकहि जइबौ पूत, जिम लइ आवहि रयण बहूत॥

अर्थ :—इतने ही में कुछ बड़े व्यापारी वहाँ सम्मुख आए, जिससे जिनदत्त का हृदय गद्‌गद् हो गया। हाथ जोड़ कर सागरदत्त से उसने निवेदन किया, कि "हे तात हमें भी व्यापार करने भेजो" ॥१७७॥

सागरदत्त उसका मुख देख कर बोला, "मैं पुत्र का वियोग नहीं देख सकूँगा। हे पुत्र, हम और तुम एक ही (साथ) जाएँगे, जिससे हम बहुतेरे रत्न लाएँगे" ॥१७८॥

पेख् – प्र+ईक्ष् – देखना।

व्यापार के लिये प्रस्थान

[१७९–१८०]

उवहिदत्तु चालइ जिणदत्तु, अनु-अनु बालरु लयो बहूत।
लइ सुकीठ वस्तु सब भरी, जा पर तीर महंघी खरी॥
चारुदत्त गुणदत्तु सुदत्तु, सोमदत्तु धणउ धणदत्तु।
सिरिगणु हरिगणु आसावित्तु, छो बे हुप्पा सेठि को पुतु॥

अर्थ :—सागरदत्त और जिनदत्त चले तथा अपने साथ उन्होंने बाखरों में बहुत सा अन्य अन्य (विविध प्रकार का) सामान लिया। उन्होंने उन सब वस्तुओं को भरा जो कठिनाई से तैयार होती थी और विदेशों में बहुत मँहगी थी ॥१७९॥

(सागरदत्त के साथ) चारुदत्त, गुणदत्त, सुदत्त, सोमदत्त, धन्ना, धनदत्त, श्रीगुण, हरिगुण, आशादित्त तथा हपा सेठ का पुत्र छी था ॥१८०॥

कीठ - क्लिष्ट — क्लेश युता — कष्ट पूर्वक तैयार की हुई।

[१८१–१८२]

अजउ विजउ रजउ चलहि, आसे वासे सोम तहि मिलहि।
चलिउ साहु तेजू दिवपालु, महरु पुत सुठ सुठु सुरुपाल ॥
तीकउ वीकउ हरिचंद पूतु, ते बाखर भरि चले बहूत।
सोल्हे वील्हे गुणहि ण काहु, चलहि विज्जाहर आसे साहु ॥

अर्थ:—अजय, विजय तथा रजय चले, और आशा, वासा तथा सोम (नाम के व्यापारी उनमें) मिल गये। तेजू साह तथा देवपाल चले तथा महरु का सुन्दर पुत्र मुठु तथा श्रीपाल भी उनके साथ हो गये ॥१८१॥

हरिचंद के पुत्र तीकउ तथा वीकउ (वे भी अपना सामान) बाखरों में भर कर चले। सील्ह तथा वील्ह इस प्रकार चल पड़े कि किसी को (अपने आगे) नहीं गिनते थे तथा विद्याधर आसा साहु भी (उनके साथ) चले ॥१८२॥

[१८३–१८४]

धध धोणवहि ख ख गूढ, छोला खोखरु कन्हउ सूढु।
सुमति महामति सोतह तणउ, चलिउ सधारु वील्ह चंद तणउ ॥

पूतु न आणउ बाखर आदि, कोडि सींग भर लइ जे बादि।
धणुदेउ सेठि फुल दिए, दुइ बोहथु भरि वेणालए।

अर्थ :—गूढ खोणवाही, धाघा, छोला, खोखर, कान्हा, सूढा, महामति सोत का (पुत्र) सुमति, सधारु एवं चंद का (पुत्र) वील्हू चले ।।१८३।।

उन्होंने बाखरों में क्या है, यह न जानते हुये भी कोडियां एवं सींगों को बैलों पर लाद लिया। धनदेव सेठ ने भी, अपार सामग्री दी जिससे दो जहाज भर लिये और वेणा नगर (को जाने का संकल्प) लिया ।।१८४।।

[१८५–१८६]

धाघू पीता चालिउ अवरु, कोडि खडा तिणि लीए चमरु।
धनु नाम नागे कउ पूतु, सारु पाटलइ चालिउ घूतु ।।
जिसुकै हियउ पंच परमेठि, सो पुणु चालिउ दंता सेठि।
जिणवरु पूज करइ तिहुकाल, सोपुणु चालिउ सहु गुणपाल ।।

अर्थ :—और धाघू तथा पीता भी चले तथा करोड खरे चमर (साथ) लिए। नाग का लड़का धन्ना तथा घूत भी रेशमी (मूल्यवान पाट लेकर) चला ।।१८५।।

जिसके हृदय में पंच परमेष्टि थे ऐसा वह दंता सेठ भी चला। जो जिनेन्द्र भगवान की तीनों काल पूजा करता था ऐसा गुणपाल भी साथ चला ।।१८६।।

[१८७–१८८]

चले ति रयण परीखा करहि, चले ति मोलु पदार्थ धरहि।
सब वणजारे भए इकठाइ, कोस पंचदश मिलिए जाइ ।।
सबु वणिजारे चतुर छइल्ल, बारह सहस चले भरि बइल्ल।
जो मतिहीण अबूझ अजाण, सब मांहि उवहिदत्त परधान ।।

अर्थ :—जो रत्नों की परीक्षा (परख) करते थे वे भी चले तथा जो बहुमूल्य पदार्थ रखते थे वे भी चले। सभी व्यापारी एक स्थान पर इकट्ठे हुये तथा पन्द्रह कोश पर जा कर उन्होंने पड़ाव किया ॥१८७॥

सभी व्यापारी चतुर एवं छैले थे और बारह हजार बैलों को भर कर वे चले थे। जो मतिहीन एवं अज्ञ थे (उन) सब में सागरदत्त प्रमुख थे ॥१८८॥

रयण – रत्न। परीछा – परीक्षा, पारखी

[१८९]

छाडत नयर देश अंतराल, गए विलावल कइ पइ पसारि।
बलद महिष सबु दइ निरु करहि, वाखरु सयल परोहणु भरहि ॥

अर्थ :—नगर और देशों की दूरी को छोडते हुये वे विलावल तक चलते गये उन्होंने बैलों एवं भैंसों को दूसरों को दे दिया और सारा सामान जहाजों में लाद दिया ॥१८९॥

[१९०-१९१]

भरि बोहिथ चले निज ठाइ, अण्णु बहुत इंधणु चडाइ।
सयलह वत्थु परोहणु कयउ, बारस बरिस के संबल लयउ ॥
वणिजारे जल जंतइ ठांइ, धुजा पताका पडा इरइ।
मुदिगर लोहे भार सांकरे, सावधान हुइ वणिवर चडे ॥

अर्थ :—तदनंतर वे जहाजों को भर कर अपने स्थान को चले। साथ में बहुत सा अन्न एवं ईंधन उस पर चढा लिया। बारह वर्ष का संबल (खर्ची) लेकर सभी वस्तुओं को जलयानों में लाद दिया ॥१९०॥

वणिजारों को जल जंतुओं का पता था। (जलयानों पर) ध्वज, पताका तथा पट (हवा द्वारा) प्रेरित हो रहे थे। उन्होंने अपने साथ मुद्गर

एवं लोहे की भारी सांकल भी लीं। इस प्रकार वे व्यापारी सावधान होकर चढे ॥१६१॥

ईर – प्रेरणा करना।

[१६२–१६३]

मज्झु परोहणु रोपिउ वासु, तहि चडियउ मरजिया देसासु ।
माथे दीनी लोह टोपरी, नातरु गीद्ध लेहि चांचुरी ॥
धुजा पताका पवण जब हयउ, जोयण साठि परोहण गयउ ।
दूत र चाय र चलिउ तुरंत, सुरा सेतु दीसइ सु अणंतु ॥

अर्थ :—(उन्होंने देखा कि) मरजीवा ने प्ररोहण (जहाज) के मध्य में बाँस खडा किया तथा उस पर वह (मरजीवा) सांस रोक कर चढ गया। उसने माथे पर लोहे की टोपी दे रखी थी नहीं तो उसे (समुद्री) गिद्ध अपने चोचों में ले लेते ॥१६१॥

ध्वजा एवं पताका जब वायु से आहत हुई तब वह प्ररोहण (जलयान) साठ योजन चला गया। वे द्रुत और उत्साहपूर्वक चल रहे थे और अनंत जल ही जल चारों ओर दिखाई पड़ता था ॥१६२॥

मरजिया – मरजीवक – समुद्र के भीतर उतर कर उसमें से वस्तुओं को निकालने वाला। दूत – द्रुत – वेग से

[१६४–१६५]

सुहंर मगरमछ घडियार, पाणिउ अगम न सूझइ पार ।
जल भय कंपइ सयल सरीर, लहरि पयंड झकोलइ नीर ॥
घडहडाइ गाजइ सु समुद्द, सउ जोयण गहिरउ जलउद्द ।
बूड निकरहि रहस मुइ कीलि, जाणइ मच्छ तु घालइ लीलि ॥

अर्थ :—पानी में दुर्द्धर मगर, मत्स्य एवं घड़ियाल थे तथा उस अगम पानी का पार भी नहीं सूझता था। जल के भय से सब शरीर कांपता था तथा प्रचंड लहरों से पानी झकोले मारता था ॥१६४॥

समुद्र गड़गड़ा कर गर्जना करता था तथा वह समुद्र सौ सौ योजन गहरा था। वह मरजीवा डुबकी लेकर सुख पूर्वक मुंह को बंद किए हुये निकलता था; क्योंकि यदि मच्छों को मालूम पड़ जाता तो उसे निगल ही जाते ॥१६५॥

घड़ियार – घड़ियाल । पयंड – प्रचंड । उद्द – उदर । रहस – रभस् – मुख ।

[१६६–१६७]

वेणा नयरु छाडि जवु चलेय, कवणु दीउ वेगि परहरिय ।
भंभा पाटणु वाए वोचि, लयो वोहिथ कुंडलपुर लोचि ॥
मयणदीउ हूतइ नीसरिउ, पाटण तिलउ दीउ पइसरिउ ।
सहजावती वेगि परिहरउ, गउ वोहिथ फोफल की पुरउ[1] ॥

अर्थ :—जब वे वेणा नगर को छोड़ कर चले तब कवण द्वीप भी उन्होंने शीघ्र ही छोड दिया। भंभा पाटण बीच ही में छोड़ कर उन्होंने जहाज को कुंडलपुर खींच लिया ॥१६६॥

मदन द्वीप में होकर वे निकले तथा पाटन तिलक द्वीप में प्रवेश किया। (तदनंतर) उन्होंने शीघ्र ही सहजावती को छोड़ा और वह जहाज फोफलपुरी (पूगफल–सुपारी की नगरी) को गया ॥१६७॥

वोहिथ – जहाज । फोफल – पूगफल – सुपारी ।

१ मूल पाठ पुरी

[१६८–१६६]

वडवानल बोहिथु भउ पेलि, अंतरु छाडि पवाली वेलि ।
संखदीउ परिहरियउ आणि, गयो वहां जहि हीरा खानि ।।
पणसइ पणु जसु जिणवरु नाहु, भव अंतर दीठिउ जलवाहु ।
तहि पय परिसिव वणिवरु चलइ, कलिमलु सयलु लोउ परिहरहि ।।

अर्थ :—वह जहाज वडवानल को ढकेल कर आगे बढ़ा तथा बीच में पवाली–वेला को भी उसने छोड दिया । संख द्वीप को भी उसने जानबूझ कर छोड़ दिया और वह वहाँ गया जहाँ हीरों की खान थी ।।१६८।।

वहाँ जल के मध्य जिन चैत्यालय था तथा वहाँ उन्होंने भव से पार करने वाले जिनेन्द्र भगवान के दर्शन किये । उनके चरणों का स्पर्श करके वे व्यापारी आगे चले और समस्त लोगों ने वहाँ अपने कलिमल (पाप) त्याग दिए ।।१६६।।

[२००–२०१]

तहां हुंतउ परोहणु चलइ, जोयण सउ वीसा नीसरइ ।
सुन्हि राइसिहि कइन्हु कि भाइ, संघल दीप पहूते जाइ ।।
वणिवारा तहि ठाहरि रहइ, कय विकेण दीवि पइसरहि ।
मोल महंघी वाखर देहि, आप सउं धो साटिवि लेहि ।।

अर्थ :—वहाँ से होकर वह प्रोहण (जहाज) चला और फिर एक सौ बीस योजन निकल गया । कवियों का सत्संग करने वाले राजसिंह ने सुना है कि वे सभी सिंहल द्वीप जा कर पहुँचे ।।२००।।

व्यापारी लोग वहाँ ठहर गये तथा क्रय विक्रय करने के लिये उस द्वीप में प्रवेश किया । अपनी वाखरों (वस्तुओं) का वे महँगा किए हुए भावों में देते थे और उनकी वस्तुओं को वे सस्ते भाव में साट [बदल] लेते थे ।।२०१।।

भाइ – भागिन – साझीदार, सत्संगी । महंघ – महार्घ – महंगा ।

[२०२-२०३]

तहि घणवाहण पहु चक्कवइ, जो असराल दीप भोगवइ ।
नव निहि चउदह रयण भण्डार, विजयादे राणी सुपियार ॥
तसु कुमरि सिरियामति केह, लइ वियाधि पीडिय जसु देह ।
जो तहि पहिरइ निसि पइसरइ, कारणु किसही सो वु मर मरइ ॥

अर्थ :—उस (द्वीप) का प्रभु घनवाहन नाम का चक्रवर्ति था जो निरंतर उस द्वीप का भोग (राज्य) करता था । उसके भण्डार में नव निधियां तथा चौदह रत्न थे, और अत्यन्त प्रिय विजयादे उसकी रानी थी ।।२०२।।

उसके श्रीमती नाम की राजकुमारी थी जिस की देह व्याधि के कारण पीडित थी । जो भी आदमी निशा का प्रवेश होने पर उसका पहरा (पहर पहर तक की रखवाली करना) देता था वह मनुष्य किसी भी कारण मर जाता था ।।२०३।।

[२०४-२०५]

मंत्री मंतु कियउ भलि जोइ, घरि घरि पत्तइ वसइ सवु कोइ ।
सयल लोगु तिन्हि लयउ हकारि, कहीय बात जा वलि बइसारि ॥
कहइ मंति तुम्ह अइसउ करेहु, अपणे ऊसरइ तुम पहिरउ देहु ।
एक पूतु तडि मालिणि केरउ, पडियउ आइताइ ऊसरउ ॥

अर्थ :—मंत्रियों ने फिर भलाई देखकर मंत्रणा की, क्योंकि सभी घरों में पात्र (पहरा देने के उपयुक्त युवक) रहते थे । इसलिये उन्होंने सभी लोगों को (मंत्रणा के लिये) बुलाया और उन्हें बैठाकर उनसे बात कही ।।२०४।।

मंत्रियों ने कहा "आप लोग ऐसा करो कि अपने२ ओसरे (पारी) पर

पहरा दो।" वहां एक मालिन के एक ही पुत्र था, उसका उस समय (उस दिन) ओसरा आ पड़ा था ॥२०५॥

[२०६–२०७]

फूल विसाहुरण गउ जिरणदत्तु, मालिरिण कइ घरि जाइ पहुतु ।
रोवइ बूढी हियइ विलखाइ, तवहि वीरु पूछइ वियसाइ ॥
कउरण काज थे री आरडहि, काहु काररिण पलावे करहि ।
किसि काररिण दुख धरहि सरीरु, वेगि कहेहि इउं जंपइ वीरु ॥

अर्थ :—जिनदत्त फूल क्रय करने के लिये निकला और (संयोग से) मालिन के घर पहुंच गया। बुढिया हृदय से बिलख२ कर रो रही थी; तब उससे वीर जिनदत्त ने विकसित (खुलकर) कारण पूछा ॥२०६॥

अरी किस लिये इस रीति से रोती हो और किस कारण प्रलाप करती हो ? किस कारण शरीर को दुखित कर रही हो ? उस वीर ने कहा, "मुझसे शीघ्र कहो।" ॥२०७॥

री – रीइ – रीति। पलाव – प्रलाप। जंप –जल्प – कहना।

[२०८–२०९]

रुदन करइ अरु जंपइ वयणु, आसू बहुत न थाकइ नयणु ।
कहउं तासु जो दुखु अवहरइ, हीणहं कहे कहा सुखसरइ ॥
सुरण जिरणदत्त पयंपय ताहि, भली बुरी कहियर सवु काहि ।
मालिन वातु कहइ मनु सोइ, मन दुख तुझ निवारइ कोइ ।

अर्थ :—वह वृद्धा जिसके आंखों के आंसू नहीं रुक रहे थे, रोती हुई बोली (यह दुख) मैं उससे कहूँ जो उसे दूर कर सके। हीन (असमर्थ) से कहने से कौनसा सुख प्राप्त हो सकता है ॥२०८॥

फिर जिनदत्त उससे कहने लगा "भली बुरी जो भी हो, वह सबसे कहना चाहिए। जो बात तुम्हारे मन में हो, ऐ मालिन, बात वह तुम्हे कहनी चाहिए, जिससे कि तुम्हारा दुःख कोई दूर कर सके ॥२०९॥

[२१०-२११]

कहइ बात बूढी बिलखोइ, इहि काल इनि राइ (घ) धीइ।
जो तहि जागइ राति उहाण, सो घर दीसइ मुकऊ विहाण ॥
इहजि कुवरि...बुरी ही टेव, दिन दिन माणसु मारइ देव।
जो इहि जागइ पहिरइ हुवऊ, सो नर भोलइ (न) खियइ मुवऊ ॥

अर्थ :—वह वृद्धा रो रो कर कहने लगी, "इस समय यहाँ एक राजा की कन्या है जो कोई वहां रात्रि में (उसके साथ) दूसरा (होकर) जागता रहता है वह व्यक्ति सबेरे (दूसरे दिन) मृत दिखाई पड़ता है ॥२१०॥

राज कन्या की यह बहुत बुरी आदत है कि वह दिन प्रति दिन मनुष्यों को मारती है। जो वहाँ जागता है और पहरा देता है, वह भोला आदमी मरा दिखाई पड़ता है ॥२११॥

उह – उभय।

[२१२-२१३]

एकु पूतु एकवति घरवाहि, कहि गउ डोमु ऊसरउ ताहि।
पहिरइ आजु पूतु सो मरइ, तह दुख, पूत हियउ गहवरइ ॥
मालिण तणी सुणी जधु बत्त, आहूठ...डि उद्धसे जिणदत्त।
इहर बात पूछियइ अकाजु, पूछित ह दुखु सारउ आजु ॥

अर्थ :—(इस घर में) इकलौता एक ही पुत्र है और डोम (वधिक) कह गया है कि आज पहरे का ओसरा उसी का है। आज के पहरे में मेरा वह पुत्र मरेगा, इसी दुःख से मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है ॥२१२॥

जब उसने मालिन की यह बात सुनी तो जिनदत्त अपने मन में कहने लगा, यह बात मैंने व्यर्थ ही पूछी, किन्तु पूछ बैठने पर तो आज इसका दुःख दूर ही करूँगा ।।२१२।।

[२१४–२१५]

विरलौ नरु परतिय परिहरइ, विरलउ अवगुण कहु गुण करइ ।
विरलउ सामि कालु सयं भीच, विरलउ मरइ पराई मीच ।।
हा हा कारु करइ जिणदत्तु, मालिणिस्यों बोलइ विहसंत ।
रहु रहु माइ म रोवहि खरी, कांइ कुढावहि महु डोकरी ।।

अर्थ :—विरला ही मनुष्य दूसरे की स्त्री का परित्याग करता है, तथा विरला ही कोई अवगुण करने पर भी गुण करता है । विरला ही भृत्य स्वामी का कार्य करता है तथा विरला ही दूसरे की मौत मरता है ।।२१४।।

जिनदत्त हः हः करने लगा तथा मालिन से हँसता हुआ बोला, "हे माता चुप रह चुप रह । इतना अधिक मत रो । हे वृद्धा, तू मुझे क्यों कुढा रही है ।।२१५।।

मीच – भृत्य । मीच – मृत्यु । डोकरी – वृद्धा ।

[२१६–२१७]

जइ महु बूढण नीदउ चरणु, तहु महु आदिनाह जिण आणु ।
कहा पचारहि मूढनि काज, तुव सुउ जह हमु माहिब्वउ आजु ।।
कहत बात भयो तीजो पहरु, आयो डोम हकारउ अवरु ।
तौ जिणदत्त भणइ विहसाइ, सोझी बारु व लेब्वउ आइ ।

अर्थ :—यदि मैं वृद्धा के चरणों की निंदा करता हूँ, तो मुझे आदिनाथ की सौगन्ध है । (इस प्रकार) मूर्ख मुझे क्यों व्यर्थ ही ललकार रहे हैं ?

तुम्हारे इस पुत्र को और मुझको (दोनों को) आज उसे मारना होगा ॥२१६॥

बातें कहते हुये तीसरा पहर हो गया। डोम आया और उसने पुकार लगाई तो जिनदत्त हँस करके कहने लगा कि संध्या समय आकर मैं सेवा करूँगा ॥२१७॥

उह – उभय

[२१८–२१६]

माल गंठि पहरण पहरियउ, वीर गंठि करि जूडउ ठयउ ।
लइ कर खडग फरी फटकाइ, खांति तंबोल बसण सो जाइ ॥
चढत अवास दीठ जवु राइ, घणवाहण बोलइ को जाइ ।
कउणे कहिउ रायस्यों खरे, यह देव जाइ बसण ऊसरइ ॥

अर्थ :—मल्ल गांठ देकर [और द्वन्द्व युद्ध के लिये] उसने कपड़े पहन लिए तथा वीर ग्रंथि कर उसने बालों को बाँधा। हाथ में तलवार लेकर फरी (लाठी) को फटकाता (फटकारना) हुआ पान खाता हुआ वह सोने के लिये चला ॥२१८॥

महल पर चढते हुये जब उसे राजा ने देखा तो पूछा कि "कौन जा रहा है? किसी ने राजा से खड़े होकर निवेदन किया हे देव! यह पागी पर सोने के लिए जा रहा है ॥२१८॥

तबोल – पान। को – कौन।

[२२०–२२१]

देखि राउ पछतावउ करइ, अइसउ वीरु ऊसरइ मरइ ।
धिय पापिणी लियो ऊखालि, जितनु देखउं तितु देहि निकालि ॥

गउ जिणदत्तु प्रवास मझारि, सहसर वयणी दीठी नारि ।
आवतु देखि राइ की सुवा, हाथु जोडि आसणु जंपिया ।।

अर्थ :—राजा देख कर पछताने लगा, कि "ऐसा वीर ओसरे (पारी) पर मरेगा। धिक्कार है जिसने ऐसी बुरी चाल कर रखी है जितनों को देखता हूँ वह उनको (मार कर) वहाँ से निकाल देती है।" ।।२२०।।

जिनदत्त महल के मध्य गया (वहाँ) वह (चन्द्र) वदनी स्त्री दिखाई दी। जब राजा की सुता ने उसे आते हुए देखा तो हाथ जोड़ कर उससे आसन पर बैठने को कहा ।।२२१।।

सुवा – सुता

वस्तु बंध

[२२१]

विजय मंदिर गयो जिणदत्त ।
तां विंभउ णिय मणहं, जवु जवु सुछंडि पालंक उठियउ ।
जिम मुद्ध माणुसु गसहि, मुहु मयंक बोलंति ।।
मिठिया कि अण वाणहि, हणहि अवरु ण आवहु तुज्झ ।
भणइ वीरु फुड वत्त कहि, सिरिमइ सुन्दरि तुज्झ ।।

अर्थ :—जिनदत्त विजय मन्दिर गया। उसे अपने मन में विस्मय किया तब वह (जिनदत्त) (व्यवस्थापूर्वक) पलंग को छोड़ कर अलग जा बैठा। जिस प्रकार मोह मनुष्य को ग्रसता है उसी प्रकार वह चन्द्रमुखी बोली "तुम क्यों अपनी मधुरिमा से मुझे मार रहे हो, और (तुम मेरे) पास (क्यों) नहीं आ रहे हो? यह सुन कर वह वीर (जिनदत्त) कहने लगा "श्रीमती? सुन्दरी! तुम स्फुट (स्पष्ट) रूप से (अपनी) बात कहो" ।।२२२।।

विंभउ – विस्मय । जवु – यापय – व्यवस्था करना ।
पालंक – पर्यङ्क – पलंग । मुद्ध – मुग्ध ।

[२२२]

राइ सुन्दरि पेखि वर वीरु ।।

को तुहु पर लोय, महु कासु पुत्ति कवणे गवेसिउ ।
परहसु सायर तिरिवि आणि, सत्थे तुहु णयरि पेसियउ ।।
देखि बूढि रोवंति दुहिया, एक्कइ पूतु विशाल ।
तिहि सुउ कहुतो मरउ, अइसइ दिण्ण मइ भाव ।।

अर्थ :—राज सुन्दरी उस श्रेष्ठ वीर को देख कर (पूछ कर) बोली। इस परलोक (परदेश) में तुम कौन हो ? तुम किसके पुत्र हो, और किसकी तलाश में हो ? (उसने उत्तर दिया)–(लोक) परिहास के कारण मैंने सागर पार किया और एक (व्यापारी-दल) में यहां आकर तुम्हारे नगर में मैंने प्रवेश किया। दुखिता वृद्धा को जिसके एक ही विशाल नाम का पुत्र है, रोती देख कर उसके पुत्र के स्थान पर मैं मरूंगा, ऐसा मैंने उसे वचन दिया है ।।२२३।।

पेख – प्र+ईक्ष – देखना । गवेसउ – गवेषणा करना – खोजना सत्थ – सार्थ –व्यापारी दल । पेस् – प्रविश – घुसना, पैठना । दुहिया – दुःखिता ।

[२२३]

ताहं जपइ राय सुंदरीय ।
परऐसिय पाहुणइं जांहि जांहि, मइ तुह निवारिउ ।
तुव पेखि मोहिउ जणणु, बस हूं मइं जन तुंह जु मारिउ ।।
एमु भणंतहि रल्ह कइ, गउ छाव गइ माइसि ।
कथा एक वर वीर कहु, निवडइ पहिरइ बइसि ।।

अर्थ :—तब राज सुन्दरी [राजकुमारी] कहने लगी "ऐ परदेशी

पाहुने ! तुम यहाँ से जाओ जाओ। मैं तुम्हें मना करती हूँ। तुम्हें देख कर मेरे पिता मोहित हो गये हैं और एक मैं हूँ जो तुम्हें मारने जा रही हूँ।" रल्ह कवि [कहता है] इस प्रकार कहते कहते काफी रात्रि बीत गयी और फिर [उसने कहा] "हे श्रेष्ठ वीर एक कथा कहो जिससे पहरा बैठे बैठे [जागते] रात्रि का शेष प्रहर निकल जावे ॥२२४॥

नाराउ छंद

[२२४]

ता पहरइ बैठिउ नारि दिठउ वीर भुजंगु ।
बोलइ कुद्धि सोचि विरुद्धि मोडति अंगु ॥
कहहि कहा नीको जाणी, निंद सुखु जिमु होइ ।
कह बाता सोजि तुरंता तथ मइ धण सोइ ॥

अर्थ :—उस पहर में वह नारी बैठी रही और एक वीर [भयंकर] सर्प उसको दिखाई पड़ा। [अतः] वह क्रुद्ध होकर और विरुद्धित होकर तथा अंगों को मोड़ती हुई बोली "तुम कोई भली भाँति जानी हुई कथा कहो, जिससे निद्रा-सुख मिले। कथा-वार्ता से वह शीघ्र वहाँ मृत स्त्री [होकर] सो गयी ॥२२४॥

[२२५]

सूती जा महि मंतु ता महि जिणदत्त करई ।
गयउ मसाणि मडउ आणि खाट तलि धरइ ॥
अपुणु सौवइ छण्णउ होइ खडगु सभालि ।
अज्ज जु आवइ पहिरइ खायइ मरइ अयालि ॥

अर्थ :—जब वह सो गई उस समय जिनदत्त ने यह किया कि श्मशान भूमि जाकर वहाँ से एक मुंडी लाकर खाट के नीचे रख दिया और आप स्वयं

छन्न होकर [छिप कर] तथा तलवार सँभाल कर सोने लगा। [उसने कहा,] यदि वह पहरे में आवेगा तो वह खड्ग् से अकाल ही मरेगा ॥२२५॥

खाग – खड्ग – तलवार। अयाल – अकाल – अनुचित समय

[२२६]

एत्तहि ताला गरुलह झाला मुह मंहते नीसरइ ।
कालउ दारुण विसहरु वारणु तहि फौकरइं ॥
हिंडइ चउपासहि दीह सहासहि कालु भमंतु ।
कहि गउ सो पहिरउ जसु हो वइरिउ खूटउ जसु कउ मंतु ॥

अर्थ :—इसी समय (उस राजकुमारी के) मुख में से एक गुरु ज्वाला-निकली और वह काला और दारुण सर्प वहाँ (द्वार पर) फुंकारने लगा। वह चारों ओर घूमने लगा मानों दीर्घ काल हँसता हुआ घूम रहा हो। (उसने कहा) वह पहरेदार कहाँ गया, जिसके साथ मेरा बैर है, जो क्षय हो चुका है और जिसका अन्त (सन्निकट) है ॥२२६॥

विसहर – विषधर – सर्प। खूट – क्षी – क्षय होना।

[२२७]

माणसु सुत्तउ निदइ भुत्तउ जाणइ न काइ ।
बोलइ वीरु सा बलधीरु वह भुयंगु नितु खाइ ॥
करि कर दप्पू कालउ सप्पू लाग्यो (मुं) डइ सु लागि ।
वीरे पच्चारिवि दीनो गालिवि इव इवण लब्भइ जाण ॥

अर्थ :—यह मनुष्य (जिनदत्त) सो रहा है और निद्रायुक्त है; क्या वह (मेरा आगमन) नहीं जानता है? (यह सुनकर) वह वीर और बलधीर बोला, "यही सर्प रोज खा जाता है।" बड़े गर्व के साथ वह काला सर्प उस

को डसने लगा। (तब) वीर ने ललकार कर उसे गाली दी "अब तू जाने नहीं पाएगा" ॥२२७॥

[२२८]

अरे चोरी खाहि भाजिव जाहि पेटहि पइसि रहही ।
आजु अतडउ असिवरु मारउ का सुत णर कहाहि ॥
एवा कहि जाही वेग माही फिरि सिहि सिरि चंपिउ ।
फुक्कारंतउ धरिउ तुरंतउ पूछ धरे पिणु फेरियउ ॥

अर्थ :—अरे तू चोरी से खाता है और भाग जाता है और (श्रीमती) के पेट में घुस कर रहता हे। आज मैं इसे तलवार से मारूँगा जिससे कौन सा पुत्र नर कहा जायेगा। यह कह कर तथा वेग से जाकर उसने उस सर्प के सिर को धर दबाया और उस फुंकार करते हुये (सर्प) को तुरंत पकड़ कर और फिर उसकी पूंछ को पकड़ कर घुमाया (फिराया) ॥२२८॥

चौपई

[२२९-२३०]

धुणि भुलाइ तहि तलि सिरु करइ, गरबु छाडि विसहरु धर पडइ ।
विकल भुयंग देखी मनु धरइ, जीउ मारि को नरयहं पडइ ॥
बोलि जणाइ तउ रहु रहु करइ, हाथु होइ तउ हाथहि धरइं ।
होहि पाइ तउ जाइ पलाइ, सो वपु डाहउ मारउ काइ ॥

अर्थ :—उसे झुलाकर उसका सिर तले (भूमि) पर कर दिया, (जिसके परिणाम स्वरूप) गर्व छोड़ कर वह सर्प धरा पर पड़ गया। (अब) उस भुजंग को विकल देख कर वह मन में सोचने लगा कि जीव–वध करके कौन मनुष्य नर्क में पड़े ? यदि उसे बोली ज्ञात होती तो वह 'ठहरो ठहरो'

करता, हाथ होते तो हाथ को पकड़ता, पैर होते तो भाग जाता, अतः अब इस शरीर मात्र को क्या कष्ट दूँ अथवा मारूँ ।।२२९–२३०।।

[२३१–२३२]

जंपइ सेठिपुत्त गुण चाउ, किम करि करउ जीव कउ घाउ ।
हाथ पाउ विणु किमु साधरउ, अयसउ घालि चौपुडी धरउ ।।
घालि चउपुडी धरियउ नागु, फुनि निसंगु होइ सोवणु लागु ।
पह फाटी हूवउ भुणसारु, आयो डोमु सु काढण हारु ।।

अर्थ :—गुणों को चाहने वाला वह सेठ पुत्र बोला किस प्रकार मैं जीव–वध करूँ ? उस बिना हाथ पैर वाले जीव को कैसे पकड़ूँ ? इसलिये इसे ऐसे ही डालकर चौपुटी में रख देता हूँ ।।२३१।।

चौपुटी (पोटली, चंगेडी) में डालकर उसने सर्प को रख दिया और फिर निःशंक होकर वह सोने लगा । पौ फटने पर जब सवेरा हुआ तो डोम उसे निकालने आया ।।२३२।।

घाउ – घात । चौपुडी – चतुःपटी – चार छोरों की पोटली । निसंगु – निःशंक ।

[२३३–२३४]

माझ अवास डोमु जबु गयो, खेलत सार बीर देखियो ।
भाजित पाणु राइसिहु कहइ, कालि वसिउ सो खेलत अहइ ।।
गंपि राइ भेटियउ तुरंतु, किमु उब्बरिउ बीर कहि बात ।
भणइ कुमरु इनि नोकउ केह, निरविस भई हमारी देह ।।

अर्थ :—जब वह डोमु महल में गया तो उस बीर को उसने चौपड़ खेलते हुये देखा । प्राण (लेकर) भागते हुये उसने राजा से कहा, "जो कल सोने के लिये आया था वह आज (चौपड़) खेल रहा है ।" ।।२३३।।

राजा ने जाकर उससे तुरन्त भेंट की तथा पूछा, "हे वीर, तुम कैसे बच गये ? वह वार्त्ता कहो।" राजकुमारी ने कहा कि इन्होंने (मुझे) रोग से अच्छा कर दिया है अब मेरा शरीर विष रहित हो गया है ॥२३४॥

मार – चौपड । नीक – णिक्क – अच्छा ।

[२३५–२३६]

काढि भुयंगु दिखालइ सोइ, भाजी राउ पिछोउडो होइ ।
इहु देव कुमरि पेट नीसरउ, इनि देव सयलु लोग संहरिउ ॥
बाल छोडि तवु झाडे पाइ, सिरियामती दीनी परणाइ ।
दइ दाइजे रयणी अनिवार, घरह जाण चाहइ वणिवार ॥

अर्थ :—उस (जिनदत्त) ने सर्प निकाल कर दिखाया। (जिसे देख कर) राजा भाग कर उसके पीछे हो गया। जिनदत्त ने कहा हे देव ! यह राजकुमारी के पेट में से निकला है और इसीने हे देव ! सब लोगों का संहार किया है ॥२३५॥

यह सुन कर राजा ने अपने बालों को खोलकर (जिणदत्त के) पैरों को झाडा तथा श्रीमती का उसके साथ विवाह कर दिया। दहेज में अनगिनत रत्न दिये। (इसके बाद) वणिक दल घर जाने की इच्छा करने लगा ॥२३६॥

[२३७–२३८]

वणिवर सयल प्ररोहण चडहि, तउ जिणदत्त वीनती करहि ।
समदहि देव मोहु चित धरहु, मेरउ साथ जातु हइ वरहि ॥
घणवाहण बोलइ सतभाउ, प्राघउ देसु करउ निरु राय ।
भो रायणु तुम्ह नाहीं खोड, मुह पुणु पिता तणी अवसेरि ॥

अर्थ :—सभी व्यापारी प्ररोहण (जहाज) पर चढ़ गये तब जिनदत्त

ने (राजा से) विनती की, "हे देव मुझे विदा दो। मुझे चित्त में रखना। मेरा सार्थ (व्यापारी-दल) घर (वापस) जा रहा है ॥२३७॥

घणवाहन ने उससे सत्य भाव से कहा, "तुम आधे देश पर निश्चित-रूप से शासन करो। जिनदत्त ने कहा, "हे राजन! तुम्हारी ओर से कोई त्रुटि नहीं है किन्तु मुझे ही मेरे पिता की चिन्ता हो रही है" ॥२३८॥

जातु -कदाचित। अवसेरि - चिन्ता।

[२३९-२४०]

सिरियामती समंदी जवही, चउदह दिन्न आभरण तवहि।
जिनदत्तहि दीने बहु रयण, समदिउ राउ विलखाणिउ वयण ॥
तीरिद खुलइ परोहण चडइ, उवहिदत्तु पाप जु मनि धरइ।
पापी पाप बुधि जबु जडी, काकर बांधि पोटली धरी ॥

अर्थ :—जब श्रीमती को राजा ने विदा किया तब उसे उसने चौदह (प्रकार के) आभूषण दिये। जिनदत्त को भी बहुत से रत्न दिये और राजा ने रोते हुये वचनों से उन्हें विदा दी ॥२३९॥

जहाज पर चढ़ते ही उसके लंगर खोल दिये गये, (किन्तु इसी समय) सागरदत्त के मन में पाप पैदा हुआ। जब उसके (पापी के) पाप बुद्धि चढ़ी तब उसने कांकरों की पोटली बांध कर रख दी ॥२४०॥

समद् - विदा देना। तीरिद - तीर से बंधे हुए लंगर।

[२४१-२४२]

सो घाली र समद महि रालि, कही वीर रयणह की माल।
एहा हो धरी रयण पोटली, सो देखि पुत्त समद महि परि ॥
रोवहि बाप म धीरउ होहि, काढि पोटली अप्पउ तोहि।
तवहि वीर मनु साहसु धरइ, लागि वरत सायर महि पडइ ॥

अर्थ :—उसने वह पोटली समुद्र में डाल दी और कहा "हे वीर वह रत्नों की माला हैं। यह रत्नों की पोटली यहां रखी हुई थी हे पुत्र देख वह समुद्र में गिर गयी है ॥२४१॥

[जिणदत्त ने कहा,] "हे पिता, आप मत रोइये और धैर्य धारण करिये। मैं पोटली को निकाल करके तुम्हे अर्पित करूंगा। तब वीर [जिनदत्त] मन में साहस धारण कर तथा रस्सी से बंध कर सागर में कूद पड़ा ॥२४२॥

अप्प् – अर्पय् – देना।

[२४३–२४४]

गयउ पोटली खोजु पताल, काटी वरत ठेठ अंतराल ।
काटी वरत पापीया जाम, सिरियामती धहायउ ताम ॥
इकु रोवइ अरु बोलइ ताहि, छाडे पूत सुसर कत जाहि ।
सुसरु सुसरु तुम बोलहि काहु, वह तउ हूंतउ हमरउ दास ॥

अर्थ :—जब वह जिनदत्त पोटली को खोजने के लिये पाताल में गया, तो सेठ ने वह रस्सी ठेठ बीच में काट दी। जब उस पापी ने डोरी को काट दिया तब श्रीमती धाड मार कर चिल्लाई ॥२४३॥

वह रोने लगी तो एक बोला "पुत्र ने छोड़ दिया तो श्वसुर कहां गया है"? लेकिन सागरदत्त ने कहा, श्वसुर २ तुम किसे कहते हो? वह तो हमारा दास था ॥२४४॥

[२४५–२४६]

उंहु को सोगु सखी मति करहि, मोःयौं राजु भोगु सुहु धरहि ।
उवहुवत्त के वयण सुणेइ, सिरियामती हाथ मुंह देइ ॥

कुलवहु किहुर कहा चित धरइ, कुंभी नरक पापीया पडहि ।
उवहुवत्तु बोलइ सुह वयणु, वहु रोवहि अरु धीजहि नयणु ।।

अर्थ :—सागरदत्त ने कहा, "हे सखी, उसका शोक मत करो। मेरे साथ तुम राज सुख भोगो।" जब सागरदत्त के ये वचन उसने सुने तो श्रीमती ने मुख को हाथों से ढक लिया ।।२४५।।

श्रीमती ने कहा, "कुल-वधू के विषय में तुमने चित्त में कैसी भावना धारण कर ली है ? हे पापी ! तुम कुंभीपाक नर्क में पडोगे।" सागरदत्त ने फिर उससे सुखकारी वचन कहे, "तुम बहुत रो रही हो, अब नेत्रों को धैर्य दो ।।२४६।।

धीज् – धैर्य देना।

[२४७–२४८]

जइ ज लहर महि सती सतभाउ, तो यहु बूडि परोहणु जाउ ।
उहि सत जलदेवी उछलहि, उछली परोहणु वोलहि मणहि ।।
डगडगाण लाग्यो वोहिथु, किउ वणिजारिन्ह मंत उचितु ।
वणिवरु सयल परंपरु भणहि, बूड्यो वोहिथु इउं करइ ।।

अर्थ :—(वह प्रार्थना करने लगी) यदि "लहरों में सती का सत्यभाव हो तो यह जहाज डूब जावे।" उसके सतीत्व के प्रभाव से जलदेवी उछल पडी और उछल कर मन में विचार किया कि जहाज डुबा दे ।।२४७।।

वह वोहिथ (जहाज) डगमगाने लगा। तब व्यापारियों ने एक उचित विचार किया तथा वे व्यापारी परस्पर कहने लगे, "यह जहाज इसी प्रकार के कार्यों से डूब रहा है।" ।।२४८।।

सतभाउ – सत्य भाव। परोहण –प्ररोहण, सवारी। बोल् – बोडय –डुबाना। मंत –मंत्र – मंत्रणा। परंपरु – परस्पर।

[२४६–२५०]

साबु लागि सिरियामति पाइ, कोपु संति करि म्हारी माइ ।
उवहिदत्तु तिन्हु कूटणु लयउ, सिरियामती कोपु छंडियउ ।।
चलिउ परोहणु रहिउ उन ठाउ, दीप विलाउलि लागिउ जाइ ।
भवियहु सुणहु सती सतभाउ, वुइसइ उणचासे भउभाउ ।।

अर्थ :—(यह सोचकर) सभी ने श्रीमती के पाँव पकड़ लिये तथा निवेदन किया, "हे हमारी माता! अपने क्रोध को शान्त करो ।" वे जब सागर-दत्त को मारने लगे तब श्रीमती ने क्रोध त्याग दिया ।।२४६।।

जहाज उस स्थान से चला और एक द्वीप के वेलाकुउ (बंदरगाह) पर जा लगा। हे भविको! सती का सत्यभाव सुनो। इसके २४६ भेद हैं ।।२५०।।

विलाउलि —वेणाकुल — बन्दरगाह ।
भविय —भविक — मुमुक्षु ।

[२५१–२५२]

कहइ रल्ह महु यहु संभवइ, ⋯⋯सु सीलु ता सजि संभवइ ,
भण जिणदत्त पंच पय सरणु, जव जलहर महि भाय उपरणु ।।
महु जिणिंद सामी की आण, लिउ अणसगु किगु जाहि पराण ।
जइ जिन सुमरत जाहि पराण, होइ जीव पंचम गइ ठाण ।।

अर्थ :—जब जिनदत्त सागर में से ऊपर आया तो उसने कहा, मुझे पंचपरमेष्ठि के पदों की शरण है। रल्ह कवि कहता है कि यह सब शीलव्रत पालने से ही संभव हुआ है। ।।२५१।।

मुझे जिनेन्द्र स्वामी की सौगन्ध है। मैंने अनशन का निश्चय ले लिया है क्यों न चाहे मेरे प्राण चले जाएँ। यदि जिन भगवान का

स्मरण करते हुये प्राण निकल जाएं तो जीव को पंचमगति का स्थान (मोक्ष) प्राप्त हो जावे ॥२५२॥

[२५३-२५४]

सत्तखर पयपंच सुणाइ, कै सुरु स…की मोखहि जाइ ।
सही कथा यह पूरी भई, सागर मज्झि कहा संभई ॥
विषम समुद्द न जाई तरण, जिणदत्त सुमरइ जिण के चरण ।
जहां जु रहणु वणिंद हु कियउ, सिरिया धम्मु साथि पाइयउ ॥

अर्थ :—सात अक्षर (णमो अरिहंताणं) एवं पचंपद (पंच परिमेष्ठि) का स्मरण करते हुये मरण होने पर या तो वह देव होता है अथवा मोक्ष जाना है। यह समस्त कथा यहाँ पूरी होती है तथा आगे की कथा सागर के मध्य उत्पन्न होती है ॥२५३॥

समुद्र विषम था जिसे तैरा नहीं जा सकता था। जिणदत्त ने जिनेन्द्र भगवान के चरणों का स्मरण लिया। (फलत·) जहाँ भी वणिकेन्द्र (जिणदत्त) ने रहना किया (ठहरा) श्रीमती के धर्म को अपने साथ (रक्षा करते हुये) पाया ॥२५४॥

[२५५-२५६]

पापो छाडि गुपति सी भई, मिलि संघात चंपापुरि गई ।
सा पुणि गइ जिणिंद विहारि, पाय लागि जिणदत्त संभालि ॥
पिय को नामु विमलमति सुनिउ, को जिणदत्त सखी इउं भणइ ।
सिरिमति कहइ सुहइ चाहि, तहि को घरि वसंतपुरि आह ॥

अर्थ :—उस पापी को छोडकर श्रीमती गुप्त होगई तथा एक संघात (समूह) में मिलकर चंपापुर चली गयी। फिर श्रीमती जिन

मन्दिर में गयी तथा उसके (विमलमती) चरणों में लगकर उसने जिनदत्त को पुकारा ।।२५५।।

जब विमलमति ने पति का नाम सुना तो पूछने लगी, "हे सखी। वह जिनदत्त कौन है जिसका नाम तुम ले रही हो? "श्रीमती ने उसके मुख को देख कर कहा, "उसका घर वसंतपुर में है ।।२५६।।

[२५७–२५८]

जीवदेव नंदन सुपियार, सो मेरउ जिरगदत्तु भत्तारु ।
सो तहि रयरग ण भोयणु करइ, मरग वय कररग परतिय परिहरइ ।।
रहिय तिरिय ते दुख सरीर, सायरु उछलिउ साहस धीर ।
.... ।।

अर्थ :—"जो जीवदेव का प्रियतर पुत्र है वही जिनदत्त मेरा स्वामी है। वह रात्री में भोजन नहीं करता है और मन, वचन, काय से परस्त्री का त्यागी है ।।२५७।।

(विमलमती ने कहा,) "हे स्त्री (बहिन) तुम रुको, तुम्हारे शरीर में दुःख है। वह साहसी एवं धैर्यवान सागर में से (उछल कर) निकल आयेगा ।। ।।२५८।।

(वस्तु बंध)

[२५६]

विषमु सायरु गहिर गंभीरु ।
तहि विहु उछलिउ कटखंड दुण्णेण लद्धउ ।
तहि तुरंतु हक्किउ खयरु, विहिवसेरग तहि काइ सिद्धउ ।।
तरिवि महोवहि भवियरगहि, रिगसुरगहु जंजि लहेइ ।
देखि रलह तहि पुण्ण फलु, विज्जाहरि परिरगेइ ।।

अर्थ :—समुद्र विषम, गहरा एवं गंभीर था। वहाँ लकड़ी के टुकडे उछल आए जिन्हें उसने पुण्य—प्रताप से प्राप्त कर लिया। उसे शीघ्र ही एक विद्याधर ने बुलाया तथा कहा [देखो] भाग्य से कार्य सिद्ध हो गया। रल्ह कवि कहता है, उस महोदधि को तैर कर भव्य जनो ! सुनो, जो कुछ उसने प्राप्त किया। उसके पुण्य—फल (प्रभाव) को देखो कि किस तरह विद्याधरी ने उससे विवाह किया ॥२५९॥

हक्क – आक्कारय् – बुलाना। खयरु – खचर—आकाश में विचरने वाला विद्याधर। महोवहि – महोदधि

[२६०–२६१]

बूडउ वीर तहां उछलइ, भुजावंड सो सायरु तिरइ।
सूके सीबल के पुर खंड, णोसो आयो धम्म करंड॥
देखत विज्जाहरु आवही, मारुवेग महावेगु धावही।
अरे रि किसु मरण बुधि तुहि गई, राखि समुद्द तीरहि मानई॥

अर्थ:—वह डूबा हुआ वीर वहाँ उछल पड़ा और अपने भुजादंड से सागर को तिरने लगा। सूखे सेमल का एक टुकड़ा धर्म-करंड (पेटिका) के समान उसके न्यास आया (धरोहर के रूप में मिला) ॥ २६० ॥

विद्याधरों ने उसे आता देखा तो वे वायुवेग तथा महावेग उसकी ओर दौड़े। उन्होंने कहा, "अरे कैसी मरने की बुधि तुम्हें हुई है जो तुमने इस समुद्र को छोड़ कर तीर पर आने का संकल्प किया है ?"

णास – न्यास – स्थापना, धरोहर

[२६२–२६३]

कवडु भाइ बोलहु ति पचार, जाहि ण बबुडा घालहि मारि।
रयणु निहाणु जहां हइ रहिउ, जो जलु कवणु तरण तुहि कहिउ॥

कायर मारु मारु पभणेहि, गडवड करहु समद जिम मेहु ।
उन्नति करि गजहि अपमाण, विहडि जाहि दीसहि न निपाण ।।

अर्थ :—वे ललकार कर कपट भाव में बोले, "यह वप्पुडा (असहाय) जाने न पावे, इसे हम मारेंगे । यह रत्न–निधान (रत्नाकर) है जहाँ मृत्यु रहती है । इसके जल को पार करने के लिए तुमसे किसने कहा है ?" ।। २६१ ।।

वे कायर जन मारो मारो कहने लगे । जिस प्रकार समुद्र में मेघ गर्जना करते हैं, उसी प्रकार उमड़ कर वे अप्रमाण (अपरिमित रूप से) चिल्लाने लगे । " यह विघटित हो जाए (टुकडे २ हो जाए) और यह जलाशय समुद्र में दिखाई न पड़े ।। २६२ ।।

हइ – हति – मृत्यु ।

[२६४–२६५]

महिलइ मारणु बोलइ जोइ, सो मरइं चित मणुसु न होइ ।
मारि जु पाछइ मारणु कहइ, सोजि वीरु मुणसाइ लहइ ।।
कहइ जिणदत्त छुरी करि तोलि, आवहु अज्ज न मारउ बोलु ।
तो न मुणसु जो असो करउ, मारि छुरी दह विह वित्थरउ ।।

अर्थ :—जो मध्य में ही मारने के लिये कहता है वह चिन्ता करके मरता है तथा (पुनः) मनुष्य नहीं होता है । पहिले मार करके जो पीछे मारने के लिये कहता है, वही वीर मनुष्यता प्राप्त करता है । ।। २६४ ।।

छुरी को दिखला कर जिनदत्त ने कहा आओ, मारने के बोल मत बोलो । जो ऐसा नहीं करेगा उसे छुरी मार कर दशों दिशाओं में फेंक दूंगा । ।। २६५ ।।

[२६६–२६७]

भणहि खयर यहु घाटि नु होउ, हाथ समुद्द पइरतु हइ जोइ ।
रहु रहु वीर कोपु जणि करहि, चडि तू विमाण हमारे चलहि ।।
घालि विमाण लयो जो तहां, भणइ वीर लइ जइहु कु किहा ।
वसहि विज्जाहर गिर उप्परहि, तुहु लेइइ जइह रथनुपुहि ।।

अर्थ :—खेचरों (विद्याधरों) ने कहा, "यह वीर कम नहीं है जो अपने हाथों से समुद्र को तैर रहा है (पार कर रहा है)।" वे कहने लगे, "हे वीर, शान्त हो कोप न कर! तू विमान पर चढ और हमारे साथ चल ।।२६६।।

विमान पर चढ़ा कर जब वे जाने लगे तो उस वीर ने पूछा, "तुम मुझे कहाँ ले जा रहे हो? उन्होंने कहा," इस पर्वत के ऊपर विद्याधर लोग रहते है, उस रथनूपुर नामक स्थान पर तुझे ले जावेंगे ।।२६७।।

रथनूपुर नगर–वर्णन

[२६८–२६९]

तहि असोक विज्जाहर राउ, असोक सिरी राणि कहु भाउ ।
णं सुरेंद्र जो थापिउ सुरहं, गरुव णरेंद सेवज सु करहं ।।
साहण वाहण न मुणउ अंतु, कररि राजु मेइणि विलसंत ।
अंतेउरू चउरासी राणि, तिन्हु के नाम रल्हु कवि जान ।।

अर्थ :—"वहाँ पर अशोक नामका विद्याधर राजा है और उसकी रानी का नाम अशोकश्री है। मानो इन्द्र ने ही वहाँ स्वर्ग की स्थापना की हो और जिसकी सेवा बड़े बड़े नरेन्द्र करते है।" ।।२६८।।

'उसके साधन-वाहनादि का अंत न जानो। इस प्रकार वह राज्य करता तथा पृथ्वी का भोग करता है। उसके अन्तःपुर में ८४ रानियां है जिनके नाम रल्ह कवि कहता है मैं जानता हूँ।" ।।२६९।।

[२७०–२७१]

कानडि गूजरि अरु मरहटी, लाडि चोडि दक्षिण सोरठी ।
पूरबिणी कणवजि बंगालि, मंगाली तिलंग सुरतारि ।।
दवडी गउडी करणा भणी, रूपादे कंचणदे घणी ।
उपमादे भामादे नारि, अचाभउ सुतभउ रुव मुरारि ।।

अर्थ :—"कन्नडी, गूजरी, महाराष्ट्रीय, लाडी, चोली, दक्षिणी, सौराष्ट्री, पूरविनी, कन्नौजिनी, बंगालिनी, मंगाली ? तैलंगी, सुरतारी, द्रविडी, गौडी, करणा, रूपादे, कंचणदे, उपमादे, भामादे और अचाभउ सुतभउ रूप–मुरारी ।। २७०–२७१ ।।

[२७२–२७३]

चित्तरेह तहिवर सो रेख, कित्तरेख जणु सोवन्नु रेख ।
गुणगा सुरगा नवरस देइ, भोगमति गुणमति भणेइ ।।
उरभादे रंभादे कांति, विहसणदे अछइ विलसंति ।
सुमयादेवि रूपसुन्दरी, पदमावती मयणसुन्दरी ।।

अर्थ :—वहां चित्त रेखा है, जो वह श्रेष्ठ रेखा वाली है, और कीर्ति-रेखा है जो मानों स्वर्ण–रेखा है; नव रसों का आनन्द देने वाली गुणगा और सुरगा है और भोगमती एवं गुणमती कही जाती है । ।।२७२।।

उरभादे एवं रंभादे हैं । जो कांतिमती हैं तथा विहसणदे रानी है जो सुशोभित रहती है । सुमयादेवी, रूपसुन्दरी पद्मावती और मदनसुन्दरी हैं । ।। २७२–२७३ ।।

[२७४–२७५]

मारोगा कन्हादे राणि, सावलदे सुहगादे जाणि ।
रेह सुमई सुय पदमणि, भोगविलासनि हंसागमणि ।।

वरसणिदे सुखसेणावलि, तारादे कहु रल्ह सभालि ।
मंदोवरि अरु चंद्रामती, हीरादे राणी रेवती ।।

अर्थ :—"मारोगा, कन्हादे राणी हैं, सांवलदे और सुहगादे को जानो; रेखा, सुमति सुता पद्मिनी हैं। तथा भोगविलसिनी, हंसगामिनी हैं।" ।।२७४।।

दर्शनदे, सुखसेणावली, तारादे (के नाम) रल्ह कवि स्मरण कर कहता है। मंदोदरी, चन्द्रमती, हीरादे तथा रेवती रानियां हैं ।।२७५।।

[२७६–२७७]

सारंगदे अरु चंद्रावयणि, वीरमदे राणी भावती ।
गंगादे राणी गजगमणि, कमलादे अरु हंसागमणि ।।
मुक्तावेवि रुव आगली, चित्तिणि हंसिणि अरु पद्मिनी ।
सोनवती वरंगत हो घणी.................................. ।।

अर्थ :—"सारंगदे, चन्द्रवदनी, मनको भावने वाली राणी वीरमदे, गंगादे रानी गजगामिनी, कमलादे और हंसगामिनी हैं।" ।।२७६।।

"मुक्ता देवी है जो रूप में बडी चढी है, चित्तिणी, हंसिणी एवं पद्मिनी रानियाँ हैं। सोनवती अत्यधिक सुन्दर स्त्री है............।।२७७।।

[२७८–२७९–२८०]

अवली वाला पोढा तिरी, पियसुन्दरी सुमहल मनपुरी ।
मोरवती रामा अविचार, भोगवती कहलास कुमारि ।।
श्रीवसंतमाला सोभाग, हरइ चित्त कामिणी कडाष ।
सव्वइ वानि दारिद्द घालहिं, सव्वइ असोहराय वालही ।।
कला विनोद छंद अरु करहिं, सुरय पसंगि राइ मन हरहिं ।
गीत विनान जाण पयडंति, हाव भाव विभ्रम सुधरंति ।।

अर्थ :—पुनः अवलीवाला प्रौढ़ा स्त्री है। प्रिय सुन्दरी, मन को प्रसन्न करने वाली सुमइल्ल (सुमति) देवी, मोरवती, रामा, भोगवती तथा कैलाश कुमारी हैं" ॥२७८॥

"श्रीवसंतमाला कही जाती है जो अपने कटाक्षों से चित्त को हरण करने वाली है। सभी रानियां दानी और दरिद्रता को दूर भगाने वाली हैं। ये सभी रानियां अशोक राजा की वल्लभाएँ हैं" ॥२७९॥

"वे विविध प्रकार के कला विनोद तथा छंद रचना करती हैं, सुरत-प्रसंग द्वारा राजा के मन को हरती हैं। गीत-विज्ञान तथा ज्ञान को प्रकट करती हैं तथा वे हाव-भाव एवं विभ्रम धारण करती हैं" ॥२८०॥

[२८१–२८२]

अइसौ सयल अंतेउरु सा थाटु, असोगसिरी राणी कहु पाट ।
तहि कुलिणंणि चंगी खरी, छुइ सिंगारमइ विज्जाहरी ॥
को तहि कहइ अंग सोवण्ण, जीतो रूप ताल लोचन्न ।
राइ असोग पूछिउ मुनिनाहु, धीयह वरु सो सामि कहाहु ॥

अर्थ :—"ऐसा (उस राजा का) सम्पूर्ण रणवास का थाट (ठाट) है। उसकी अशोकश्री पट्टरानी है उसके कुल की मर्यादा स्वरूपा अत्यधिक सुन्दरी तथा विद्याधरी शृंगार मती नाम की पुत्री है" ॥२८१॥

उसके स्वर्ण के सदृश अंगों का कहां तक वर्णन करूँ। उसने रूप और ताल में लोचन को जीत लिया है। राजा अशोक ने मुनिवर से पूछा "हे स्वामी मेरी पुत्री का कौन पति होगा उसे कहिये" ॥२८२॥

[२८३–२८४]

हाथ उर्वाहि जो पइरतु होइ, कन्या कउ वरु होइसइ सोइ ।
विजाहर राइ अंसाउ कहिय, तउ हमु आइ समुद्द तल रहिय ॥

सुह तुरंतु भेटियउ इह ठाउ, वेगि चालि परिणावहि जाइ ।
गए विज्जाहर पुरी मंझारि, गूड र तोरण ऊभे बारि ।।

अर्थ :—(उन्होंने उत्तर दिया,) "अपने हाथों से इस समुद्र को तैरता (पार करता) हो, वही इस कन्या का स्वामी होगा ।" जब विद्याधर राजा ने हम से ऐसा कहा और तभी से यहां आकर समुद्र-तट पर रह रहे हैं ।।२८३।।

"इसलिये तुम उस स्थान पर चलकर राजा से भेंट करो तथा शीघ्र चलकर (उसकी कन्या से) विवाह करो ।" (यह सुनकर) वह विद्याधरों की नगरी में गया जहां गुड़ी एवं तोरण द्वार पर लगे हुये थे ।।२८४।।

उवहि – उदधि ।

सोलह विद्याओं की प्राप्ति

[२८५–२८६]

देखि वीर आनंदउ खयरु, परिणाविय सिंगारमई कुमरि ।
राय सोग तह काइ करेइ, अगनिउ दानु दाइजौ देइ ।।
सिहुज पदार्थ मूंदडी मिली, विज्जा सोलह पाई भली ।
गगनगामिनी बहुरूपिणी, पाणिउसोखणी बलथंभणी ।।

अर्थ :—उस वीर को देख कर वह विद्याधर आनन्दित हुआ तथा अपनी कुमारी शृंगारमती का उसके साथ विवाह कर दिया । राजा अशोक ने क्या किया कि दायजे में अगणित धन दिया ।।२८५।।

उसे (दहेज में) सिघुज पदार्थों की मुद्रिका मिली एवं सोलह उत्तम विद्याएँ प्राप्त हुई । वे हैं गगनगामिनी, बहुरूपिणी, जलसोखिनी तथा बलस्तंभिनी ।।२८६।।

[२८७–२८८]

हियलोकणी सुइंछिउ देइ, आगिथंभ थंभणिउ करेइ ।
सव्वसिद्ध विज्जातारणी, पायालगामिणी अरु मोहणी ।।
चिंतामणि गुटिका सिद्धि लहइ, गुपति निहाणु अंजणी कहइ ।
माणिकु देइ रयण वरसिणी, शुभ दरसिणी भुवण गामिणी ।।
रसण अणेय भेय रसु देइ, वज्ज सरीरु वज्जणी थेई ।।

हृदयलोकिनी जो स्वइच्छित देती है, अग्निस्तंभिनी (आग से) स्तंभन करती है । सर्वसिद्धि, विद्या तारिणी, पाताल गामिनी एवं मोहनी ।।२८७।।

चिन्तामणि गुटिका जिससे सिद्धि प्राप्त होती है तथा गुप्त तथा निधान (गाडी हुई) वस्तुओं को कहने वाली अंजणी, रत्नवर्षिणी जो माणिक देती है, शुभदर्शिनी, भुवनगामिनी, रसना जो अनेक भेदों का रस देती है और वज्र जैसा शरीर बनाने वाली वज्रिणी विद्याओं को उसने प्राप्त किया ।।२८८।।

[२८९–२९०]

अवर पन्न लई तहि भली, तिमिर दिठि विज्जा तहु मिली ।
अणीबंध धारा बंधणी, सव्वौसही तहि भणी ।
वलि विज्जउ जिणदत्त लिलार, सोलह विज्जा लइय विचार ।
विज्जनु कौ देखइ जु पमाणु, हक्कारिउ मनु चिंतिउ जु विमाणु ।।

अर्थ :—उस प्राज्ञ ने वहां और भी विद्याएँ ली । तिमिर दृष्टि विद्या (अन्धकार में देखने की विद्या) भी उसे मिली । अणीबंध तथा धारा बधणी और सर्वौषधि विद्याएँ तक उसने प्राप्त की ।।२८९।।

जिनदत्त का ललाट विद्या वलित हो गया । उसने विचार करके सोलह विद्याएँ ली जिससे उसका मुख चमकने लगा । उसने विद्याओं की

परीक्षा करने के लिये मन में जिस विमान का विचार किया उसको बुलाया ॥२६०॥

पन्न – पण्ण–प्राज्ञ । हक्कारिउ – बुलाया ।

[२६१–२६२]

आयउ जगमगंतु सो तित्थु, जीवदेव नंदणु हइ जित्थु ।
विज्जा चवइ निसुण जिणदत्त, वंदि अकिट्टमि जिणमलचत्तु ॥
तहि जिणदत्तु तिरिय वीसमइं, मण चिंतिअ पासि उपमइ ।
फिरि कैला (स) वंदि जिणदेव, वंदि करिवि आयो तहि लेव ॥

अर्थ :—और जगमगाता हुआ वह विमान वहीं पर आ गया जहाँ पर वह जीवदेव का पुत्र (जिनदत्त) था। इस विद्या ने जिनदत्त से प्रार्थना की "अकृत्रिम चैत्यालय की वंदना करने चलिये" ॥२६१॥

फिर जिनदत्त ने अपनी विस्मृत स्त्री को मन में विचारा तो वह पास आ गयी। फिर कैलाश पर जिनदेव की वंदना करके वापिस वहीं आ गया ॥२६२॥

नोट—कैलाश पर्वत भगवान् आदिनाथ का मोक्ष स्थान है।

[२६३–२६४]

आइ णयरि ते राजु कराहि, पुणु असोग सिउ बात कराहि ।
समवह देवति मेटण जाहि, माय बापु अवसेर कराहि ॥
कहइ विज्जाहरु एमु करेहु, आधौ देसु कौ राजु तुम लेहु ।
भणइ वीर हमु यहु न सुहाइ, तात गवेसिउ करि हउ जाइ ॥

अर्थ :—वे नगरी में आकर राज करने लगे। फिर उसने अशोक राज से बात की और कहा, "हे देव ! तुम मुझे विदा दो तो माता तथा पिता से मिलने जाएँ। वे मेरी चिन्ता कर रहे हैं" ॥२६३॥

विद्याधर ने उससे कहा, "तुम ऐसा करो कि तुम आधा देश का राज्य ले लो (और यहीं रहो)।" वीर (जिनदत्त) ने कहा, "मुझे यह अच्छा नहीं लगता है। मैं जाकर माता-पिता की सेवा करूंगा" ।।२९४।।

[२९५]

राय सोय पुणु नीकउ कीयउ, कडइ चूड करि मंडिय धीय ।
अर मनु चिंतिउ दिन्नु विमाणु, तहि दियइ रयण अपमाण ।।

अर्थ :—राजा अशोक ने फिर यह सत्कार्य किया कि अपनी लड़की को कड़इ (कड़ा) तथा चूड़ा (आदि आभूषणों) से मंडित किया और उसे मन चाहा विमान दिया तथा अप्रमाण (अनन्त) रत्न दिये ।।२९५।।

तहि – तहा–तथा

चंपापुरी के लिये प्रस्थान

[२९६–२९७]

बिपहि विमाण रयण घाघरी, पालक सेज सुहाइ धरी ।
ठइयो हंसतूल बिचि छाइ, समदत राय सोउ बिलखाय ।।
उतरि विमाणहि ठाडउ भयउ, विणउ करि पिणु पूजण लयउ ।
णिच मणु चिंतिउ अखउ तोहि, चंपापुरि लइ घलहि मोहि ।।

अर्थ :—वह विमान रत्नों की झालर में चमक रहा था, जिसमें एक सुन्दर पर्यंक-शय्या रक्खी हुई थी। हंस के समान उस विमान में वह बैठ गया और राजा अशोक ने उसको बिलखते हुए विदा किया ।।२९६।।

विमान से उतर कर वह खड़ा हो गया। दोनों हाथों से उसने फिर (भगवान की) पूजा की। पुनः विमान से कहा, "मनमें विचार करके निश्चयपूर्वक मैं तुझसे कहता हूं, तू मुझे चंपापुर ले चल ।।२९७।।

विण ∠. विण्ण–दोनों ।

[२६८–२६६]

सो विमाण ठिय रयणनु भरइ, विज्जाहरिय कंति सिहु चडइ ।
विण्ण विचित्तिहु वेगह गहो, चंपापुरिय रायसिउ कहे ।।
चंपापुरि णयरी पइसारि, वाडी देखत भई वडी वार ।
अंथइ सूरु मेरु तल गयो, पहली राति पहर इकु भयो ।।

अर्थ :—पुनः रत्नों से वह विमान भर गया तथा विद्याधरी अपने कान्त (जिणदत्त) के साथ उस पर चढ़ी । राजसिंह (कवि) कहता है कि वह विमान शीघ्र ही चंपापुरी पहुँच गया ।।२६८।।

चंपापुरी नगरी के प्रवेश-मार्ग पर वाड़ी (उद्यान) देखते उसे बड़ी देरी हो गई । सूर्य अस्त होकर मेरु के तले (पीछे) चला गया तथा इस प्रकार (वहाँ) प्रथम रात्रि का एक पहर व्यतीत हो गया ।।२६६।।

विण्ण – विज्ञ ।

[३००]

जंपइ वीर नारि सुनि झत्ति, पहिरे अज्जु विलवहु राति ।
भणइ तिरिय मइ लाइव रोय, पहिलउ पहिरउ मेरउ देव ।।

अर्थ :—वीर जिनदत्त विद्याधरी से कहने लगा, "हे नारी (स्त्री) शीघ्र सुनो; आज की रात्रि पहरे में बिलमाओ (व्यतीत करो) ।" स्त्री ने कहा, "मैं रुचिपूर्वक करूँगी । प्रथम पहरा हे देव, मेरा हो" ।।३००।।

झत्ति – झटित–शीघ्र । रोय – रोच–रुचि ।

[३०१–३०२]

सोवइ तहि जिणदत्त अघाइ, राउ विरउ पहरु तिहि जाइ ।
भउ परतुस पहरु दुइजो आइ, जागि वीरु बोलइ विहसाइ ।।

सुण तू राइ असोगह धीय, जागत बहुल रयण सो भईय ।
बोलु एकु बोलहि स भणी, हूं जागउ तू सोवहि घणी ।।

अर्थ :— वहां जिनदत्त अघाकर (थक कर) सोने लगा तथा एक पहर रागविराग में व्यतीत हो गया । जब दूसरा पहर हुआ तो उसे प्रतोष (संतोष) हुआ और वीर (जिणदत्त) जाग कर हँसता हुआ बोला ।।३०१।।

"हे राजा अशोक की पुत्री ! तू सुन : तुझे जागते हुए बहुत रात्रि हो चली है । मैं तुझसे एक बात कहता हूं कि अब मैं जागता हूँ और तू खूब सो जा" ।।३०२।।

राउ – राग । विरउ – विराग । रयण – रजनी ।

[३०३–३०४]

पिय वालहे सुणहि मो बात, अवधिउ बोल म बोलहि कंत ।
पिय दुखु दइजु घणो सुखियाइ, तह पतिवारु अहलउ जाइ ।।
सती तिरीने नाह सुजाण, सामी आगइ देहि पराण ।
सुणि साई मेर जु भत्तार, नाहि मोहि चडइ इतिवार ।।

अर्थ :—(स्त्री ने कहा,) "हे प्रिय वल्लभ ! मेरी बात सुनो; छोटे बोल हे कान्त, न बोलो । जो प्रिय (पति) को दुख देकर घने सुख उठाती है उसका पतियारा (विश्वास) निष्फल जाता है ।।३०३।।

सती वह है जो (अपने) सुजान (नाथ) के सामने (अपना) अस्तित्व मिटा दे और जो स्वामी के आगे प्राण दे । हे स्वामी सुनो; "तुम मेरे भर्त्तार हो, (किन्तु आपकी बातों पर) मुझे एतबार (विश्वास) नहीं हो रहा है" ।।३०४।।

[३०५–३०६]

जइ तुम्हि जागत अवसुख होइ, तो मुहि लोगु ण सलहहि कोइ ।
वालम पाछइ करहि कुकम्मु, ना तिन्ह तिरिय वीपुमा जम्मु ।।

तो जिणदत्त रूसि वोलेइ, केतिउ झंखहि बावली भइ ।
सोवहि घणी म लावहि खेऊ, घडी एक हूउ पहिरउ देउ ।।

अर्थ :—"यदि तुम्हें जागते हुए अवसुख (कष्ट) होता हो तो कोई भी लोग मेरी सराहना न करेंगे । वल्लभ (पति) के पीछे जो (स्त्री) कुकर्म्म करती है वह स्त्री नहीं कुत्रिया है उसे मनुष्य जन्म दुबारा नहीं मिलता है ।।३०५।।

जिनदत्त तब रुष्ट होकर बोला, "तुम पागल होकर यह सब क्या बक रही हो । तुम घनी (नींद) सोओ तथा मन में जरा भी खेद मत करो । अब एक घड़ी मैं पहरा दूँगा" ।।३०६।।

बौने के रूप में

[३०७–३०८]

बिलखवि घणी नींद मनु कीयउ, बीती रयणि सूर ऊगयो ।
करइ कपटु वावण उणि जासु, हुइ वावणउं छाडि गऊ तासु ।।
परछनु आइ देखइ तिरिय, घण सत सिहु छइ किसत टलीय ।
आपणु गुपत्त नयर महि फिरइ, जागि नारी सो कारणु करइ ।।

अर्थ :—बिलखती हुई उस स्त्री ने घनी नींद की इच्छा की [और सो गई । रात्रि बीती और सूर्य उदित हुआ । उससे कपट करके (जिनदत्त ने) बौने का शरीर बना लिया तथा बौना होकर अपनी स्त्री को छोड़ गया ।।३०७।।

छिप-छिप कर वह अपनी स्त्री को देखने लगा कि वह (स्त्री) सत में है अथवा सत को उसने छोड़ दिया है । स्वयं वह गुप्त रूप में नगर में फिरने लगा । जब वह स्त्री (विद्याधरी) जगी तो कारण करने (रोने-चिल्लाने) लगी ।।३०८।।

वस्तु बंध

[३०६]

धरण विवयन ललित सुकुमाल ।
खीणोवरि ससिवयणि कणय चूडमणि हार मंडिय ।
सोवंतिय नींद भरि पियगुण गतहि काइ छंडिय ।।
पुणु धम्मक्किय जोवइ विपइ, उठि जवु जोइय पासु ।
मज्झु विमाणहि रल्ह कइ तिरी न देखइ तासु ।।

अर्थ :—वह कन्या (स्त्री) सुख सम्पदा में पली हुई सुन्दर एवं सुकोमल थी। वह क्षीणोदरी तथा शशि वदना थी; स्वर्ण चूड़ामणि एवं हार से मंड़ित (सुशोभित) थी। नींद भर सोते हुए वह गुणगत प्रिय (पति) द्वारा क्यों छोड़ दी गई ? पुनः (तदनन्तर) धमकी (स्तंभित) होकर दिशाओं में देखने लगी। अपने पार्श्व (बगल) में देखा तो रल्ह कवि कहता है कि विमान के मध्य उस स्त्री को वह दिखाई नहीं दिया ।।३०६।।

[३१०–३११]

उठि तिरिय जु जोवइ पासु, मज्झि विमाण न देखइ तासु ।
कलिमलाइ ऊचे चढि वाह, णाह णाह करि मूकी धाह ।।
अति गहु करि सामियउ लागि एउ, मइ पापिणी नींदमणि कीयउ ।
लोग कहनउ साचौ भयौ, जागत चोर नु कुइ मुसि गयऊ ।।

अर्थ :—स्त्री ने जो उठकर पास (बगल) में देखा तो विमान में उसे नहीं पाया। अकुला कर विमान पर ऊँची चढ़ करके स्वामी ! स्वामी ! करते हुए उसने धाड़ मारी (वह जोर से रोने लगी) ३१०।।

अत्यधिक आग्रहपूर्वक मैंने स्वामी को पकड़ा था किन्तु मुझ पापिनी

ने नींद (सोने) की इच्छा की। लोगों का कहना सच्चा हो गया कि जागते हुए किसी को भी चोर नहीं चुरा सका है ॥३११॥

गह – आवेश–आसक्ति–तल्लीनता। मूष – मुष – चुराना।

[३१२–३१३]

गही वरि वरि कूटइ हियउ, कवणु दोसु मइ सामी कीयउ।
जणु कछु औगुण दीठउ नाह, तउ काहे मूको वण माह॥
कियो मोहि वज्र को हियउ, कि दइवि पाहण निम्मवियउ।
सून विमाण देखि विलिखाइ, किन फाटहि हियड़ा चरडाइ॥

अर्थ :—आवेश में भी (आकुल-व्याकुल होकर) वह अपनी छाती कूटने लगी (तथा कहने लगी), "हे स्वामी, मैंने कौनसा अपराध किया है और यदि तुम्हें कुछ भी अवगुण नहीं दिखा है, तो फिर क्यों वन के मध्य तुमने मुझे छोड़ दिया ॥३१२॥

क्या (विधाता ने) मेरा वज्र का हृदय किया है अथवा उस दैव ने उसका पाषाण से निर्माण किया है?" सूने विमान को देखकर वह रोने लगी तथा कहने लगी, "मेरा हृदय चरड़ा (चरचरा) कर क्यों नहीं फट जाता?" ॥३१३॥

[३१४–३१५]

तुहि दीठइ मुहि रहहि पराण, तुहि दीठइ पर जियउ णियाण।
तुहि बिनु अउर न देखउ आंखि, पिय जिणदत्त जिणेसर साखि॥
लइव मया मूको निसएस, काहे पिय छाडी परदेस।
जन किनु··इ नाह बिनु जियउ, इव किसु देखि सहारउ हियउ॥

अर्थ :—तुझे देखने पर ही मेरे प्राण रहेंगे तथा तुझे देखने पर ही मैं

जी सकती हूं । तुम्हारे बिना मैं दूसरे किसी को भी इन आंखों से नहीं देखती हूं, जिनेश्वर मेरे साक्षी है कि जिनदत्त ही मेरा प्रिय पति है ॥३१४॥

ऐसी रात्रि में तुमने मुझे (कैसे) छोड़ दी ? हे प्रिये मुझे परदेश में क्यों छोड़ दिया ? तुम्हारे बिना मैं कैसे जीऊँगी तथा अब किसको देखकर हृदय को संभालूँ ? ॥३१५॥

मया – स्नेहपूर्वक ।

[३१६–३१७]

जिरणदत्त जिरणदत्त विरिरिणि भरणइ, कवरण केहियउ सेठिस्यो जाइ ।
रोवइ विमलु रहावइ नारि, करि उछंग लइ गयउ विहारि ॥
रणहयर गयउ जिरणंद विहार, पाय लागी जिरणदत्त सम्हारि ।
पिय को नाउ विमलमति सुरणइ, को जिरणदत्त सखी तू भरणइ ॥

अर्थ :—वह विरहिणी, जिनदत्त जिनदत्त कह रही थी, यह बात सेठ से जाकर किसी ने कही । (वह सेठ) विमल रोने लगा तथा उस नारी को सान्त्वना देने लगा । तदनन्तर उसे हाथ का सहारा देकर जिन मन्दिर में ले गया ॥३१६॥

वह फिर जिन मन्दिर में चली गई तथा (जिनेन्द्र के) चरणों में पड़कर भी जिनदत्त को स्मरण करने लगी । जब विमलमती ने अपने प्रिय (पति) का नाम सुना तो उसने उससे पूछा, "हे सखी, तू कौनसे जिनदत्त का नाम ले रही है" ॥३१७॥

[३१८–३१९]

विज्जाहरी कहइ सुरिण सखी, रिणय जणणी जवंजसि कही ।
जीवदेव नंदणु वर भयउ, सोवति छांडि कालि पिउ गयउ ॥

बूवइ तिरिया कहाहे तुरंतु, हमु पुणु अछहि तासु की कंति ।
तिन्यो तिरिया अछहि ठाइ, वाहुडि कथा वीर पहि आइ ।।

अर्थ :—विद्याधरी कहने लगी, हे सखी सुन, "उसने माता का नाम जीवंजसा बताया था और कहा था कि वह जीवदेव का श्रेष्ठ पुत्र है । किन्तु वह प्रिय कल मुझे सोती हुई छोड़ कर चला गया । ।।३१८।।

उन दोनों स्त्रियों ने भी उसी समय कहा. "हम भी **उसी की कान्ताएँ** (पत्नियाँ) हैं ।" फिर वे तीनों स्त्रियां वहाँ रहने लगीं । **अब** लौट कर कथा का प्रसंग वीर जिनदत्त के पास जाता है ।।३१९।।

वाहुड – व्याघुट–लौटना ।

[३२०–३२१]

वहुक चोजु नयरी महि कियउ, पुणि बुलाइ राजा पूछियउ ।
कहहि जाति कुल आपुरण ठाउ, पुणु कौतूलहु दरिसहि घणउ ।।
कहइ वात वइठिउ वावणा, हमु देव सामी बाभणा ।
गीत कला गुण जाणहि सव्वु, महु देउ कम्मु नाउ गंधव्वु ।।

अर्थ:—नगरी में जब उसने (जिनदत्त ने) बहुक (अनेक) चमत्कार के कार्य किए तो उसको राजा ने बुलाकर पूछा, "अपने कुल, जाति एवं स्थान को बताओ और अपने घने कौतूहल (चमत्कार) भी दिखाओ" ।।३२०।।

वह बौना बैठ कर कहने लगा, "हे स्वामी हम ब्राह्मण देव हैं । मैं सभी गायन-कला और गुण को जानता हूं तथा मेरा कर्म से नाम हे देव ! गंधर्व है" ।।३२१।।

[३२२–३२३]

तबहि राउ बोलइ रि झडत्ति, लोपहि नाउ म गोवहि जाति ।
तुम्ह पुणु वावणि सवहि अयाणु, तुहि तिण लोगु कहइ तुम्ह पाण ।।

भूख मरत देव हुउ केहा करउ, तइ हुउ पाणु भयउ विवहुउ ।
जवहि गुंसाई मूंडी चुडी, तवहि पणाठी कुलु अरु कुली ।।

अर्थ :—तब राजा खीझ कर बोला, "तुम अपना नाम व जाति न छिपाओ। हे बौने ! तुम अज्ञ व्यक्ति की सी बातें कर रहे हो इससे तो लोग तुम्हें पाण (श्वपच तथा शराबी की तरह बकवास करने वाला) कहेंगे ।।३२२।।

"उसने कहा, "हे देव ! भूखों मरता मैं क्या करता ? तब मैं विनष्ट हुआ पाण (श्वपच) हो गया। जब से स्वामी (परमात्मा) ने मेरी चोटी मूंड़ दी तभी मैंने कुल और कुल की कानि प्रणष्ट कर दी" ।।३२३।।

विवहु – विनाश ।

[३२४–३२५]

पेट अरथ देव सेवा कीज, पेट अरथ वैसंतर लीज ।
कतहुण अन्नु पान सिहु भेट, पाण भयउ हौ कारण पेट ।।
बार बार बावणउं भणाइ, देव विभूखित किम्न कराइ ।
मिलइ ण धोवति कापडु खाणु, बंभणु हुंति भयो यहु पाणु ।।

अर्थ :—"हे देव ! पेट के लिए ही सेवा की जाती है तथा पेट के लिए ही देशान्तर लिया जाता (जाना पड़ता) है। अन्न एवं पानी से मुझे भेंट कहाँ थी। पेट के लिये ही मैं पाण (श्वपच) हुआ (बना) ।।३२४।।

वह बौना बार-बार कहने लगा "हे देव ! मुझे भूख रहित क्यों नहीं कराते ? मुझे धोती, कपड़ा तथा खाना नहीं मिलता इसीलिये ब्राह्मण से मैं यह पाण (श्वपच) बन गया ।।३२५।।

[३२६–३२७]

जाति पाति यहु पूछहि ताहि, व्याहु बोधु जिण सनमधु आहि ।
वयणु एक हुउ कहुउ समीठु, जिणदत्तु भणति नारि मइ दिठु ।।

तंखिरणी विमलुमती पहुतउ तहां, वरणमहि नारि बइठी जहां ।
मेरउ खेलु जीतु छइ आल, नाटकु नटउं देखि भूपाल ।।

अर्थ :—"प्रभु ! (राजन !) जाति पांति उसकी पूछें जिससे विवाह आदि का सम्बन्ध (करना) हो । जिनदत्त कहने लगा मैं आपसे एक मीठी (मधुर) बात कहता हूँ : —"नारी (विवाह योग्य स्त्री) को मुझे बताइये" ।।३२६।।

उसी समय जहाँ विमलमती थी तथा उद्यान के मध्य वह (विद्याधरी) स्त्री बैठी हुई थी, वह वहाँ पहुँचा (उसने अपने आप कहा) मेरा परिचित खेल कोमल और मृदु है, (अतः) मैं आज एक नाटक करूँ जिसे राजा देखें ।।३२७।।

जीत /_ जित–जीता हुआ, परिचित । आल – मृदु, कोमल ।

[३२८–३२६]

नाद विनोद छंद बहु करउ, रूप विरूप कला अणुसरउ ।
छोह भाइ सुक्खि दीसइ घणउ, इउ नट भड खेलइ बावणउ ।।
धरइ तालु जिह हासउ वयण, बंधइ किरणि भमइ पुणु गगन ।
विपरितु छोहु एकु बरसियउ, राजा हसइ बावलउ भयउ ।।

अर्थ :—मैं वादित्र (बजाऊँगा) एवं विविध प्रकार के हास्य छंद कहूंगा तथा भली एवं बुरी दोनों ही प्रकार की कलाओं का अनुसरण करूँगा । जिससे क्षोभ तथा भाव (स्नेह) दोनों का ही खूब अनुभव हो । इस प्रकार वह (बौना) नट-भट (का खेल) खेलने लगा ।।३२८।।

वह ऐसे ताल धरने लगा जिससे हँसी के वचन निकले (हँसी आवे) किरणों को बाँध कर वह आकाश में घूमने लगा । विपरीत (विरोध का) भाव

ग्रौर छोह (कृपापूर्ण, स्नेह) को एक सा दिखा दिया जिससे राजा हँसता-हँसता बावला हो गया ।।३२९।।

छंद – छद्म । वाउल ∠ वातूल–बावला, पागल ।

[३३०–३३१]

तूठउ राजा निज चित्ताउ, मागि मागि बावणो पसाउ ।
कउणइ एकु सभामइ कहइ, बात एकु को कारणु ग्रहइ ।।
विमल सेठि की तीन्यो धीय, रही विहारि देव तपु लीय ।
जइतो नारि बुलावइ एहु, तवहि······गुशाई बासणु देहि ।।

ग्रर्थ :—राजा ग्रपने चित्त में सन्तुष्ट हो गया तथा प्रसन्न होकर बौने से कहा, "पुरस्कार माँग, पुरस्कार माँग ।" (तब तक) सभा में किसी एक ने कहा, "एक बात का क्या कारण है ? (यह बौना बताए)" ।।३३०।।

"हे देव, विमल सेठ की तीनों लड़कियां तप (व्रत) लिये हुये (मन्दिर में) रह रही हैं । यदि उन स्त्रियों को यह बुला सकें, तभी ग्रब इसे प्रसाद (पुरस्कार) का वस्त्र दें ।।३३१।।

[३३२–३३३]

को पाषाण काठ की घडी, की ते चित्त लेपसो लड़ी ।
की ते ग्रछरि की ते सवासी, भणइ राउ ते हहि माणुसी ।।
भणइ देव माणुसि कि हसहि, मेरइ बोल पाहणु हँसइ ।
तउ मे देव तिनि सीखी कला, जो न हसाउ पाहणु सिला ।।

ग्रर्थ :—(बौने ने पूछा,) "क्या वे प्रस्तर ग्रथवा काठ की गढी हुई है ? ग्रथवा क्या वे चित्र के लेप से लड़ी हुई हैं क्या वे ग्रप्सरा हैं, ग्रथवा क्या वे ब्राह्मणी (?) हैं ? "(तब) राजा ने कहा, वे मानवी हैं" ।।३३२।।

(बौने ने) कहा, "हे देव ! मनुष्य के हँसने की क्या ? मेरे बोल से पाषाण भी हँस सकता है। हे देव ! मैंने तो वह कला सीखी है कि मैं पाषाण की शिला को भी न हँसा दूँ (तो मेरा क्या नाम) ॥३३३॥

सवास — ब्राह्मण।

[३३४–३३५]

वस्त उठाइ सिला परिठइ, एक चित्त विज्जा सुमरइ ।
सर्व सभा चितुर- हसाइ, तू तारूणी सिलाहु…हसहि ॥
जबहि बीर तिसु आइस कहइ, सिलारूप जइ विज्जा रहइ ।
यहु तारूणी वि(ज्जा) तिह ठाइ, हसि हहडाइ रंजावहि राउ ॥

अर्थ :—वस्तु को उठाकर शिला पर रख दिया तथा एक चित होकर विद्या का स्मरण करने लगा। (विद्या से उसने कहा) "सभी सभा का चित्त सुखी हो इसलिये तू ही तारुणी (विद्या) शिला होकर हँस" ॥३३४॥

उस वीर ने जब उसको यह आदेश दिया तो वह विद्या शिल-रूपिणी होकर वहां जा कर बैठ गई। यह तारुणी विद्या ही थी जो उस स्थान पर ठहाका मार कर (खूब जोर से) हँसने और राजा को रिझाने लगी ॥३३५॥

[३३६–३३७]

तबु सो सिला हसइ हहडाइ, सभा लोगु मोहउ तिह ठाइ ।
तूठहि राजा करि तहि भाउ, मागि मागि बावणे पसाउ ॥
इवहि पसाउ पडयै केम, जाम ण नारि हसाउ देव ।
सामी बयण एकु अवधारि, बिन बिन एकु बुलालाउ नारि ॥

अर्थ :—तब वह शिला ठहाका मार कर हँसने लगी जिससे सभा के लोग उस स्थान पर मोहित हो गये। राजा स्नेहपूर्वक प्रसन्न हुआ और कहने लगा "हे बौने ! तू पुरस्कार मांग पुरस्कार मांग" ॥३३६॥

(किसी ने कहा) "कैसे पुरस्कार मिल सकता है, जब तक हे देव, यह यों (इसी प्रकार) नारियों को न हँसा दे।" बौने ने कहा हे स्वामी ! मेरी एक बात मान लो। मैं एक-एक दिन एक-एक स्त्री को बुलाऊँगा ॥३३७॥

नाराच छंद

[३३८]

आइ विहारी जिण जयकारी चाली तिन्ह की बात।
हारिउ दव्वु जूवह सव्वु निकल गयउ जिणदत्तु ॥
छाडिउ पाटणु राइ दिवाटणु आयउ चंपापुरी।
इहां सत्ती विमलामती छाडि गयउ तिरी···॥

अर्थ :—इस वचन के अनुसार उसने विहारी (मन्दिर) में जाकर जिनेन्द्र की, जय-जयकार की तथा उनकी वार्ता चलाई। "जुए में सब द्रव्य हार करके जिनदत्त वहां से निकल गया (भागा)। पाटण को छोड़ कर तथा रात-दिन चल करके चंपापुरी आया तथा यहां वह सती विमलमती को छोड़ गया" ॥३३८॥

[३३९]

बोलइ बइठी नारी जेठी, तपछइ पूछउ तेहि।
छाडी मोही फुणी गउ कहि··································॥
तू तुह ठाली छहि निरवाली ठालउ अछइ कोइ।
इवा घरि जइ हउ काल कहि हउ जहा गउ सोइ॥

अर्थ :—बड़ी स्त्री जो बैठी हुई थी यह सुनकर बोली मैं तुम से उसके बाद की (बात) पूछती हूं। मुझे छोड़कर फिर वह कहां गया। (बौने ने उत्तर दिया) तू तो ठाली है और निरवाली (उलझनें सुलझाने वाली) है;

(किन्तु) कोई (अन्य भी) ठाली (बेकार) है ? इस समय घर जाकर मैं यह कल बताऊँगा, जहां वह (फिर) गया ॥३३६॥

[३४०]

दुइजइ दिवसी जाय वइसी कहा सो कहइ ।
छानउ होइ जाइ सोइ वसपुर राहाइ ॥
तहा हुं तेउ जाइ पहुंतइ सिंहल दीप चडाइ ।
विवाही सत्ती सिरियामत्ती सायर मांहि पडाइ ॥

अर्थ :—दूसरे दिन वह नारी जा बैठी तो वह बौना क्या कहने लगा ? प्रच्छन्न होकर वह दसपुर में रहा और वहां से भी जाकर वह सिंहल द्वीप जा चढ़ा । फिर वहां श्रीमती से विवाह करके सागर के मध्य गिर गया" ॥३४०॥

[३४१]

लागो आखरण नारि वियखरण काहा सो भयउ ।
बूडिवि नीरह गहिर गंभीरह पुरिण कत्थ गयउ ॥
तू तुहु वाली (ठाली) छहि निरवाली कहिसहु कलि सुबात ।
इसउ कहाई सो बुलाई गयो तुरंत ॥

अर्थ :—फिर वह विचक्षरण नारी कहने लगी, आगे क्या हुआ ? (सागर के) गहरे गम्भीर जल में डूबने के पश्चात् वह कहां गया ? (बौने ने कहा,) हे स्त्री तू ठाली है और निरवाली (उलझन सुलझाने वाली) है । (आगे की वार्त्ता मैं कल कहूंगा) । "इस प्रकार यह कह कर वह लौटकर(?) शीघ्र ही वहां से चला गया ॥३४१॥

[३४२]

तीजइ वासरि बोलइ अवसरि तिरिण ठाहो आइ ।
मुरिण सुरिण तिरिया मेलउ परिया जहा गयउ सोइ ॥

पइरतु सायरु लइ विज्जाहरु लइ गयउ रथनूपुरि ।
सिंगारमइ विज्जाहरु प्राहि लइ प्रायउ चंपापुरी ।।

अर्थ :—तीसरे दिन सभा में उस स्थान पर आकर बोला— (तब बौने ने कहा) हे स्त्री ! सुनो, सुनो, जैसे ही वह (सागर में) गया, वह छोड दिया गया । सागर में तैरते हुये (उसे देखकर) उसको विद्याधर रथनूपुर नगर ले गए । वहाँ शृंगारमती विद्याधरी को व्याह कर उसे चंपापुरी ले आया ।।३४२।।

अवसर – सभा ।

[३४३]

सो धण बंगी बोलण लागी वावण पूछइ तोही ।
देखिवि सुती निंदाभूती छाडि गयउ कत मोही ।।
तू तहि वाली (ठाली) छह निरवाली ठालउ अछइ कोइ ।
इब घरि हउ जइहऊ कालिह सु कहिहउ जहा गयउ सोइ ।।

अर्थ :—यह सुनकर वह सुन्दर स्त्री बोलने लगी, "हे बोने मैं तुम से पूछती हूँ, "मुझे वह सोती हुई और निद्रा के वशीभूत देखकर छोड कर कहाँ चला गया ?" वह बौना कहने लगा, तू तो ठाली है और निरवाली (उलझने सुलझाने वाली) है किन्तु क्या (तेरी भाँति) कोई और भी ठाला है ? अभी तो मैं घर जाऊँगा । मैं तुम्हें यह कल बतलाऊंगा कि वह कहाँ गया" ।।३४३।।

[३४४]

तीनिउ तिन्निउ नारी नारी बुलाईवि सा गयऊ ।
छोहु छोहु बहुलू बहुलू राजा के मन भयऊ ।।

देई देई आम आम तहि बहु रयण समत्थि ।
एते खण छुट्ट पट्टणि बंधण हत्थी ॥

अर्थ :—(इस प्रकार) तीनों की तीनों ही नारियों को बुलवा कर (उनसे बातें कर) वह गया जिससे राजा के मन में अत्यधिक कृपा पूर्ण स्नेह हुआ । वह उसे बार बार में रत्न देने लगा । उसी क्षण नगर में बन्धन से एक हाथी खुल गया ॥३४४॥

छोह – कृपापूर्ण स्नेह

[३४५]

मय भिभलु गउ अंकुस मोडी खंभ उपाडि दंतूसलि तोडि ।
साकल तोडि करि चकचूनि गयउ महावतु घरको पूतु ॥
गयउ महावत्थु णयरी जित्थ गज मूडउभऊ अलइतत्थु ।
हुउ उवयरिउ भुन खूटउ कालू तउ मूडिउ तोडितु भालु ॥

अर्थ :—वह मद् विह्वल (हाथी) अंकुश को मोड़ (न मान कर) करके, खम्भे को उपाड़ तथा तोड़ करके वह पुष्ट दांतों वाला (हाथी) चला गया । सांकल को तोड़ कर उसने चकनाचूर कर दिया तथा वह महावत घर की ओर भाग गया । महावत नगरी में जिधर गया, वहां हाथी से भयभीत होकर लोग कहने लगे, मैं (किसी प्रकार) उबरा (बचा) वह मानो काल ही खुल गया हो । तब वह विनाश करके शिर तोड़ने लगा ॥३४५॥

ऊमल – पीन पुष्ट । मूड़ – मृद् – विनाश करना

वस्तु बंध

[३४६]

डसण तास ण मुंडु सपडु भू भंजणु विसमु ।
धरइ वीर धिक्कार सोहुउ, गुमु गुमंति अलिउलि नियरु ।
डरि लोगु भय कालु छूटउ, विद्धंसइ मंदिर सयल तरुवरु ॥

घरणा उप्पाडि रल्ह नयर, भंग पडिउ किम गयंद घरणमारि ।
दुद्धर गयवर धरण न जाइ, अहि चिक्कार भई लोग पलारि ।।

अर्थ :—उसके जो दाँत थे भूमि को भयंकर रूप से नष्ट करने वाले (हो रहे) थे । बडे बडे वीर उसको पकडे हुये थे और उसका (भयंकर) चीत्कार था । उसके पास भ्रमरों की पंक्ति गुंजार कर रही थी । लोग डरने लगे मानों साक्षात् काल ही छूट गया हो । वह मकानों तथा सभी वृक्षों को नष्ट कर रहा था । रल्ह कवि कहता है कि सारे नगर में अत्यधिक उत्पात हो गया था तथा लोग सोचने लगे थे कि हाथी को कैसे मारा जाय । वह दुर्घर्ष (भयंकर) हाथी पकड़ा नहीं जा रहा था तब लोग पुकार करके भागने लगे थे ।।३४६।।

[३४७–३४८]

दंतूसलि खूदंत फिरइ, तल की माटी ऊपर करइ ।
सो मयमंतु ण लेखइ कासु, वरण उडणु कियउ निरवासु ।।
तीन दिवस तहि छूटे कहे, भाजि लोगु डोंगर चढि रहे ।
बाज······डही नयरहं फिरइ, हात्थिउ मारिउ जइ कोइ धरइ ।।

अर्थ :—वह पुष्ट दांतवाला हाथी पृथ्वी को खूंद रह था तथा नीचे की मिट्टी को ऊपर कर रहा था । वह मदोन्मत्त हाथी किसी से भी नहीं समझ रहा था तथा (जिसने) वनों और उद्यानों को निर्वास (नहीं रहने योग्य) कर दिय था ।।३४७।।

इस प्रकार उस हाथी को छूटे हुये तीन दिन हो गये थे और लोग भाग करके टीलों पर जा चढे थे । नगर में बाजे के साथ घोषणा फिरने लगी थी यदि कोई हाथी को मार कर भी पकडेगा ।।३४८।।

दंतूसली – पुष्ट दंत

[३४६–३५०]

जो भाजइ गयवरु भडवाहु, परिणइ कुमरि देस अधराउ ।
एतिउ बोलु बावरणइ सुरिणउ, हाथटेकि फुरिण बोलइ तरणइं ।।
धरि विरुद्ध गयवरु जइजाइ, झूठे होइ त कीजइ काइ ।
साखी करण ते दिये हारि, सइ राजा परिगहु बइसारि ।।

अर्थ :—"तथा जो भट उस गजराज को प्रणष्ट कर देगा, उसे वह अपनी लड़की परणा देगा तथा आधा राज्य देगा।" यह घोषणा बौने ने सुनी, तब हाथ टेकते हुए उसने यह बात स्वीकार कर ली ।।३४६।।

(राजा ने कहा) "यदि तुम हाथी के विरुद्ध जाकर झूंठे प्रमाणित हो तो हम क्या कर सकेंगे ?" यह सुनकर साक्षी के लिये (बौने ने) हार दिये तब राजा ने उस पर अपना परिग्रह (विश्वास) बिठाया ।।३५०।।

परिगह ∠ परिग्रह—ममत्व । नग्न – विश्वास करना ।

[३५१–३५२]

वीतराग की आरण जु मोहि, पाछइ जइरणवि वाहु···रि ।
राजासइ कौतूहल चलइ, बावरण पासि लोगु बहु मिलइ ।।
ठाट विरुद्ध रु गयवरु (ग) हा, सुइरी विज्जातारणी तहा ।
देखि हाथ बोलइ जु पचारि, काहि पुर घालिय उजाडि ।।

अर्थ :—मुझे वीतराग भगवान की आन (सौगन्ध है यदि मैं) इस कार्य को न करूं । राजा स्वयं कौतूहल वश वहां गया तथा उस बौने के पास बहुत से लोग इकट्ठे हो गए ।।३५१।।

वह बौना गजराज के सामने जाकर खड़ा हो गया । तारणी विद्या को उसने स्मरण किया । उस हाथी को देखकर वह उसे ललकार कर बोला, "तुमने नगर को क्यों उजाड़ डाला है" ।।३५२।।

सइ ∠ सइं–स्वयं । सुइर ∠ स्मृ – स्मरण करना ।
हाथ ∠ हस्तिन – हाथी ।

पागल हाथी को वश में करना

[३५३–३५४]

सुणिह भेडक हउ विखु तोहि, गयवर भलउ ति सौंहो होहि ।
गयवर वीह कीह व (लि) वंड, जिणदत्तहु निरखे भुज दंड ।।
पयसित हाथि प्रकावसि धरउ, चक्क भवणु लइ गयवर फिरिउ ।
हाकि वीर बोलइ जु निवाणु, अरे चेड तौहि य हुर पाराणु ।।

अर्थ :—(बौने ने हाथी से कहा,) "सुन, मैं तुझे भीरु देख रहा हूँ; यदि तू भला और श्रेष्ठ गज है तो मेरे सन्मुख हो । उस बलवान गजेन्द्र ने मार्ग दे दिया जब उसने जिनदत्त के भुजदंड को देखा ।।३५३।।

प्रविष्ट होकर उसने हाथी को पकड़ा तो हाथी उसको चक्र-भवन लेकर लौट पड़ा । वीर (जिनदत्त) उसे हांक करके निदान बोला, "अरे सेवक, तुझमें यही प्राण (बल) है" ।।३५४।।

भेडक – भीरु, कातर । वीह ∠ वीथी–रास्ता, मार्ग ।

[३५५–३५६]

सुंडि पूछ धरि देखउ तोहि, गयवर भलो तिसौंहउ होहि ।
सुंडि पूछ अउ धरिउ तुरंतु, भव लावत लयउ जिणदत्तु ।।
पहर एकु धरि फेरिउ जाम, खेव खिण्णु भउ गयवर ताम ।
जहि गयवर की गहिरी गाज, जहि गयवर भय पिरयो भाज ।।

अर्थ :—(जिनदत्त ने कहा,) तेरी सूड एवं पूँछ पकड़ कर देखूँगा । श्रेष्ठ गज, यदि तू भद्र है तो सम्मुख हो ।" उसने शीघ्र ही जब हाथी की

सूंड एवं पूंछ को पकड़ लिया। जिनदत्त ने उसको उसके भव (जन्म) का ज्ञान कराते हुये पकड़ा ॥३५५॥

उसने एक पहर तक उसे पकड़ कर घुमाया। वह श्रेष्ठ गज खेद-खिन्न हो गया। जिस श्रेष्ठ गजराज की गहरी गर्जना थी और जिस श्रेष्ठ गज के भय से पृथ्वी भागती थी ॥३५६॥

लाव ∠ लापय् – बुलवाना, कहलाना।

[३५७–३५८]

जहि गयवरु कउ मोटउ[1] हियउ, सो वावणे विलखौ कियउ।
जो गयवर गयवर हण माण, ण गणइ सींहहि आखु पराण॥
वेडु जूड स पहारहि करइ, तहि वावणें जीति निरकरइ[2]।
धरि दंतूसरि मूठिहि हयउ, चढिवि कंधि करि अंकुस लयउ॥

अर्थ :—जिस हाथी का मोटा (बड़ा) हृदय था, उसको उस बौने ने रुवासा (रोने पर तुला हुआ) कर दिया। जो गज श्रेष्ठ गजों के मान (अभिमान) का हनन करता था और सिंह को नहीं गिनता था, जो ऐसे अक्षत प्राणों का था ॥३५७॥

जो अपने प्रहारों से (अपने) बड़े बन्धन को जूट–वालों के जूड़े (का सा) कर डालता था, उसे वह बौना निश्चित रूप से पराभूत कर रहा है। हाथी के पुष्ट दांतों को पकड़ कर उसने मुट्ठी मारी तथा कन्धे पर चढ़कर अंकुश ले लिया ॥३५८॥

ऊसर ∠ ऊसल – पुष्ट।

१. मूल पाठ – मोटट

२. इस चरण का दूसरा पाठ :—वावणु जंघ जुव तलि नीसरइ।

अर्थ :—उसके (हाथी के) दोनों जंघाओं के नीचे से वह बौना निकल गया।

[३५६–३६०]

हथिया आनि खंभ बंधि ठाउ, जय-जयकारु लोकु सहु कियउ ।
हाथि जोडि फुणि विरणवइ तेव[1], पुत्तिह लगण छिकावहि देव ।
वइठो जाइ जिरणेसर भवण, पूछहि निय गुरु कारजु महवणु ।
सब पुरु सामि अचंभो भयउ, हाथिउ अछे वावरणें धरिउ ।।

अर्थ :—(तदनंतर) हाथी को लाकर उसके स्थान पर उसने खंभे से बांध दिया। (इससे) सभी लोगों ने जय जयकार की। हाथ जोड़ कर फिर वह बौना विनय करने लगा, हे देव, "(अब) अपनी पुत्री का लग्न दिखाइये (विवाह कीजिए)" ।।३५६।।

राजा जिन मंदिर में जाकर बैठ गया तथा वहाँ पर (अपने) गुरु से उस राजा ने उस कार्य के विषय में पूछा। सभी पुरुषों को आश्चर्य हुआ कि इस बौने ने हाथी को अक्षत (बिना किसी चोट फेट के) पकड़ लिया ।।३६०।।

महवणु ∠ मघवन – इन्द्र
१. मूल पाठ – 'सेव'

अद्भुत कार्यों का वर्णन

[३६१–३६२]

भवियउ बात कहहु निरु सम्वणु, एही बात अचंभउ कवणु ।
कोडि एग्यारह जूवा खेलि, माता पिता छोडि गउ मेलि ।।
जहि परकम्म अइसा जहउ, तह को पौरुष केतउ कहउ ।
जो मोहिउ पूतलिय पहाण, पुण्यवंत को सकइ पहारण ।।

अर्थ :—श्रमण (गुरु) ने निश्चय रूप से कहा, हे भव्यो, ऐसी (इस)

बात में अचम्भा ही क्या? जो ग्यारह करोड जुआ में हार गया तथा माता पिता को छोड़कर चला गया ।।३६१।।

जिसने पराक्रम (पुरुषार्थ) ऐसा पाया, उसके बल पौरुष के विषय में कितना कहा जाय। जो पत्थर की पूतली को देखकर मोहित हो गया। उस पुण्यवंत की कितनी प्रशंसा की जावे ।।३६२।।

अछे ⁄ अक्षत – विना अंग भंग किये।

भविअ ⁄ भविक – मुक्तिगामी, भव्य जीव।

परकम्म ⁄ पराक्रम।

[३६३–३६४]

परिहसु लियउ बिसंतर करइ, जहि कौ हाथ अजंणी चडइ ।
सूकउ अवर बहोडइ जोइ, तहि किउ पौरुष कइसउ होइ ।।
फिरिउ अनेयइ सागर दीप, पोपी सायरदत्त समीप ।
सिंहल हंसकूट देखियउ, तासु वीर को कैसो हियउ ।।

अर्थ :—जिसने खुशी के साथ परदेश गमन लिया तथा जिसने अपने हाथ से अंजनी (गुटिका) चढाई। जिसने सूखी (बाडी) हरी कर दी। ऐसे (पुरुष) का और कैसा पुरुषार्थ होगा ? ।।३६३।।

जो पापी सागरदत्त के साथ अनेक दीप समुद्रों में घूमा। जिसने सिंहल एव हंसकूट देखा, उस वीर का हृदय कैसा होगा ? ।।३६४।।

[३६५–३६६]

मालिण तणी बात निसुणाइ, मीच पराई मरण जु जाइ ।
गयो मसाणि मडउ आणियउ, अहो भवियहु तहु कैसो हियउ ।।
सिरियामती उव (र) नीसरयो, जिण विसहर सयलु लोय संहरिउ ।
कानु पूछ धरि ताडइ जोइ, तह कउ पौरिषु कवसउ होइ ।।

अर्थ :—"मालिन से वार्ता सुनकर जो दूसरे की मृत्यु में मरने के लिये गया, जो श्मशान जाकर मुरदे को लाया। हे भव्यो, (तुम ही बताओ) उसका हृदय कैसा होगा" ? ॥३६५॥

"श्रीमती के पेट में से निकलने वाले जिस सर्प ने समस्त लोगों का संहार कर दिया था, उस काल की (सर्प की) पूछ पकड़कर जिसने (बौने ने) ताड़ना की ऐसे व्यक्ति का पौरुष कैसा होगा ? ॥३६६॥

[३६७–३६९]

करइ अकेलउ सायर झंप, तहि जल मगर मच्छ की झंप ।
गयउ पतालहि पाणिउ साहि, तहि को पौरषु कहियइ काहि ॥
फोडि नीरु उछलिउ बलिवंड, पुणु पेरियउ समुद्द भुजदंड ।
हाकि विज्जाहरु तिण रु भिडाइ, तिहि पौरुष कहि हियइ समाइ ॥
हुइ वावणउ जु सत्ती बुलाइ, हेला मंतिहि हियइ समाइ ।
मणि चिंतिउ विवाणु जिह लयउ, ताह वीर को कैसो हियउ ॥

अर्थ :—"जो अकेला समुद्र में कूद पड़ा, जहाँ मगर मच्छ वगैरह कूदते हैं, जो जल के सहारे पाताल लोक में चला गया, ऐसे (मनुष्य के) पौरुष के बारे में क्या कहा जा सकता है ?" ॥३६७॥

"वह पराक्रमी जल को फाड़ कर उछल आया, फिर उसने अपनी भुजाओं से समुद्र का संतरण किया (तैर कर पार किया)। विद्याधरों को ललकार कर वह उनसे भिड गया। ऐसे पुरुषार्थी का बल किसके हृदय में समा सकता है ?" ॥३६८॥

बौना होकर जिसने सतियों को बुलवा दिया और जिसकी हेला (धाक) मंत्रियों (?) के हृदय में समा गई, जिसने मन चाहा विमान प्राप्त किया, ऐसे वीर का हृदय कैसा होगा ?" ॥३६९॥

[३७०–३७१]

विज्जा बलह जहि अछहि पास, चडिवि विमाणु गयो कैलास ।
तिहु भुवणहि जहि करी खियाति, हथिए······वपुडा केती बात ।।
तउ बावणउ हकारिउ राइ, पूछउ बात कहउ सतभाउ ।
तू परछण्ण वीर हहि······, आपउ किन पयासहि ओहि ।।

अर्थ :—"जिसके पास विद्याबल है, जो विमान पर चढ़ कर कैलाश गया था, जिसने तीनों भुवनों में अपनी ख्याति करली थी, ऐसे वप्पुडे (बेचारे) की कितनी (क्या) बात है" ।।३७०।।

तब बौने को राजा ने बुलाया और पूछा, "तू मुझसे (अपनी) वार्ता सतभाव (सत्य रूप) से कह । हे वीर! तू छिपा हुआ क्यों है ? तू किस कार्य के लिये आया है जिसे प्रकाशित नहीं करता (बताता) है ? ।।३७१।।

हकार ∠ आकारय् – बुलाना ।
पयास् ∠ प्रकाशय् – प्रकाशित करना ।

[३७२–३७३]

गात अलखणु कहियइ काइ, मूंडिउ मड्डु चोटी फरहराइ ।
जिहि भोयण भिख्या कीय, सो किम परिणइ राजा धीय ।।
जाति विहीणु देव बावणउ, बार बार सत चूकउ भणउ ।
पाछइ लोगु हसइ मो वयणु, कुंजर कंठि कि सोहइ रयणु ।

अर्थ :—(बौने ने कहा) "जिसका शरीर लक्षणों रहित है, उसे क्या कहें ? जिसका शिर मुंडा हुआ है तथा चोटी फहरा रही है, जिसने भिक्षा का भोजन किया है वह राजा की कन्या से कैसे विवाह कर सकता है ?" ।।३७२।।

"हे देव ! जो जाति विहीन तथा बौना है तथा बार बार सत्य से चूके वचन बोलता है और पीछे से जिसके वचनों को सुनकर लोग हँसते हैं । क्या

हाथी के गले में रत्नों का हार शोभा दे सकता है" ॥३७३॥

रयण ∠ रत्न

[३७४-३७५]

कहा कुमरि मुहि हीरणे दीन, परिहसु मरउ लेइ कोइ छीनि ।
घाली जाइ देव जिउ आल, गावह गलै रयण की माल ॥
आपु...हाउ कहियइ काइ, छेली मुह कि आलियउ माइ ।
अनइं देव न पावउ कला, वांदिर कडि रयरण मेखला ।

अर्थ :—मुझ हीन को राजकुमारी देने से क्या लाभ ? परिहास के कारण मैं मरुँगा और कोई उसको (राजकुमारी को) छीन लेगा । हे देव! यह वैसा ही होगा जैसे गधे के गले में रत्नों की सुन्दर माला डालदी जाए ॥३७४॥

अपने लिये मैं और क्या कह सकता हूं । बकरी के मुंह में क्या कस्तूरी समाती है ? हे देव! बंदर की कटि में रत्न मेखला कला (शोभा) नहीं प्राप्त करती है ॥३७५॥

[३७६-३७७]

घाघ सु कहा करइ रविधाम, भुंजिउ जोडि जाइ परिरणाम ।
अरण छाजत इह सह सबु कोइ, बोले कहा सवारथु होइ ॥
देह कुछील हाथ इकु काय, आंगुल चारि चारि मो पाय ।
लोचे—षु जणु ड लाकडी, लालउ पेटु पीठि कूबडी ॥

अर्थ :—"सूर्य के धाम में जाकर घुग्घु (उल्लूक) क्या करेगा ? उसे वहां जाकर उसका परिरणाम भोगना पडेगा । यहां सब अनचाहा हो रहा है । मेरे बोलने से क्या स्वार्थ निकलेगा । ॥३७६॥

मेरी देह कुत्सित है तथा एक हाथ का शरीर है। मेरे चार २ अंगुल लंबे पैर हैं। शरीर जैसे लकड़ी हो, पिचका पेट है तथा पीठ कूवडी है ॥३७७॥

कुछील ∠ कुच्छित ∠ कुत्सित।

[३७८-३७९]

आँखि कुढाल कपाल निधान, डसण दातलय बूचे कान।
कुहणी ऐसी देव मोकडी, अछ कपोल[1] नाक छीपडी ॥
कामकला तिहि तेरी कुमरि, रंभ सरंभ तिलोत्तमि गवरि।
जोग मोहणिय मृग लोयणु जासु, सा किमु सोहइ मेरइ पासु ॥

अर्थ :—आँखें बेढंगी हैं तथा कपाल गडा हुआ है। दांत हंसिया (जैसे) तथा कान बूचे हैं। हे देव! कुहनी जैसी मूँगरी हो, गाल बैठे हुये तथा नाक चिपटी है ॥३७८॥

(दूसरी ओर) तेरी राजकुमारी काम की कला है। वह रंभा, तिलोत्तमा एवं गौरी है। वह जगत् मोहिनी है, जिसके लोचन मृगों के जैसे हैं। वह मेरे पास कैसे सुशोभित होगी? ॥३७९॥

दातला ∠ दात्र – घास काटने की हँसिया।
अछ ∠ आस – बैठना।
१. कपाल – मूल पाठ है।

[३८०-३८१]

पडहो नयर माहि बाजहि, गयबरु धरइ कन्य परणेइ।
धरिय हाथ मइ बावण भाट, अब उठि जाउ आपणी बाट ॥
मंतिहि तणउ हियउ कंपियउ, कूडउ मंतु देउ सबु कियउ।
बेटी देहि कुवालि म वालि, कीली लागि म देवलु ढालि ॥

अर्थ :—"नगर में पटही बज रही थी कि हाथी को वश में करने वाला कन्या को विवाहेगा। हाथी को बौने भाट ने पकड़ा है और अब मैं उठ कर अपने मार्ग को जाता हूँ" ॥३८०॥

मंत्रियों का हृदय कांपने लगा तथा उन्होंने कहा, "हे देव ! समस्त विचार कूट (बुरा) किया है। अपनी पुत्री को इसे देकर कुचाल मत चलिए; कीली के लिये देवल में मत गिराइए ॥३८१॥

हाथ ∠ हस्तिन – हाथी।

[३८२–३८३]

अवरु भणइ देव अइसो कीज, बालिय राइ एक कहु दीज ।
मेरी बात जिण करहु संदेहु, फुड वयणु भइ अखिउ एहु ॥
जइ पहु कइसइ धीय न देउ, तउ यहु सयलु अंतेउरु लेइ ।
राजा मंतिहि समुद वहाइ, नयरु आपुणी आणु दिवाइ ॥

अर्थ :—वह फिर कहने लगे, "हे देव ! ऐसा करिये। इस कन्या को एक राजा को दीजिए। मेरी बात में आप सन्देह न कीजिए; मैंने आपसे स्फुट (स्पष्ट) वचन कहा है" ॥३८२॥

"यदि हे प्रभो ! किसी प्रकार लड़की को नहीं देते हो तो सारा अंतःपुर यह (ऐसे ही) ले लेगा (करेगा)" राजा ने मंत्रियों को विदा किया और अपनी नगरी में उसने आज्ञा दिलाई (प्रसारित की) ॥३८३॥

[३८४–३८५]

मंती रहे हियइ करि संक, राजा कइ मनि पइठी संक ।
वार वार भण गहियइ कोइ, अति करि मथियउ कालकुटु होइ ॥
तह करायउ सोरघु गंधब्बु, पूछइ राउ कहंत रु सब्बु ।
तुह कउ आणि जिणेसर तणी, फुडी बात कहु सवु आपुणी ॥

अर्थ :—मंत्रीगण हृदय में शंका करते रहे तथा राजा के मन में भी शंका बैठ गयी। बार-बार मन को कोई टटोलने लगा। अत्यधिक मथने से काल कुष्ट हो जाता है ॥३८४॥

तब श्री रघु (नाम के) गंधर्व ने (बौने से) कहा, "राजा पूछ रहा है (अतः) तुम्हें सब कुछ कहना चाहिए; तुम्हें जिनेन्द्र की सौगन्ध है अपनी सब स्फुट (स्पष्ट) बात कहो" ॥३८५॥

[३८६–३८७]

सुणि सुणि देउ कहूं सतभाउ, कहियइ सा वसंतपुर ठाउ।
माता जीवंजस पिय खीरु, पिता जीवदेव साहस धीर ॥
एक पूतु हउ तिन्ह घरि भयउ, पुणु जिणदत्त नाम महु ठयउ।
हारिउ सामिय जूवा दब्बु, कियउ विसंतरु चित्त धरि गब्बु ॥

अर्थ :—(बौना बोला) हे देव ! सुनिए, सुनिए। मैं सत्यभाव से कह रहा हूं। "उस (मेरे स्थान) को वसंतपुर कहा जाता है। जिसका मैंने दूध पीया है ऐसी मेरी माता का नाम जीवंजसा है तथा मेरे पिता साहसी जीवदेव है" ॥३८६॥

"उनके घर में मैं एक ही पुत्र हुआ, तदनन्तर उन्होंने मेरा जिनदत्त नाम रक्खा। हे स्वामी ! मैं जुए में द्रव्य हार गया, इसलिए चित्त में गर्व धारण करके मैंने विदेश (जाने) का निश्चय किया" ॥३८७॥

[३८८–३८९]

आसा करि हउ जणियउ माइ, सो किमु छोडि विसंतरु जाइ।
वज्र को हियउ न फाटइ देव, महु विणु बाप न जीवइ केव ॥
दीठे देस नयर बहु घणे, हूंटे दीप समुद्दह तणे।
बारह बरस विसंतरु गए, न जाणउ माय बापु कहा भए ॥

अर्थ :—"मुझे मेरी मां ने बड़ी आशाओं से पैदा किया था। उसे छोड़ कर विदेश मैं क्यों कर गया ? हे देव ! मेरा वज्र का हृदय नहीं फटता है। मेरे बिना मेरे पिता भी किसी प्रकार जीवित न रह सकें" ।।३८८।।

"मैंने बहुत से देश और नगर देखे तथा अनेक समुद्रों एवं द्वीपों की यात्रा की। विदेश भ्रमण करते हुये बारह वर्ष बीत गये, पता नहीं मेरे माँ-बाप का क्या हुआ" ।।३८९।।

[३९०-३९१]

इहा परणी विमलामती, सिंघल दीपि सिरियामती ।
पुणि परिणिय बिज्जाहरि, सो कहु लइ आयउ चंपापुरी ।।
विमलसेठि देव तणइ विहारि, मइ जु बुलाइय तीनिउ नारि ।
को तहि मरइ बहुतु कहि वत्त[1], ते तीनिउ सु अम्हारी कलत्त ।।

अर्थ :—"यहां मैंने विमलमती के साथ विवाह किया तथा सिंहल द्वीप में श्रीमती के साथ (विवाह किया)। फिर विद्याधरी स्त्री से विवाह किया और उसको चंपापुरी लाया" ।।३९०।।

"विमल सेठ के जिन मन्दिर में मैंने जिन तीनों स्त्रियों को बुलाया था वे तीनों ही मेरी पत्नियां हैं" लेकिन बहुत सी बातें कह कर कौन मरे ? (कहने से क्या मतलब)।।३९१।।

१. मूल पाठ – 'वात'

[३९२-३९३]

जे ते बछ तुम्हारी नारि, किम पत तो मिलवहु वइसारि ।
फुडउ वयणु जइ यहु तुम्हि देस, इह तुहु काइ विवाहउ बीस ।।
जइ ते कहहि हमह पिउ आहि, बीस कुमरि मांगउ कहु पासि ।
एक कुमरि वइ सकहि न आहि, बीस कि तीस विवाहहु काहि ।।

अर्थ :—राजा ने कहा, "हे वत्स ! यदि वे तुम्हारी पत्नियां हैं तब (उन्हें) बैठा कर मिल क्यों नहीं लेते ? यदि तुम स्फुट (सत्य) वचन कह रहे हो तो इन बीस (?) स्त्रियों के साथ तुमने क्यों विवाह किया ?" ॥३९२॥

यदि वे कहेंगी कि तुम हमारे प्रिय पति हो तो वे बीस (?) पत्नियां किससे (कुछ) मांगेंगी ? तुम जब एक स्त्री को नहीं दे सकते हो, तब तुमने फिर बीस-तीस (?) के साथ विवाह क्यों किया ? ॥३९३॥

देस – कहना ।

[३९४–३९५]

बोल बोल वावरण त्रुडि करइ, राजा बोल तु सासइ पडइ ।
मंत्री कह्यो मंत्र धरि ठाणु, इव तुह एकइ कुमरि परिमाणु ॥
श्री रघुराइ पठायो दूतु, जाइ बिहारहु वेगि पहूत ।
हाथ जोडि बोलइ सतभाउ, तुम्ह पुणि तिहु बुलावइ राउ ॥

अर्थ :—बौना बोल बोल कर त्रुटि (भूल) कर रहा था और राजा के बोलने ही वह संशय में पड़ गया । मंत्री ने मंत्रणा कर निश्चय करके कहा, "तुम्हें अब एक ही कन्या व्याहनी है" ॥३९४॥

श्री रघु (गंधर्व) को राजा ने दूत बना कर भेजा । वह जाकर शीघ्र ही विहार (जिन-मन्दिर) में पहुँच गया । वहां हाथ जोड़ कर वह सत्यभाव से कहने लगा, "राजा तुम तीनों को पुनः बुला रहा है" ॥३९५॥

[३९६–३९७]

एतउ वातु सवरण जवु सुरणहि, लोभिउ राउ परंपरु भरणइं ।
काउसग्गि रही तिह ठाइ, अछीस ताहि झाणु मणु लाइ ॥
वाहुडि दूतू न बोलइ बयणु, बवहि ण देव ण वाहहि नयणु ।
जो मइ देव बुलाई सही, तीनिउ झारण मउरण लइ रही ।

अर्थ :—यह बात जब कानों से उन्होंने सुनी तो वे आपस में कहने लगी, "राजा लुब्ध हो गया है।" फिर वे कायोत्सर्ग में (स्थित होकर) वहीं पर ध्यानमग्न हो गयीं ॥३९६॥

वहां से लौटकर वह दूत बोला, हे देव ! वे न बोलती हैं और न नेत्र डुलाती हैं। ज्यों ही मैंने उन सभी को बुलाया तो तीनों ध्यान तथा मौन धारण कर बैठ गयी ॥३९७॥

वाहुड़ ∠ व्याघुट – लौटना।

[३९८]

दूत वयणु सुणि वियसिउ राइ, रे वावणे यहु तेरी ठाउ ।
वावणु भणइ चलहु तिहु ठाइ, तिन्हसि नरवइ बोलहि काइ ।

अर्थ :—दूत के वचन सुनकर राजा विकसित हुआ (मुसकराया) और कहा, "हे बौने ! यह तेरा स्थान है।" (यह सुन कर) बौने ने कहा, उस स्थान पर चलिये, उनसे नरपति क्या बोलेंगे" ॥३९८॥

नाराच छंद

तीनों स्त्रियों से पुनः साक्षात्कार

[३९९]

राजा परजा लोगु बागु गयउ विहारि ।
बइठे आगे पूछण लागे तिन्हहुं हकारि ॥
अहो सीया पूछउ सीया वात्त एकु तुव भणी ।
हम ण पतीजहु रहु कहाइ मेरी एती तीनिउ धणी ॥

अर्थ :—राजा प्रजा और लोग-बाग (जनसमुदाय) उस विहार में गये और (उनके आगे) बैठकर तथा उन्हें बुलाकर पूछने लगे। हे सीता के समान

नारियों तुमसे हम एक बात पूछते हैं । रल्ह कवि कहता है हम (इसकी बात पर) कि ये तीनों ही मेरी स्त्रियां हैं, प्रतीति नहीं करते हैं" ।।३६६।।

[४००-४०१]

विमलामती कहइ बात सुणि हो स्वामी ताता ।
यहु तउ बांवणउ अइ दीणा वणउ कहइ हमारी कंता ।।
अम्ह पिउ चंगु…सुगुणगुण सुठि अइ रुवडउ ।
इहु बोलइ भूठउ विरह न दीठउ दीणउ कूबडउ ।।

पुणु पुणु जो बोलइ चित्तह डोलइ अरे अचागले ।
किं बोलहि नारी भिक्खाहारी जीह आगले ।।
म्हारो कंता जो जिणदत्ता रुवह छइ घणउ ।
तू तहु बावणु करहिउ मणु रंजावहि लोयण तणउ ।

अर्थ :—विमलामती कहने लगी, "हे स्वामी और तात, बात सुनो; यह तो बौना है तथा अत्यन्त दीन वचन कहने वाला है और यह अपने को हमारा पति कहता है ? हमारा पति स्वस्थ है, पर्याप्त सद्गुणोंवाला एवं अत्यधिक रूपवान है । यह भूँठ बोल रहा है । हमें तो विरह में यह दीन कुबड़ा दीखा भी नहीं है ।।४००।।

तू बार-बार यही कहता है और तेरा चित्त, अरे दुष्ट (इस प्रकार) डोल गया है ? अपनी जिह्वा के अग्रभाग से ऐ भिक्षा मांग कर खाने वाले ? तू क्यों कहता है कि हम तेरी पत्नियां हैं ? हमारा स्वामी तो जिनदत्त है जो अत्यन्त रूपवान है । तू तो बौना है, करही है, तथा अपनी आंख एवं शरीर से लोगों का मनोरंजन करने वाला है ।।४०१।।

अइ /_ अति । करही – ऊँटनी पर सवारी करने वाला ।

[४०२–४०३]

विज्जाहरिया बोलइ तिरिया सो जि तुरंतु सुणि ।
पिरथी राइ कहियउ काई (अ)पणी वात परि ।।
अम्हह कंता तणिया वाता जाणइ सव्वह एहो ।
णहु जाणइ एवहि ते मिय (पू)छहु हडइ संदेहु ।।
तुमि नारि निकिठी तिन्निउ भूंठी भूंठउ यहु परिवारु ।
महु मेल्लिवि पिलिवि अवरुवि कवणुवि कहहु भत्तारु ।।
अरि लंपट लाइ जाइ विलाए फोटउ होहि रे विरूप ।
पर पिरथी लोए नाही कोई अम्ह पिय के रूप ।।

अर्थ :—तदनन्तर विद्याधरी बोली, "हे पृथ्वीपति ! तुरन्त सुनिये । अपनी बात क्या कही जाए । यह हमारे पति की सारी बातें जानता है (या) नहीं जानता है, इससे थोड़ा पूछें, जिससे संदेह मिटे" ।।४०२।।

बोने ने कहा, "तुम निकृष्ट नारियां हो और तीनों भूंठी हो और भूंठा ही यह तुम्हारा परिवार है । तुम मुझे छोड़ कर और ठेल (धकेल) कर और किसी को भर्त्तार कहती (कहना चाहती) हो ।" स्त्रियों ने कहा, "अरे लंपट, तू भूंठी लगा रहा है, रे विरूप तू नष्ट हो; इस पृथ्वी पर लोक में हमारे प्रिय के समान रूपवान कोई नहीं है" ।।४०३।।

मिय ∠ मित – थोड़ा, अल्प ।

[४०४–४०५]

णिसुणहुं वात विसंतउ तणी, काहे माहि निसुंभहु धणी ।
तुम्हारे दुखह पडिउ संदेहु, तिहि भइ मेरी कुवडी देह ।।
टापुणु लाग्यो दध्यो घणउ, तहि होइ पाइ भयो वावणउ ।
तुम्ह विजोग दुख भरिउ घणाह, जलो देह भई लोची वाह ।।

अर्थ :—(बौने ने कहा,) "विदेश (यात्रा) की बात सुनो; ऐ स्त्रियों तुम मुझे (इस प्रकार) क्यों मार डाल रही हो (तंग कर रही हो) ? तुम्हारे दुःख में मुझे सन्देह है इससे मेरी देह कुबड़ी हो गई है ।।४०४।।

और जब मैं अत्यधिक (दुःखों की) घानी में पड़ गया तो मैं बौना हो गया । तुम्हारे वियोग से अत्यधिक दुःख में मर गया इसलिये देह जल गई और बाँह खोची (टेढ़ी) हो गई ।।४०५।।

निसुंभ ∠ णिसुंभ ∠ नि – शुम्भ – मार डालना ।
घाण – घानी, कोल्हु जिसमें तिल आदि पेरे जाते हैं ।
पाइ ∠ पातिन – गिरने वाला ।

[४०६–४०७]

तुम्हहि सोगु दुखु भयउ महंतु, बइठे जाबू निकले दंत ।
परिहसु लियइ हियइ बिलखातु, कहइ बावणउ हो जिणदत्त ।।
लए जु हाकट कइसे दांत, सउरा ज्यों मिलवहि तू बात ।
कालिह जु छाडि गयो रुवडउ[1], सो कि आजु भयो कूवडउ ।।

अर्थ :—(बौने ने कहा,) तुम्हारे शोक में मुझे अत्यधिक दुःख हुआ इसलिए गाल बैठ गये और दांत निकल आये । हृदय परिहास के कारण विलखता रहा इसलिए जिनदत्त बौना हो गया ।।४०६।।

(स्त्रियों ने कहा,) "तुम जो हाकट (?) ऐसे दांत लिए हुये हो, तुम सब बातें (झूठ) मिला रहे हो । तुम कल ही (यदि) छोड़ कर गये थे तब तो सुन्दर थे । आज कैसे कुबड़े हो गये ?" ।।४०७।।

१. मूल पाठ – कूवडउ ।

हुप्पा सेठ की कथा

[४०८-४०९]

झूंठी भईय तिरिय गहु करहु, मेरे बोल न तुमि गरहु ।
पडे उघाडहू सइ सवु कोइ, सगे बुवा कहि भोलउ होइ ॥
णिसुणि वावणे हीण अजाण, हपा सेठिणि वसइ पइठाण ।
असी कोडि घर दव्वु अपार, घाठि कोवइ करइ अहारु ॥

अर्थ :—(बौने ने कहा,) हे स्त्रियों ! तुम झूंठी होकर इस प्रकार दुःख (शोक) कर रही हो । मेरी वाणी पर तुम विश्वास (?) नहीं करती हो । उघाड़े पड़ जाने पर सभी हँसते हैं, सगा……कह कर मनुष्य भोला बनता है ॥४०८॥

(स्त्रियों ने कहा,) "ओ हीन और अजान बौने सुन । एक हुप्पा नाम का सेठ प्रतिष्ठान में वसता था । उसके घर में अस्सी करोड़ अपार द्रव्य था किन्तु वह स्वयं तो घटिया चावलों का आहार करता था" ॥४०९॥

[४१०-४११]

तीनि नारि तहु खरी गुणंगु, रूप विज्जाहरि सुठु सुवंगु ।
हुपा सेठि उठि वणिजह गयउ, धूत एकु घरि पइठउ आइ ॥
दव्वु उखारि तेन विट्टयउ, आपुण हपा सेठि सो भयउ ।
लेत पटोली भूवित तिरी, तीनिउ आनि त सोने भरी ॥

अर्थ :—उसके तीन स्त्रियां अत्यधिक गुणवती थी । रूप में वे विद्याधरियों जैसी अत्यधिक सुन्दर थी । जब हुप्पा सेठ उठकर व्यापार के लिये (विदेश) गया तो वहां एक धूर्त आया ॥४१०॥

उसके (गड़े हुए) द्रव्य को (निकाल) कर उसका भोग किया (?)

और आप हप्पा सेठ बन गया। उसकी दी हुई पटोली (रेशमी साड़ी) को लेकर वे स्त्रियां अति प्रसन्न हुई और (उसके साथ में) आकर तीनों ही (स्वर्ण से) लद गईं ॥४११॥

[४१२–४१३]

मांडे दूध निवात संजोइ, घिउ लापसी कलेऊ होइ।
केला दाख छुहारी खीर, खांड चिरौंजी नितु दुख हरी ॥
दाडिव बिरसोरा बहु खाज, विलसहि राणी अइसे राज।
फूल तंबोल कपूर बहुत्त, अइसो भोग करावइ धूत[1] ॥

अर्थ :—उन्होंने दूध और नवनीत संजोकर मांड़े तथा घी और लापसी का कलेवा होने लगा। केला, दाख, छुहारा, खीर, खांड़ और चिरौंजी नित्य दुख हरने लगे। दाडिम, बिजौरा आदि बहुतेरे खाद्य से राणी और राजा की भांति वे विलसने लगे। फूल, पान, कपूर आदि का इस प्रकार वह धूर्त बहुत उपभोग कराने लगा ॥४१२–४१३॥

१. मूल पाठ—दून

[४१४–४१५]

घाठि कोदई जले जु गात, छाडी हप्पा सेठि की बात।
जिण बाहुडि आवइ करतार, सब सुखु पुरए ए जु भतार ॥
धूतह दीन्यो दरबु अघाइ, राजा कुल बालउ अपनाइ।
बरिस तिण्णि दह वणिजह गए, पाछें बेटा बेटी भए।

अर्थ :—किन्तु घाठी (अथवा घटिया) और कोदई [कोदव] [खाने में] उनका गात्र जल गया तो उन्होंने हप्पा सेठ की बात छोड़ दी। स्त्रियां कहने लगी, "हे भगवान हमारा भर्त्तार वापस न आए; यही हमारा भर्त्तार है क्योंकि इसीने हमारे लिए सब सुख पूरे कर दिये हैं ॥४१४॥

उस धूर्त ने उन्हें अपार द्रव्य दिया। हे राजन्! उन बालाओं ने उसको अपना लिया। [सेठ के] वाणिज्य के लिए बारह वर्ष तक चले जाने के बीच उनके बेटा बेटी हो गए ॥४१५॥

[४१६-४१७]

बरिस बारह आयउ जवह, घर को विक्रम दीठौं अवरु।
लइउ वहेडे भेटइ जवरु राइ, महु घरु वकतइ दीन्यो काहि॥
तवहि नरिंद बात हसि कहइ, बात एक कउ कारणु कहइ।
हुप्पा सेठि बहु अवरुइ अप्पु, बेटा बेटी केरउ बापु॥

अर्थ :—जब बारह वर्ष पर सेठ घर लौटा तो उसे घर की व्यवस्था दूसरी ही दिखाई पड़ी। वहेडे [?] लेकर जब उसने राजा से भेंट की तो कहा, "मेरा घर तूने किसको दे दिया?" ॥४१६॥

तब राजा ने हँस कर कहा, "एक बात का कारण बता। वह अन्य व्यक्ति भी अपने को हुप्पा सेठ और बेटे बेटियों का बाप कहता है" ॥४१७॥

[४१८-४१९]

हुप्पा सेठि मन बिलखो भयउ, मूंड खुजाइ घरि उठि गयउ।
नियम विरहु न पावइ जाण, धूतहु दिण्ण राइ को आण॥
णियमणि चमकि गयो सो तित्थु, णरवइ सिंहासणु हुई जित्थु।
हाथ जोरि तिनि विनयो राइ, जइ पहु दीनह करहु पसाउ॥

अर्थ :—वह हुप्पा सेठ मन में दुःखित हुआ और शिर को खुजलाते हुए उठ कर घर को चला गया। इस वियोग के वह कोई कायदे-कानून नहीं जानता था किन्तु उसने तो धूर्त को राजा की दुहाई दिलादी ॥४१८॥

अपने मन में चौंक कर वह (हुप्पा सेठ) वहाँ गया जहां नरपति का

सिंहासन था। हाथ जोड़ कर उसने राजा से विनती की, "प्रभु, दीन पर कृपा करो" ॥४१६॥

[४२०–४२१]

तीनिउ नारि बुलावहु जाणि, सभा माहि बइसारहु ताणि ।
कहहु वात्त फुणि तुम्ह घरि जाइ, सभा मह दुमह कवण तुम्हारउ णाहु ॥
किंकर लेगण ताह पेठियऊ, लइ भ्राइसु सुह कारण गयऊ ।
तिहू नारि सिउ भ्रावइ तित्थु, पुहिमु णाहु निय मन्दिर जित्थु ॥

अर्थ :—(राजा ने आदेश दिया) "तीनों स्त्रियों को बुलाओ तथा उन्हें सभा में बैठाओ और तुम उनके घर जाकर कहो कि सभा में बताओ कि दोनों में से तुम्हारा कौनसा पति है" ॥४२०॥

उन्हें ले आने के लिए उसने किंकर भेजे। (किंकर) आदेश लेकर शुभ कार्य के लिए गया। तीनों नारियों के साथ वह वहां आया जहां पर राजा (पृथ्वीपति) का निज मन्दिर था ॥४२१॥

[४२२–४२३]

धूतहं हालडोल परठइय, चडिवि सुखासणि रावलि गइय ।
पूछइ राउ हियइ वियसंतु, दूमहि कवणु तुम्हारौ कंतु ॥
णिसुणि वयणु मुह जोयउ तासु, जिसको करतउ सेठि विसासु ।
जेठी घरणि बोलइ तहा, णावइ सभा बइठउ जहा ॥

अर्थ :—धूर्त को लिवाने के लिये हाल डोल भेजा और वह सुखासन (पालकी) में चढ़कर राज-भवन गया। राजा मन में हँस कर (स्त्रियों से) पूछने लगा, "दोनों में कौनसा तुम्हारा स्वामी है ?" ॥४२२॥

इन वचनों को सुनकर उसने उस राजा के मुँह की ओर देखा।

जिसका सेठ अधिक विश्वास करता था। जहाँ सभा बैठी थी वहाँ सबसे बड़ी स्त्री बोली ।।४२३।।

[४२४–४२५]

बहिउ भातु घिउ परतिखु मीठु, आन जनमु बहिणी किन दीठु ।
हुप्पा सेठि तहु घालहु छारु, इसु धूतिह सिउ कहहु भत्तारु ।।
कहिउ भतारु धूतु निरु जबहि, हाहाकारु अउरु किउ तबहि ।
सभा लोगु छुडु मोणे रहिउ, निय सामिउ तिन्हु लाडइ बहिउ ।।

अर्थ :—(इसी समय एक ने उससे कहा,) दही, मात, घी प्रत्यक्ष में मीठे हैं। अन्य जन्म हे बहिन, किसने देखा है; हुप्पा सेठ पर राख डालो और इस धूर्त को ही भर्त्तार (स्वामी) कहो" ।।४२४।।

जब उसने धूर्त को ही निश्चितरूप से स्वामी कहा तब दूसरी ने हाहाकार किया। सभा के लोग तब मौन हो गए और कहा, "अपने स्वामी पर तीनों ही खड्ग चलाओ ।।४२५।।

[४२६–४२७]

जबहि······परु अपरंपर वुठ, रायपमुह सब जाणहु झूठ ।
सेठि धरणी णर यह जाइसइ, णर भव दुल्लहु णवि पाइसइ ।।
हरतु परतु तिन्हु घालिउ हारि, कूंभी णरइ पड़ी ते नारि ।
झूंठउ बोलि ते णरयहि गई, हम··हि तिरिया समु भई ।।

अर्थ :—जब दुष्टाओं ने परस्पर वार्त्ता की; तब राजा ने सब कुछ (हुप्पा सेठ के वचन को) झूँठा जाना। उन्होंने कहा, "यह सेठ और सेठाणी नर्क जाएँगे और दुर्लभ मनुष्य जन्म पुनः नहीं पावेंगे ।।४२६।।

हरते परते उन्होंने (इस दुर्लभ मानव जन्म को) हार डाला तथा

स्त्रियां कुंभीपाक नर्क में जा पड़ी। झूंठ बोलकर वे नर्क गई। हम उन स्त्रियों की भांति (नहीं) हो गई हैं? ॥४२७॥

[४२८-४२९]

भणइ वावणउ तुम्ह अलिय म चवहु, जैसे होइ तुम्ह पिउ तेसौं मुहि करहु।
लछण बतीसह चरिचिउ अंगु, रूप देखि मोहियइ अनंगु॥
सिरु थापियो पटोलो ढालि, (विज्जा) बहु रूपिणी सभालि।
छाडी वावण कला हीणगु, भयो जिणदत्त सामले अंगु॥

अर्थ:—उस बाने ने कहा, "तुम झूंठ मत बोलो जैसा तुम्हारा पति था वैसा ही मुझे करदो।" उसका शरीर बत्तीस लक्षणों से युक्त हो गया जिसे देखकर कामदेव भी मोहित हुआ ॥४२८॥

उसने अपना शिर रेशमी वस्त्र डाल कर ढक लिया तथा बहुरूपिणी विद्या का स्मरण किया। हीन अंग बौने की कला छोड़ दी, तब जिनदत्त सांवले शरीर का हो गया ॥४२९॥

अलिय /_ अलीक-असत्य।

[४३०-४३१]

सीस उघाडि घालियउ रालि, मोही सभा सयलु तिहि काल।
तिहु नारिस्यु कहइ हसंतु, इवहु हुंति तुम्हारउ कंतु॥
देखि तिरी ते अचरिजु भयउ, चाहहि निरखहि ते विंभई।
अपरंपर ते कहइ जोइ, किछु किछु होइ किछूरनि होइ॥

अर्थ—शिर उघाड करके तथा पैरों में राल (रंग) डालकर (वह-आया) तो उस समय उसका रूप देखकर सारी सभा मोहित हो गई। उसने तीनों स्त्रियों से हंसते हुये कहा, "अब मैं तुम्हारा पति हूं ॥४३०॥

यह 'देखकर तीनों स्त्रियों को आश्चर्य हुआ तथा विस्यित होकर वे उसे ध्यान पूर्वक देखने लगी। वे परस्पर कहने लगी, (हमारा पति) तो यह है कुछ कुछ है और कुछ कुछ नहीं है (ऐसा विचार करने लगी) ।।४३१।।

[४३२-४३३]

विज्जाहरिय कहत इह बात, संभलि पुहम ताह मुह बात ।
यह विज्जा खेलहु बावलउ, हेम पिउ देव नहीं सावलउ ।।
पुणु पच्चक्खु भयो जिनदत्तु, बत्तीसह लखण संजुत्तु ।
छाडी सावल बण्णी छाय, भई देह सोने की काय ।।

अर्थ:—विद्याधरी बात कहने लगी। हे पृथ्वीपति! उस की बात को स्मरण कर। यह बावला तो विद्या के खेल खेल रहा है हमारा पति तो हे देव! सोने का सा है। सांवला नहीं है ।।४३२।।

तब जिनदत्त प्रत्यक्ष हो गया तथा वह बत्तीस लक्षणों वाला था। सांवले वर्ण की छाया छोड़ दी और उसकी देह सोने की काया हो गई ।।४३३।।

] ४३४-४३५]

विमलामती काछ लडि पडई, सिरियामती पाय पाकडई ।
विज्जाहरि लागी उठि बाहु, अवहु छाडी जाही जिणनाहु ।।
जेठी बोलइ मोहि छाडि देवल चडइ, दूजी बोलि मोहि मेलि सायर पडिइ ।
तीजी बोलइ छाँडि गयउ तुरंतु, किन पिय समलहु कलिह की बात ।।

अर्थ :— विमलामती दौडकर उसके कच्छ (कटि) से लिपट गई तथा श्रीमती ने उसके पांव पकड़ लिये। विद्याधरी उठ कर उसकी बाहों से जा लगी और कहने लगी अब आप हे नाथ! छोडकर न जाँए ।।४३४।।

सबसे बड़ी बोली, "ये मुझे मंदिर में छोड़ कर चले गये थे"। दूसरी

बोली "मुझे छोड़ कर ये समुद्र में कूद पड़े थे। तीसरी ने कहा 'मुझे सोती हुई छोड़ कर ये तुरंत चले गये थे। हे प्रिय ! क्या कल की बातों का स्मरण है ? ॥४३५॥

[४३६--४३७]

इहा सयल भोग महि रहिउ, बारह बारिस कष्ट तुम सहिउ ।
एह बोलु मति बोलहु झूठ, तुम्हहि कष्टु हमुहि कि मुख दीठु ॥
तब जिनदत्त कहइ सतिभाउ, तुम्हहि दुख सुंदरि वहि जाउ ।
पाछइ कष्टु गयो फुडु कालु, अब सुख राजु करहु असरालु ॥

अर्थ :— (स्त्रियों ने कहा) "यहाँ तो हम सकल भोग भोगती रहे और तुमने बारह वर्षों तक कष्ट सहे। इस प्रकार झूठ मत बोलो, तुम्हारे कष्ट क्या हमें तुम्हारे मुख पर दिखाई दे रहे हैं ? ॥४३६॥

तब जिनदत्त ने सत्यभाव से कहा, "हे सुन्दरियों, तुम्हारा दुख बह जाए (नष्ट हो)। कष्टों का स्फुट काल अब पीछे चला गया (लद गया)। अब तुम निरन्तर सुख का राज्य करो ॥४३७॥

[४३८--४३९]

जिनदत्त तिरियनु मेलउ भयो, चिर भवियउ पाउ वहि गयो ।
हरस्यो विमल सेठि तिह ठाइ, सइ राजा उठि लागिउ पाइ ॥
णरवइ सभा अचंभो भयो, जिणदत्त कीरति वहु विहु गयऊ ।
चउसय तीसा चौरही, पंडिय राइसीह णिरु कही ॥

अर्थ :—जिनदत्त और स्त्रियों का मिलन होगया तथा उन भविकों के चिरकाल के पाप दूर हो गये। विमल सेठ उस स्थान पर बड़ा प्रसन्न हुआ तथा सब राजा के चरणों से लगे ॥४३८॥

राजा की सभा को आश्चर्य हुआ तथा जिनदत्त को कीर्ति दशों दिशाओं में फैल गई । पंडित राजसिंह ने ये चारसौ तीस चौपाइयां कही ।।४३९।।

भविअ ∠भविक – मुक्ती– आकांक्षी, मुमुक्षु

[४४०–४४१]

भणइ राइ यहु किमु सलहियइ, अइसे चरित नु खयरहु किए ।
इसहि नु वर्ण्ण सके सरसुती, भणइ रल्हु यहु केती मती ।।
हकरायउ जो जोइसी सुजाणु, जो जोइसु को मुणइ ममाणु ।
पूछइ राउ भले चित सगुणु, सीघर[1] विप्र धरहि तुह लगुणु ।।

अर्थ :— राजा कहने लगा, "इसकी किस प्रकार प्रशंसा की जाए ! ऐसे चरित तो विद्याधरों ने ही किये हैं । इसका वर्णन केवल सरस्वती ही बखान कर सकती है । रल्ह कवि कहता है "मेरे में कितनी बुद्धि है ? ।।४४०।।

राजा ने चतुर ज्योतिषी को बुलाया जो ज्योतिष का प्रमाण विचारता था । राजा ने प्रसन्न चित्त होकर उससे शकुन पूछा और कहा, हे विप्र शीघ्र ही लग्न रखो ।।४४१।।

खयर ∠खचर– विद्याधर

सीरघ ∠शीघ्र १ मूलपाठ सीरघ

[४४२–४४३]

कहइ जोइसिउ लाणी रीती, अपरंपर इन्हु बहुल परीति ।
हउ जाणउ जोइस को भेउ, तुम्ह को तूसइ देव अलेउ ।।
गोधूलक साहउ रोपियउ, भली बाट बिनु सोई कहिउ ।
चउरी रई घरे हरे बास, तोरण थावे पूर्ण (पुण्य)कलास ।।

अर्थ :—ज्योतिषी ने कहा, "लाणी की रीति के अनुसार इन दोनों में आपस में बहुत प्रीति होगी। मैं ज्योतिष का भेद जानता हूँ, तुम्हारे ऊपर अलेप (वीतराग) देव प्रसन्न हो गये हैं। ॥४४२॥

गोधूलि में विवाह निश्चित किया और जो अच्छा वार एवं दिन था वही कहा गया। गहरे हरे बांसों की चौरी रची गई तथा पूर्ण कलश की स्थापना करके तोरण (लगाये गये) ॥४४३॥

लाण – ग्रहण स्वीकार

जिणदत्त का चतुर्थ विवाह

[४४४–४४५]

बाजे पंच सबद गह गहे, ठाठा लोउ मिलि सबु रहे।
कण्ण दिण्णु केकिउ बइसारि, परिणाई विमलामइ नारि॥
नीलामणि मरगजमणि ऊज, पउमराइ[1] मणि अनुवइ दूज।
चंद्रकंति मुत्ताहल भणे, ते सहु दिण्ण दाइजो घणे॥

अर्थ :— जोर जोर से पाँच प्रकार के बाजे बजने लगे तथा लोग उठ कर एक स्थान पर मिले। उसे केकिइ (घोडे ?) पर बिठाकर कर्ण दिया (?) तथा विमलामती नारी जिनदत्त को व्याह दी ॥४४४॥

नीलमणि, मरकतमणि, चमकती हुई पद्मरागमणि तथा वैडूर्य, चंद्रकांत एवं जो मुक्ताफल कहे जाते हैं उन सबको उसने डायजे (दहेज) मे दिया ॥४४५॥

१ मूलपाठ "मउमराइ"

[४४६–४४७]

साहणु वाहणु देस कुछार, अर्थ द्रव्य अफौ भंडार।
छत्ता लंब चमर बहु आपि, चाउरंग बल दीनिउ थापि॥

चारों तिरिय बुलाई पास, पुणु विमाणु चडियो घण आस ।
घालिवि अरथु रयणु सबु लयो, उघइवि उवहुदत्त तिणु गयउ ।।

अर्थ :— राजा ने साधन, वाहन तथा कुछार देस दिये तथा अर्थ (द्रव्य) का तो भण्डार ही दिया । छत्र, लंब (दण्ड), चमर आदि बहुत सी वस्तुयें दीं तथा चतुरंगिणी सेना भी उसको (सौंप) दी ।।४४६।।

तब जिनदत्त ने चारों स्त्रियों को बुलाया और घनी आशा के साथ उन्हें विमान पर चढाया । उसमें अर्थ तथा रत्न आदि सब डाल लिये और तृप्त होकर वह सागरदत्त के पास गया । ।।४४७।।

आलंब ∠ आलम्ब – आश्रय, आधार

ऊघय ∠ आघय– तृप्त होना

[४४८–४४९]

उवहिदत्त अव दीठउ जाइ, गलिय नाक सडि गय पुण पाइ ।
दूसिउ अंगु पीव की गंधि, लागी पापी कहु कुठु व्याधि ।।
उवहिदत्त मरि नरयह गयउ, द्रव्य आपुणो जिणदत्तु लयउ ।
ले धणु चंपापुरि सो गयउ, पुणु घरि चलिवे को मनु भयउ[1] ।।

अर्थ :— जब उसने जाकर सागरदत्त को देखा तो उसका नाक गल गया था एवं पांव सड गया था । उसके सभी अंग दूषित हो गये थे तथा पीप की दुर्गन्धि आरही थी क्योंकि उस पापी को कुष्ठ रोग लग गया था ।।४४८।।

सागरदत्त मर कर नर्क गया । जिनदत्त ने अपना द्रव्य उससे ले लिया । वह धन लेकर चंपापुरी गया तथा अपने घर जाने की उसके मन में इच्छा हुई ।।४४९।।

१ मूलपाठ (भयौ)

[४५०-४५१]

(सम) द्यो राउ अंतेउर घणी, समदाउ विमल विमला सेठिणी ।
समदाउ नायर नयर को लोग, जिणदत्त च(लइ) करइ जणु सोगु ।।
लए तुरंग मोल दह लाख, मइगल छ – सहस्त्र करह असंख ।
सहस बत्तीस जोडरिण······चाउरंगु बलु बलु दीन पवाणु ।।

अर्थ :— (जिनदत्त को) राजा के अन्तःपुर ने सघन रूप से विदा दी । विमल सेठ एवं विमला सेठाणी ने भी उसे विदा दी । नगर निवासियों ने विदा दी तथा (ज्योंही) जिनदत्त चला लोग शोक करने लगे । ।।४५०।।

उसने दश लाख के घोड़े, छह हजार मदगलित हाथी तथा असंख्य ऊँट मोल लिये । बत्तीस हजार ....। इस प्रकार उसने अपनी शक्ति प्रमाण चतुरंगिनी सेना जोड़ ली (इकट्ठी करली) ।।४५१।।

नायर – नागर

[४५२-४५३]

पाइक धाणुक हइ दह कोडि, पयदल चलिउ रायसिंहु जोडि ।
छत्तधारि बुसि गिरि जिन्हु पाहि, ते असंख रावत दल माहि ।।
जिणदत्त चलतहि कंपइ धरणि, उत्थइ धूलि न सूझइ तरणी ।
हाकि निसाण जोडि जणु हरण, अपुनइ देस पलाणे घणे ।।

अर्थ :— पैदल एवं धनुर्धारी दश करोड़ थे । रायसिंह कवि कहता है, वह सेना जोड़ कर पैदल चला । जिनके छत्रधारी राजा पांवों में गिरते थे, ऐसे रावत दल में असंख्य राजा थे ।।४५२।।

जिनदत्त के चलते ही पृथ्वी कांपने लगी । इतनी धूल उठने लगी कि सूर्य नहीं दिखने लगा । जब समस्त निशानों को जोड़ कर उन पर चोट की गई तो बहुत से स्वतः ही अपने देश भाग गये ।।४५३।।

[४५४-४५५]

कउणइ गरहिउ उठवहि थाट, क(उणइ) राय दिखालहि वाट ।
दूसहु राउ ण को अंगवइ, नामु कहइ जइनी चक्कवइ ।।
भाजहि नयर देस विमल......, पर चक भउ नवि असिऊल सहहि ।
चाले कटक किए बहु रोल, अरिमंडल मणि हुल्ल कलोल ।।

अर्थ :—उसके थाट (वैभव) के आगे कौन राजा गर्व कर सकता था ? तथा कौन राजा उसे मार्ग दर्शन करा सकता था ? उसके दुस्सह तेज को कोई भी सहन नहीं कर सकता था, और उसे जैन चक्रवर्ति का नाम लेकर कहने लगे थे ।।४५४।।

नगर एवं देश के लोग भागने लगे तथा शत्रु भी उसकी तलवारों का वार नहीं सहन कर सकते थे । उसकी सेना भारी शोर करती हुई आगे बढी जिससे शत्रुमंडल के मनमें वह शोर हिल गया (व्याप्त हो गया) । ।।४५५।।

[४५६-४५७]

ठा ठा करत जोडि नीसरइ, जाइति मगध देश पइसरहि ।
परिजा भाजि गई जहि राउ, वेढिउ सो वसंतपुर ठाउ ।।
परिजा (भाजी) गढह महंत, लागी पउलि तिऊ भेजंत ।
भयउ ढोकुलि अरु गोफणी, रचे मारु कहु सीसे घणी ।।

अर्थ :—ठाठा करती हुई सेना चली और वह मगध देश में पहुंच गई । सारा बसंतपुर नगर सेना से वेष्टित होगया । प्रजा (भागकर) बडे किले में चली गई । पौलि लग गई (बंद हो गई) और यंत्र खडे हो गये । ढीकुली (ढेकुली) और गोफणी हुए (लगाए गए) और मार करने के लिए अनेकानेक शिरस्त्राण रचे गये ।।५६-४५७।।

वेढ ∠ वेष्टिय – आच्छादित करना ।

पौलि ∠ प्रतोली – मुख्य द्वार।
ढोकुली–गोफरणी – पत्थर फेंकने के यंत्र।
सीस – शीर्षक – शिरस्त्राण।

[४५८–४५६]

कोट पा......(उ)तंग अपार, परिखा पूरिय जलह अपार।
गढह सेष परिजा आकुली, वाडा लेहि छत्तीसह कुली॥
चंदसिखर (बो)लइ जु पचारि, राखहु गढ खांडे की धार।
जब लगु मोहि पासु दोइ बांह, को चांपिहइ कोट की छांह॥

अर्थ :—कोट के (पास?) ऊंची प्राकार थी। परिखा (खाई) को अपार जल से भर दिया गया। शेष प्रजा गढ में व्याकुल थी और छत्तीसों कुली (जाति) के लोग वाड़ा ले रहे थे (अंदर में घरों को बंद कर रहे थे या सुरक्षित थे)॥४५८॥

(वहां का राजा) चंद्रशेखर ललकार कर कहने लगा। गढ की रक्षा भी तलवार की धार पर करो। जब तक मेरे पास दो हाथ हैं तब तक कोई (परकोटा–किला) की छाया पर भी पैर नहीं रख सकता है।॥४५६॥

[४६०–४६१]

पूर्व प(उलि) राइ सइ राल, परिग्गहु भड लश्रोहि असंल।
दक्षिण पउलि चडइ सुहणालु, जो परिमंडल वल लय कालु॥
(उत)र पउलि निकुंभ चंदेल, जे अगिलेह ए मामहि गेल।
पछिन दिस जाय वभड वर्डाहि, पडतव जहुहव .... रहि॥

(चारों दिशाओं में मोर्चा बन्दी की गई) पूर्व की पौल की रक्षा

राजा ने स्वयं अपने ऊपर ली, जिस पर असंख्य क्षत्रियों का भृत्य वर्ग नियुक्त हुआ। दक्षिण पौल के ऊपर सुहनालें (तोपें) चढने लगी, जो शत्रु-सेना-मंडल के लिए क्षय-काल स्वरुप थी। ॥४६०॥

उत्तर पौल पर निकुंभ चंदेल खड़े हुये जो अन्य को मार्ग देने को तैयार न थे। पच्छिम दिशा की ओर यादव भट पड़ रहे (?) थे जो कि वज्र पड़ने पर भी [वहीं जमे] रहते थे ॥४६१॥

[४६२–४६४]

अवरु असंखइ बहुत्तइ मिलिय, रखहि गढु छत्तीसउ कुलीय।
चंदसिखिर किउ मंतु तुरंतु, घालि (दूत) किन पूछइ बातु॥
मंत्री महामंत्र हकराइ, उसरि राजा बात कराइ।
अहो मंत तू भेटहि जाइ, किह कारणि ग……उ आइ॥
पाहडु लयउ रयणु भरिथालु, भेटणि चालिउ दूतु सुहिणालु।
अवरु पंचदश लइय हकारि, जिणदत्तह कटक मझारि॥

अर्थः— और भी बहुतेरे असंख्य (योद्धा) मिल गये और छत्तीसों कुली (जाति) गढ की रक्षा करने लगी। शीघ्र ही चन्द्रशेखर ने मंत्रणा की। (उन्होंने कहा) दूत भेजकर क्यों न पूछो कि क्या बात है? ॥४६२॥

राजा ने मंत्रियों तथा महामंत्रीयों को बुलाया, तथा अवसर (राज-सभा) में बात कराई। (राजा ने मंत्री से कहा) "अहो मंत्री, उससे जाकर भेंट करो और पूछो कि किस कारण वह आया है?" ॥४६३॥

पाहुड (उपहार) के रूप में रत्नों को थाल में भर कर और वह सुहिणाल दूत भेंट करने के लिये चला। पन्द्रह जनों को और बुला लिया वह जिनदत्त की सेना में चला गया ॥४६४॥

उसर ∠ ओसर ∠ अवसर – राजसभा

पाहुउ ∠ प्राभृत –उपहार

चन्द्रशेखर राजा के दूत की जिणदत्त से भेंट

[४६५–४६६]

जाइ पहुत्तउ सिंह उवारि, हाकिउ कणइ दंड परिहारि ।
को तुम पूछइ कहु तुरंतु, जइसइ राउ जणावउ वत्ति ।।
इहा जु चंदुसिखरु भडराउ, तुहि वरु मागइ भेंट पसाइ ।
सीलवंत गुण गणह संजुत्त, हउ तहु केरउ आयउ दूतु ।।

अर्थ :—वह सिंह - द्वार पर जाकर पहुँचा तो प्रतिहारी ने स्वर्ण-दंड हाँका (हिलाया) । उसने दूत से पूछा, "तुम कौन हो शीघ्र बताओ जिससे मैं राजा के पास जाकर बात बताऊँ । ।।४६५।।

(दूत ने कहा), " यहाँ जो चंद्रशेखर नामका भट (योद्धा) राजा है, वह आपसे भेंट की कृपा चाहता है । वह शीलवान एवं गुणों से संयुक्त है, मैं उसका दूत आया हूँ ।।४६६।।

[४६७–४६८]

भीतरि बात कहहि पडिहार, सिरघ राइ जणावइ सार ।
पाहुड ल बहु रयण अहइ, पूछिउ चंदसिखर बहु कहइ ।।
आणि भिटावहि बोलिउ राउ, गउ पडिहारु दूतु के ठाउ ।
राजा तुम्ह कउ कियउ पसाउ, भीतरि दूतु अवधारहु पाउ ।

अर्थ :— प्रतिहारी ने भीतर (जाकर) बात कही तथा शीघ्र राजा को बात बता दी । वह बहुतेरे रत्न उपहार-स्वरुप लिए हुए है, और मैंने पूछा तो वह अपने को चंद्रशेखर राजा का (दूत) बतलाता है ।।४६७।।

राजा (जिनदत्त) ने कहा, "उसे लाकर मिलाग्रो। प्रतिहार दूत के स्थान पर गया और कहा, "राजा ने तुम पर कृपा की है। हे दूत, तुम भीतर पधारो ।।४६८।।

पाहुड ∠ – उपहार। सीरघ ∠ शीघ्र

[४६९]

भीतरि दूतु गयउ सुहिणालु, आगिउ धरिउ रयण भरि थालु
दीठउ दूतु राउ तिहि ठाउ, देवि सीसु धरि लगिउ पाउ ।।

अर्थ :—सहिणाल (नाम का वह) दूत भीतर गया और (जिनदत्त के) आगे रत्नों का भरा हुआ थाल उसने रख दिया। दूत ने राजा को वहाँ देखा तो उसे विश्वास दिलाकर उसने (राजा के) चरणों को स्पर्श किया ।।४६९।।

[४७०]

वस्तु बंध

दूतु पभणइ णिसुण नरनाह।
को परिजा गंजियइ, काइ देव घर पलइ कीजइ।
काइ नयर चउदिसहि दिस रहिउ, कासु उवरि देव कोहु कीजइ ।।
तुम समेरणि अभिडत, सा सीमा अम्हि जिण हीण।
भणइ दूत तए नरनाह, फुडु लेउ दंडु हडु लोणु ।।

दूत कहने लगा, "हे नरनाथ. सुनो। हे देव, आप क्यों प्रजा को नष्ट कर रहे हैं और किस कारण घर में प्रलय कर रहे हैं ? किस कारण नगर के चारों ओर आपने घेरा डाला है ? और किस के ऊपर हे देव! आप क्रोध कर रहे हैं ? यदि हम आपसे लडें तो हे स्वामी ! हम जैन धर्म से विमुख होंगे। दूत ने कहा हे नर नाथ ! इसलिये में स्फुट रुप से स्पष्ट दंड लेकर घर चलिये। ।।४७०।।

पलइ ∠ प्रलय। उवरि–ऊपर

[४७१–४७२]

भणइ दूत णरणाह सुणेहि, परजा बंध म अपजस लेहि ।
महि सिहु झूझु समरि हुइ काहि, लेहि दंडु सामिय घरि जाहि ।।
ण लिउ दंड णु देस कुठारु, ना लिउ सहणु अरथु भंडारु ।
तुम्हरइ णयरु जि वणिवरु आह, सो मोहि देउ जीउदेव साहु ।।

अर्थ :— दूत ने कहा, "हे नरनाथ ! सुनिये प्रजा को बांध कर अपयश न लीजिए । मुझ से युद्ध में लडने से क्या होगा । हे स्वामी ! (आप) दंड लेकर घर जाइए ।।४७१।।

(जिनदत्त ने कहा,) "मैं दंड नहीं लूंगा न देश कोठार (खजाना) लूंगा और न मैं सहन तथा अर्थ भण्डार लूंगा । तुम्हारे ही नगर में जो वणिकवर है उस जीवदेव साहु को मुझे देदो" ।।४७२।।

[४७३–४७४]

धम्मनिहाणु जीवदेउ सेठि, अरु नित नवइ पंच परमेठि ।
नयरहि मंडणु सुद्ध सहाउ, परुतसु जियत न अप्पइ राउ ।।
भणइ राउ किम पहिले चऊ, आजि[1] जु नयरहि कुइ लावऊ ।
आजु ण सेठि आउ मो ठाउ, कल्हि नयरि करु बांधउ राउ ।।

अर्थ :— (दूत ने कहा) "वह जीवदेव सेठ धर्म निधान है तथा नित्य प्रति वह पंच परमेष्ठि को नमस्कार करता है । वह नगर का मंडन और शुद्ध स्वभाव का है पर उसे राजा जीते जी नहीं अर्पित करेगा । ।।४७३।।

राजा (जिनदत्त) ने कहा, फिर पहिले कैसे कहा ? । आज उसे नगर मे कोई लाओ । यदि आज सेठ मेरे स्थान पर नहीं आया तो कल नगरी और राजा को बांधूगा ।।४७४।।

नयरी/नगरी १ मूलपाठ 'काजि'

[४७५-४७६]

वाहुडि दूतु बोलइ ए वयण, निसुणहि चंद सिखर भड रयण ।
अकहा कहा किम कहियइ बेठि, माँगइ देव जीवदे सेठि ॥
बोल चंदसिखिर भड साहु, अरे दूत किन गई तुह जीह ।
वरु किनु बांधइ बाल गोपाल, सेठि आफि जीवउ के काल ॥

अर्थ :— वह दूत वापिस लौट कर यह बचन बोला, "हे भटरत्न चन्द्रशेखर ! सुनो । यहाँ बैठ कर न कहने योग्य बात क्यों कहते हो ? वह हे देव ! जीवदेव सेठ को माँग रहा है । ॥४७५॥

भटसाधु चन्द्रशेखर बोला । अरे दूत ! तेरी जीभ क्यों नहीं गई ! वह भले ही (मेरे) बाल गोपाल को क्यों नहीं बाँधले, सेठ को देकर कितने समय तक मैं जीऊँगा ? ॥४७६॥

वाहुड ∠ व्याघुट – लौटना, वापस होना

[४७७-४७८]

लापड दूतु कढाउ खालु, अरु वाहु तु तरु फाडउ गाल ।
वज्र पडउ तो दूतु काल, आफि सेठि जीवउ के काल ॥
वरु लेउ साहणु वाहणु झाडि, वरु किनु बंधइ वइ मुहि धाडि ।
वरु किनु नयरि करइ वइ कालु, आफि सेठि जीवउ कइ काल ॥

अर्थ :— " हे लंपट दूत मैं तेरी खाल निकलवा लूँगा और भुजाओं से तेरे गाल फाड दूँगा । रे दूत ! तुझ पर काल वज्र पडे; सेठ को देकर मैं कितने समय तक जीऊँगा ? ॥४७७॥

भले ही मेरे समस्त साहन-वाहन लेलो, भले ही क्यों न मुँह में ढाढा देकर मुझे बंदी कर लो, भले ही क्यों न नगरी को समाप्त कर दो, पर सेठ को अर्पित कर मैं कितने समय तक जीऊँगा ? ॥४७८॥

लापड/_लंपट। के /_कियत– कितना

[४७६–४८०]

साचउ चंद सिखर बड लवइ, वरु किनु नयरहं कुइला बवइ ।
वरु किनु देसु निरालउ जाल, सेठि अफि जीवइ कइ काल ।
....ल रहे सेठ जइ जाण, नेउ सेठिणि सिहु कहइ नियाण ।
रायण्हु मरणु ठाणु छइ भयउ,...कारणु तिन्ह रणु माडियउ ।।

अर्थ:—चन्द्रशेखर बहुत सत्य कह रहा था, भले ही क्यों न नगर में कुचला बोदे और भले ही क्यों न देश मात्र को जला दे, सेठ को देकर मैं कितने समय तक जीऊँगा ! ।।४७६।।

जब यह सेठ को ज्ञात हुआ......तब वह सेठानी से निदान कहने लगा। "राजा का भी मरने का समय आगया है, कारण यह है कि उन्होंने (शत्रुने) युद्ध की तैय्यारी की है" ।।४८०।।

लव /_ लय – कहना, बोलना,

जीवदेव जिनदत्त मिलन

[४८१–४८२]

पुणु जीवदेउ कहत हियइ ए बयण, पूत सोगु हम फूटे णयण ।
(सुत) विदेसु हमु आयो मरण, सेठिण देइऐ कउ करणु ।।
भणय सेठि रे बइय निकिठ, एक बार जिणदत्त न दिठ ।
तवु सेठिणि समुझावण लियउ, करि अवसाण णाह दिठ हियउ ।।

अर्थ :— फिर जीवदेव अपने हृदय में यह वचन कहने लगा, "पुत्र के शोक में हमारे नयन फूट गये हैं। पुत्र जब विदेश में है तब हमारी मृत्यु आई है. सेठानी देखो अब क्या करना चाहिये" । ।।४८१।।

सेठ ने (फिर) कहा, "दैव ही बड़ा निकृष्ट है, उसने एक बार भी जिनदत्त को नहीं दिखाया। तब सेठानी उसको समझाने लगी "हे नाथ अवसान के समय हृदय को दृढ करो ॥४८२॥

[४८३–४८४]

तूटउ इ...... सामिय दुह तणउ, अवसु निवेविउं जिउ आपुणउ ।
अव जिण सरणु अउर नहीं कोइ, जो...वइ सो सामिय होइ ॥
फुरइ णयणु अरु चित्तु गहगहइ, जाणउ पूतु आगमणु कहइ ।
पर (इह) संकट दीसइ सोइ, जो भावइ सो सामी होइ ॥

अर्थ :— "हे स्वामी (अपने दोनों) का दुख टूटा हुआ है (दूर हुआ-चाहता है) मैं अपना जी (विचार) अवश्य निवेदन करुंगी। अब तो जिनेन्द्र भगवान के अतिरिक्त कोई शरण नहीं है। हे स्वामी! जो (भगवान) ने देखा है वही होगा" ॥४८३॥

"आँखें फडकती है तथा चित गदगद (पुलकित) हो रहा, मानों यह सब पुत्र-आगमन कह रहे हों। किन्तु सामने वह संकट दिखता है, इसलिये जैसा परमात्मा को स्वीकार होगा, हे स्वामी! वैसा ही होगा ॥४८४॥

[४८५–४८६]

हमु कारणि ण मारवइ लोगु, मरउ पूतु न घरि सोगु ।
इय चिंतेवि दुविह संज्ञासु, ले विणु चालिय पर बल पासु ॥
सेठिहि चलित नु ...... इ राउ, नयर लोगु चित भयउ विसमाउ ।
सेठि संघात बहुत जण चलहिं, पुणु जिणदत्त कटक पइसरइ ॥

अर्थ :— "हमारे कारण लोगों को वे मत (न) मारें। (क्योंकि-जिसका) पुत्र मरा (उसी के घर में शोक हुआ। इस प्रकार चिन्ता

करते हुये दोनों दुविधा में पड़े। शत्रु की सेना के पास (लिए जाने) के लिए चले ॥४८५॥

सेठ के चलते समय राजा......नगर के लोगों के भी चित में विस्मय (दुख) हुआ। सेठ के साथ बहुत से व्यक्ति चले और फिर वे जिनदत्त की सेना में प्रविष्ट हुए ॥४८६॥

मूलपाठ 'माणरवइ"

[४८७-४८८]

सावधाण किउ दिढु चितु सेठि, लागिउ सुमरणि मणु परमेठि ।
इहि (उव?) सग्गहि जइ उवरहि, तउ आहारू तवह कि करहं ॥
पइठिउ कटकह वहू जण सहिउ, ...णइ जाइ राइ सिउ कहिउ ।
तउ जिणदत्त भणइ मुहु जोइ, बहुले मिलियउ आवइ...... ॥

अर्थ :—सेठ ने अपने चित्त को सावधान एवं दृढ किया तथा पंच परमेष्ठि का मन में स्मरण करने लगा। (उसने संकल्प किया,) "यदि इस उपसर्ग से मैं उबर जाऊँगा तो मैं किसी तपस्वी को अवश्य अहार दूँगा" ॥४८७॥

बहुत से व्यक्तियों के साथ वह सेना में गया और वहाँ जाकर राजा से निवेदन किया। फिर जिनदत्त उसका मुख देखकर कहने लगा, "बहुत से व्यक्ति मिलकर मिलने आए हैं" ॥४८८॥

[४८९-४९०]

जो हइ सेठि धम्मु को निलउ, सो यहु जीवदेउ कुलतिलउ ।
भणइ राउ महु जी वत काइ, बापु माइ जिहि आवतु पाइ ॥
नेत पटोली पंथ पसारि, आवइ सेठि अवरू तहि नारि ।
सिंहासण दुइ रयणह जडिय, वइसइ आणि सेठि कहु धरिय ॥

अर्थ :—"जो सेठ धर्म का निलय है वह जीवदेव, जो कुल का तिलक है, यही है। राजा ने कहा, "मेरे जीते होने से क्या हुआ यदि मेरे मां बाप पैरों (पैदल) आरहे हैं ?" ॥४८९॥

मार्ग में उसने नेत्र तथा पटोली (दो प्रकार के रेशमी वस्त्र) फैलाये, क्योंकि वहां सेठ तथा उसकी स्त्री आ रही थी। रत्नों से जड़े हुए दो सिंहासन भी उसने सेठ (तथा सेठानी) के बैठने के लिए ला रक्खे ॥४९०॥

[४९१–४९२]

जाइ पहूते राइ अथाण, बोलत बोल न कांणहि काण।
ता जिनदत्तह पुछण लए, काहे सेठि मउण लइ रहे ॥
इह परदेश णिरंजन जाणु, अरुसन सनु हुइ लयउ अवसाणु ॥
इक सुव दुख अवरू तुम्ह मांगियउ, वसगु जाणि मउणवउ लियउ।

अर्थ :—वे राजा के आस्थान (सभा मंडप) पर पहुँचे किन्तु मर्यादा ही मर्यादा में (रहने के कारण) वे कुछ नहीं बोले। इससे जिनदत्त पूछने लगा "हे सेठ! तुमने मौन क्यों ले रखा है" ? ॥४९१॥

सेठने कहा– इसे निर्जन प्रदेश जानो और सनसन (सन्नाटा) होने का कारण मैंने अवसान ले लिया है। एक सुत का दुःख है और (दूसरे) तुमने हमें माँग भेजा है, अतः उपसर्ग समझ कर हमने मौन व्रत ले लिया है ॥४९२॥

अथाण ∠ आस्थान – आस्थान – मंडप, अथाई।

[४९३–४९४]

भणइ राउमति सेठि डराहि, तुम्ह पोडे हनु काजु ण आहि।
जहि कइ हियइ पंच परमेठि, ते तुम्ह आहि जीवदो सेठि ॥

तवहि विसूरिउ बोलइ सेठि, हउ आराहउ निरु परमेठि, ।
निछइ देउँ देइ महि मुनिउ, अजरु अमरु जिण आगमु सुणिउ ।।

अर्थ :—राजा कहने लगा, हे सेठ तुम डरो मत । तुमको पीड़ा (दुःख) देने का हमारा कोई कार्य (प्रयोजन) नहीं है । जिसके हृदय में पंच परमेष्ठि हैं, जीवदेव सेठ तुम ऐसे हो ।।४६३।।

तब सेठ बिसूर कर (चिंता रहित होकर) बोला, "मैं तो निश्चित रूप सेपंच परमेष्ठि की आराधना करता हूँ । निश्चय ही मैं पृथ्वी के मुनियों को देय (अहार) देता रहा हूँ और अजर-अमर जिनागम है, उन्हें मैं सुनता रहा हूँ ।।४६४।।

[४६५–४६६]

राजनु पूतु गयउ पर तीर, तहि दुख सूकउ सयल सरीर, ।
तुम्ह बाधे हमु नाही दोषु, दुख वढे हमु पाउ मोष ।।
तवहि राउ बोलत हइ जाणि, एते कटक नेहु पर जाणि ।
मोहि नखतु जइ राजनु होइ, इहं होइ तरु आवइ सोइ ।।

अर्थ — "हे राजन, मेरा पुत्र विदेश चला गया; उसी के दुःख से सारा शरीर सूख गया । तुम यदि मुझे बंदी करो तो इसमें हमें कोइ दुःख नहीं होगा (हमारा कुछ बिगडता नहीं है) क्योंकि दुःख की वृद्धि से तो हमें मोक्ष (छुटकारा) मिल जावेगा ।।४६५।।

तब राजा ने (यह सब) जानकर कहा, इस सारी सेना से शत्रु को जान लो । 'यदि मेरे समान कोई राजा है, तो वह नर श्रेष्ठ यहाँ क्यों नहीं आता है । ।।४६६।।

[४६७–४६८]

तउ सेठिणि बोलिउ सतभाउ, जइ पहु अवहोइ पसाउ ।
किछु परि जाणउ देउ निरुत, तुम्ह अइसो छो म्हारउ पूतु ।।

जिणदत्त गहिवरु आयो हियउ, दीठउ माइ वापु विलखियउ ।
उठित पीय लोटणी कराइ, चारउ तिरिया लागहि पाइ ।।

अर्थ :—तब सेठानी ने सत्य भाव से कहा, "यदि, हे प्रभु ! अब (आपकी) कृपा हो जाए । तो हे देव! हम कुछ निरुत जाने (कहें) क्योंकि तुम्हारे ही ऐसा हमारा पुत्र था ।।४९७।।

जिनदत्त का हृदय पुलकित हो उठा और माँ बाप को देखकर वह रो पड़ा । वह उठकर उनके पाँवों में लोटने लगा तथा उसकी चारों स्त्रियां भी उनके चरणों में लग गई ।।४९८।।

[४९९–५००]

जणणी चलणु णमिउ अठंगु, पाय पखालित परिसिउ अंगु ।
गहविर बोलइ साहस धीरु, अब महु सुद्धउ भयउ सरीर ।,
सेठिणि गहवरि आयउ हियउ, पुणु आपणउ उंछगह लियउ ।
जायो पूतु आज सुपियार, खीर पवाह बहे थण हार ।।

अर्थ :—उसने माता के चरणों में साष्टांग नमस्कार किया तथा पाँवों को पखार (धो) कर (उसके) अंगो का स्पर्श किया । साहसी जीवदेव बोला, "अब मेरा शरीर शुद्ध हो गया ।।४९९।।

सेठानी का हृदय भी भर आया, फिर उसने उसे अपनी गोद में ले लिया और कहा हे प्रिय! मानों तुम आज ही पैदा हुये हो और यह कहते हुये उसके भारी स्तनों से दूध की धारा बह निकली ।।५००।।

पियार ∠ प्रिय + तर ।

[५०१–५०२]

मेरे जिणदत्त पूरिय आस, तुझ विण पूत भई जु णिरास ।
खण इकु वापहि ना वीसरइ, अनु दिनु जिणदत्तु जिणदत्तु करइ ।।

छाडे वापहृ भोग विलास, पान फूल भोजन की आस।
रातहि णीद न दिवसह भूख, तुम्ह विणु पूत सहे बहु दुख ।।

अर्थ :— वह कहने लगी, हे जिनदत्त ! तुम मिल गये और तुमने मेरी आशाओं को पूरा कर दिया। हे पुत्र ! तुम्हारे बिना मैं निराश हो गई थी एक क्षण भी तुम्हारा बाप (तुम्हारा-स्मरण) नहीं भूलता था। वे प्रति दिन जिनदत्त २ करते रहते थे ।। ५०१ ।।

तुम्हारे बाप ने सब भोग विलास छोड़ दिये थे तथा उन्होंने पान, पुष्प एव भोजन की आशा छोड़ रक्खी थी। न रात को नींद आती थी न दिन में भूख। हे पुत्र! तुम्हारे बिना हमने बहुत दुःख सहे ।।५०२।।

[५०३-५०४]

भए वधाए हाउ निसाण, चंदसिखर आए अगवाण।
उछली गुडी सलहहि भाट, नेत पटोले छाई हाट ।।
इम आणंदे गए अवास, इंछित मानहि भोग विलास।
बहुल दाण चउ संघ कराइ, दुही दीण सब रहे अघाइ ।।

बधावे हुए और धौसो (धौंसा) पर चोट पड़ी तथा राजा चन्द्र-शेखर उसकी आगवानी करने आए। गुडी उछली तथा भाटों ने स्तुति की बाजार नेत्र एवं पटोर से सजाये गये ।।५०३।।

इस प्रकार आनन्दित हो कर जिनदत्त अपने निवास स्थान पर गए तथा मनवांछित भोग विलास करने लगे। चारों संघों को बहुत सा दान करने लगे। तथा दीन और दुखी लोग (उनके दानों से) तृप्त होकर रहने लगे ।।५०४।।

नेत ∠ नेत्र – एक प्रकार का रेशमी कपडा
पटोर ∠ पटकूल– एक प्रकार का रेशमी कपडा

गृहस्थ जीवन

[५०५-५०६]

चंदसिखर अरु जिणदत्त राय, राजु करहं बसंतपुर ठाउ ।
एक चित्त (दुव)[1] रहिय सरीर, परिजा पालहि दोउ वीर ॥
विमलमती सुउ विमलु उपण्णु, एकु सुदत्तु जयदत्तु पसण्णु ।
सुप्पहु मइमेहा धुउसती, ए जाए हइ सिरियामती ॥

अर्थः — राजा चंद्रशेखर एवं जिनदत्त दोनों बसंतपुर में राज्य करने लगे । दोनों एक चित्त दो शरीर होकर रहने लगे और दोनों वीर प्रजा का पालन करने लगे ॥५०५॥

विमलमती से सुन्दर पुत्र उत्पन हुए: एक सुदत्त एवं दूसरा जयदत्त तथा श्रीमती से सुप्रभ, मतिमेघ एवं ध्रुवसती उत्पन हुए ॥५०६॥

१ मूल पाठ—"देख"

[५०७-५०८]

करहि राजु भोगहि परठइ, नीत पणीत सतीण भए ।
जीवंजसा जीवदेउ साहु, तउ करि लहिउ सम्मवर ठाउ ॥
विज्जाहरि आयउ सुक्केउ, अरु जयकेतु सु गरुडकेउ ।
गुणमित्तु जयमित्तु मनभावती, दविणमित्तु भयो विमलासती ॥

अर्थ :— (जिनदत्त) राज्य करते हुए भोगों में प्रस्थापित हो गये । और नित्य प्रति उन में सतृष्ण होते गये । (उसके माता एवं पिता) जीवंजसा और जीवदेव साहु ने तप करके श्रेष्ट स्वर्ग में स्थान प्राप्त किया ॥५०७॥

विद्याधरी स्त्री से सुकेतु, जयकेतु, एवं गरुडकेतु उत्पन्न हुये तथा

विमलासती (शृंगारमती) से गुणमित्र, जयमित्र, मनमावती तथा दविणमित्र, उत्पन्न हुये ।।५०८।।

[५०९-५१०]

वणिवरु कुलि जिणदत्त उप्पण, पाछे राजु भयो परिपुण्ण ।
भवियहु कउण अचंभो लोइ, पुन्न फलहु किं किं नउ होउ ।।
जं जं पुहमिहि दीसइ चंगु, तं तं धम्महु केरउ अंगु ।
जं जं किं पि असुंदरु हवइ, तं तं पावहु फलु जिणु कहइ ।।

अर्थ :— जिनदत्त ने वणिक् के घर जन्म लिया लेकिन पीछे वह राज्य में परिपूर्ण हुआ । लेकिन हे भविको! इसमें कौनसा आश्चर्य हैं? पुण्य से क्या क्या नहीं होता (कौन कौन से फल नहीं प्राप्त होते) ? ।।५०९।।

जो जो पृथ्वी पर सुन्दर दिखता है, वह वह धर्म का अंग है, और जो जो कुछ भी असुन्दर होता है, वह वह पाप का फल है— ऐसा जिनेन्द्र भगवान् का कथन है ।।५१०।।

[५११-५१२]

जिणवरु धम्मु निछ्रम्मु अभोइ, सग्ग मोख कहु कारणु होइ ।
राजभोग किर केती माति, निछउ पालहु चइवि भराति ।।
उक्क वडण वइराइ निमित्तु, लहिवि भोय संसारहु चित्तु ।
राजु देवि जिणदत्तहु सव्वु, चंदसिखरु तपु लाग्यो भव्वु ।।

अर्थ :— जिनेन्द्र भगवान का धर्म निश्छद्र और अभोग (भोग रहित) है इसलिये स्वर्ग मोक्ष का भी कारण है । राज्य भोग की कितनी ही सीमा हो (कितना ही परिमाण हो) निश्चय ही भ्रांति का त्याग कर (उस धर्म का) पालन करो ।।५११।।

उल्कापात के निमित्त से भोग ग्रहण को संसार की स्थिति को बढ़ाने वाला जानकर उसे वैराग्य हुआ तथा जिनदत्त को समस्त राज्य देकर (राजा) चंद्रशेखर भव्य तप करने लगा ।।५१२।।

निछम्म ∠ णिच्छम ∠ निश्छद्मन – निष्टकपट,
किर ∠ किल । चइ ∠त्यज – त्याग करना माया रहित
वइराइ – विराग । उक्क ∠ (उल्क) –लोभ, सुखेच्छा वासना
वडण ∠ पतन । भोय=भोग

मुनि वंदना के लिये प्रस्थान

[५१३–५१४]

पाछइ राजु करइ जिणदत्तु, परिवारह सो हियउ महंतु ।
तहि बइठे जहि बाल गोपाल, आइत बात कहा वणवाल ।।
देव समाहिगुप्त मुनि आइ, सीलवंतु जसु सुद्ध सहाउ ।
फूली फली वणसई देव, णर सुर खयर करहि जसु सेव ।।

अर्थः — पीछे अकेला जिनदत्त राज करने लगा तथा अपने परिवार के सहृदय से महान हो गया । एक दिन जब वह बाल गोपाल के साथ बैठा हुआ था तो वनपाल ने आकर यह बात कही ।।५१३।।

"हे देव ! एक समाधिगुप्त नामके मुनि आए हुए हैं जो शीलवंत हैं और जिनका शुद्ध स्वभाव हैं । उनके कारण वनस्पति फल फूल गई है तथा जिसकी सेवा मनुष्य, देव और विद्याधर करते हैं ।।५१४।।

खयर ∠ खचर – आकाशगामी, विद्याधर ।

[५१५–५१६]

जिणदत्त सुणिउ गुरहं जवु णाउ, सात पाय धरि परिणामु ।
पुणि आणंद निसाण दिवाइ, सिउ परिवारह वंदणु जाइ ।।

जाइवि दीठे मुणिवर पाइ, करि तिसुधि णिरु लागउ पाइ ।।
तुम्हहिन वंदन सक्कइ कोइ, जरा मीचु तुम्हि घाली खोइ ।।

अर्थ :— जिनदत्त ने जब यह सुना और जान लिया कि (उसके) गुरू (आए) हैं। उसने अंततः सात पैंड चलकर उन्हें नमस्कार किया। फिर आनन्द के धौंसे वजवा कर परिवार सहित वह (उनके पास) वंदना के लिये गया ।।५१५।।

उसने वहाँ जाकर मुनि के चरणों के दर्शन किये तथा (मन,वचन, काय) तीन प्रकार की शुद्धि कर उनके चरणों में वह निश्चित रूप से पड़ गया और उसने कहा, "आपको वंदना कोई नहीं कर सकता क्योंकि वृद्धावस्था एवं मृत्यु तुमने खो डाली है" ।।५१६।।

तत्वोपदेश

[५१७–५१८]

पूछइ जिणदत्तु जिणवर धम्मु, कह (हुमु) णीसरु गालिउ कम्मु ।
देव एकु अरहंतु मुणेहु, दया धम्मु बहु भेय सुणेहि ।।
गुर निगंथु संगुम......चतु, मज्ज मंसु महु चइ निरभंतु ।
पंचुंबर निसि भोज चइज्जु, लवणिउ अणगालिउ जलसज्जु ।।

(फिर उनसे) जिनदत्त ने जिनेन्द्र भगवान के धर्म के विषय में पूछा। मुनीश्वर ने कहा "कर्मों को नष्ट करो। एक अरिहंत देव के मानो तथा दया एवं धर्म के भेद को सुनो"।

मुनि ने कहा निग्रंथ गुरु की सेवा करो। मदिरा मांस मधु को निर्भ्रांति त्यागो। पांच उदम्बर तथा रात्रि को भोजन त्यागो। नवनीत तथा बिना छने हुए जलका प्रयोग त्यागो।

गालिअ ∠ गालित—छना हुआ
निगंथ ∠ निर्ग्रन्थ —परिग्रहहीन, मुनि

[५१९–५२०]

अणुव्वय पंच गुणव्वय तिन्नि, चउ सिक्खव्वउ धरि चउवण्ण ।
अंतयाल सल्लेहणु होइ, ए सावय वय अक्खहि जोइ ।।
पुणु अणयार धम्म बहु भेय, कहिउ मुणिंद भवमल छेउ ।
सत्त तच्च णय णव पद दव्व, पंचकाय तुह जाणहि भव्व ।।

अर्थ :— पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत तथा चार शिक्षाव्रत (इन बारह-व्रतो को) चारों वर्ण (ब्राह्मण क्षत्री, वैश्य और शूद्र) धारण करे तथा अन्त समय सल्लेखना धारण करे, ये श्रावक के व्रत कहलाते हैं ।।५१९।।

फिर मुनि ने भव-मल को छेदने वाले अनागार (यति) धर्म के अनेक भेदों को कहा । हे भव्य । सात तत्व, (सात) नय, नव पदार्थ, (छह) द्रव्य और पंचास्तिकाय को तुम जानो ।।५२०।।

[५२१–५२२]

बारह भावण कहिय बियारि, संजमु नेमु धम्मु तउ चारि ।
अब्भंतरि परमप्पा बुज्झि, उत्तम ज्झाणु कहिउ मइ तुज्झि ।।
पुणु पयत्थु पिंडथु जिणुत्तु, रूव जुत्तु गय रूव अणंतु ।
अट्ट रउद्द धम्म कउ भेउ, शुक्ल ज्झाण वज्जरिउ अलेउ ।।

अर्थ—: और कहा "बारह भावनाओं का विचार (चिन्तन) करो तथा संयम, नियम, (दश लक्षण) धर्म और तप इन चारों को परमपद के लिये अभ्यंतर (अन्तरंग) रूप से जानो । अब मैं तुझे उत्तम ध्यान को कहता हूं ।।५२१।।

फिर पदस्थ, पिंडस्थ, जिनेन्द्र के रूप के समान (रुपस्थ) तथा अनंत (गुणों के धारण करने वाले) रुपातीत (सिद्धों के) ध्यान को जानो। आर्त, रौद्र, धर्म एवं शुक्ल ध्यानों के भेदों को जानकर ग्रहण एवं त्यागो ।।५२२।।

अलेउ – नहीं लेने योग्य

रूवगय–रूपातीत

[५२३–५२४]

दंसणु णाणु चरणु रयणाइ, आखिय किरिया अरु पडिमाइ।
चारि नियोयवि कहिय वियारि, जिणदत्त कहिउ मुणिव सुसारि ।।
बहु पयार आयुमु बज्जरिउ, णिसुणिवि राहणु मनु गहु गहिउ।
भव कूवि बूडंतिहि मलहारि, सामिय पय विण को संसारि ।।

अर्थः —दर्शन, ज्ञान एवं चरित्र, रत्नादि को, संपूर्णक्रिया तथा प्रतिमाओं को कहा। चारों अनुयोगों को विचार करने को कहा, और कहा, हे जिनदत्त ! "यही सब सार है" ।।५२३।।

अनेक प्रकार के आगमों को कहा जिसे सुनकर राजा का मन प्रसन्न हो गया। (जिनदत्त ने कहा) भव कूप में डूबने वाले के पाप (मल) को हरने वाले स्वामी के चरण के बिना संसार में (और) कौन (सहारा) हैं ।।५२४।।

[५२५–५२६]

पाछं जिनदत्त अवसरु लहिवि, पूछइ मुणिवरु कहु सहु सरिवि।
णाणवंत सामिय वय करहु, महु मण संसउ फुड अवरहु ।।
बहु तिरिया सहु गरुवउ नेहु, किण कारणि सामिय अछेहु।
बुइ चंपहि इकु सिंहल दीपु, किमु विज्जाहरि लहिय सरूपु ।।

अर्थ :— पीछे जिनदत्त ने अवसर पाकर मुनि श्रेष्ठ से सर्व वृतांत कहने को निवेदन किया। हे ज्ञानवंत स्वामी, मुझ पर दया करके मेरे मन की (स्फुट) शंका को दूर कीजिये ॥५२५॥

हे स्वामी, किस कारण से चारों स्त्रियों से मेरा अत्यधिक स्नेह है। तथा उनमें से दो चंपापुरी, एक सिंहल द्वीप से और एक सुन्दर विद्याधरी कैसे प्राप्त हुई, सो सब कहो ॥५२६॥

पूर्व भव वर्णन

[५२७-५२८]

बिमलाएणु बोलइ ए रिसउ, देसि अवंती णामें विसउ ।
पुरि उज्जेणि अजिय णिवासि, तहं धणदेउ सेठि गुणरासि ॥
तहि सिवदेउ वहु वालउ पूतु, धम्म कम्म करि भयउ संजुत्तु ।
ताउ जिणेसरु ण्हवणु करंतु, हयउ कुलि गऊ सग्ग तुरंतु ॥

अर्थ: — वे विमलानन (निर्मल मुहँ वाले) ऋषि इस प्रकार बोले, "विश्व में अवंती नाम का देश हे उसके उज्जयिणी नगरी में अजित (राजा) का निवास था। वहीं गुणों की राशी वाला (गुणवान) एक धनदेव सेठ था ॥५२७॥

उसके धर्म कर्म से संयुक्त शिवदेव नामका बुद्धिमान बालक पुत्र हुआ। (उस बालक का) पिता (धनदेव) जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक करते हुए कुयोग से मरकर तुरन्त ही स्वर्गवासी हुआ ॥५२८॥

कुलि /_ कुलिय – कुयोग

[५२९-५३०]

तू दारिद्दह पीडिउ घणउ, पर छाडिया न धम्म आपुणउ ।
दुहि णिरु हिअइ वसइ जिण सोइ, वणजो करहि तु भोजणु होइ ॥

मुणि एकु वण माहि ज्झाण समाहि, तहि पय पूजित वणजी जाहि ।
छठउ मास तवु पूजिउ तहि, भामरि गयउ जति पुर माहि ।।

अर्थः — हे जिणदत्त! (शिवदेव की पर्याय में) तू अत्यधिक दारिद्र्य से पीडित था लेकिन (तूने) अपने धर्म को कभी नहीं छोडा । तेरे हृदय में नित्य जिनेन्द्र देव वसते थे और लेन देन करके तू अपना पेट भरता था ।।५२६।।

वन में समाधि के ध्यान में लगे हुए एक मुनि थे जिनके पद- पूज कर (तू) वणिजी को जाया करता था । (इस तरह तू) छह माह तक उनकी सेवा करता रहा । तब वह मुनि नगर में भ्रामरी (अहार) के लिये गये ।।५३०।।

[५३१–५३२]

तू पडिगाहि घरहि लइ गयउ, पाय पूजि पुणि थाढउ कियउ ।
लइ वाइणो घरहि ते जाइ, महा मुणीसरु चरी कराहि ।।
जसवइ जिनवइ गुणवइ जाणि, चउथी सुहवइ मणि परियाणि ।
देखित तोहि धम्मु कइ भाग, चारिउ तिरिय भइय अनुराग ।।

अर्थ :—तू (उन मुनि को) पडिगाहन कर (आहार के लिये) खड़ा कर दिया । स्त्रियाँ अपने घर से वायणाँ (लाहना) लेकर जहाँ महा मुनीश्वर अहार ले रहे थे, आई तथा जसवती, गुणवती, जिनवती तथा चौथी शुभवती चारों नारियों ने मन में निदान (उस अहार का अनुमोदन) किया और तुझे धर्म भाव में देखकर वे चारों स्त्रियां तुझ पर अनुरक्त हो गई ।।५३१–५३२।।

चरी – आहार करने की क्रिया ।

[५३३–५३४]

मुनहि अहार एकु कवाण, भई घणी ते घरिणी णियाण ।
पुण्ण पहाउ एक जिणदत्तु, मुणिहि दाणु दीनउ पइमिति ।।

तहि मरेवि वहि णिसिहु राय, पढमु सग्गि सुरवरु संजाय ।
विविह भोय माणिवि तहि चइवि, आइवि जीवदेउ पुत्र भवउ ।।

अर्थ :—मुनि को एक कदन्न मात्र अहार देने से निदान करने पर वे तेरी स्त्रियां हुई । हे जिणदत्त! यह सब मुनि को परिमित (अल्प) आहार देने के पुण्य का प्रभाव था । ।।५३३।।

हे राजन्! सुनो, तुम मर कर प्रथम स्वर्ग में श्रेष्ठ देव हुये । फिर वहाँ विविध प्रकार भोगों को माणकर (भोग कर) तथा वहाँ से चय कर तुम जीवदेव के पुत्र हुए ।।५३४।।

[५३५-५३६]

दुइ मरि चंपवपुरी उत्पण्णा, सिंहल दीवहु इकु आयण्णा ।
एक भई विज्जाहर धीय, चारिउ तुम संबंधी तीय ।।
जिणदत्त णिसुण उपण्णो वोहु, णियमणि छंडिउ माया मोहु ।
जइ कुइ घोर वीर तउ करइ, सो मर मोखु पुरी पइसरइ ।।

अर्थ :—दो मर कर चंपापुरी में पैदा हुई । एक सिंहल द्वीप में पैदा हुई तथा एक विद्याधर की कन्या हुई । (इस प्रकार) चारों तेरे (पूर्व भव) के सम्बन्ध से स्त्रियां हुई । ।।५३५।।

पूर्व भव का वृतांत सुनकर जिनदत्त को बोध (ज्ञान) उत्पन्न हुआ और उसने अपने मन से माया और मोह को छोड दिया । जो कोई वीर घोर तप करता है, वह मर कर मोक्ष नगरी में प्रवेश करता है ।।५३६।।

[५३७-५३८]

पूतु सुदत्तह दीनिउ राजु, मइ साहिव्वउ अपुणौ काजु ।
बहु नारि सिहु जिणदत्त साहि, दीपा लेइ मुणीसर पाहि ।।

दुद्धर पंचमहव्वय पालि, णाण जलेण कम्म क पखालि ।
परम समाहि जोइणी रूउ, तव लछी छुडु पठयो दूतु ।।

अर्थः — (फिर जिनदत्त ने) अपने पुत्र सुदत्त को राज्य दिया और कहा, मैं अपना काज (आत्म हित) करुँगा । चारों स्त्रियों के साथ जिनदत्त ने मुनीश्वर के पास दीक्षा ले ली ।।५३७।।

तब जिनदत्त ने दुर्द्धर पंच महाव्रतों का पालन किया तथा ज्ञान जल मे कर्मों के कीचड को धोया । जब मुनि जिनदत्त परम समाधि के योग में थे तब तप लक्ष्मी ने शीघ्र ही अपना दूत भेजा ।।५३८।।

[५३६–५४०]

विणवइ दूतु णिसुणि बयवंत, ...इ तोडे रयवर के दंत ।
मोहमल्ल रणि घालिउ मारि, हउ पाठयउ सामी तव नारि ।।
तव लछी निरुहउ......ठयो, खेद खिन्नु एहि आवत भयो ।
मज्झु वियोउ नाउ तिहि धरिउ, ... ।।

अर्थ :— दूत ने कहा, "हे दयावान सुनो, तुमने काम के दांत तोड लिये हैं । तुमने मोह रूपी योद्धा को रण में मार दिया है इसलिये हे स्वामी, मुझे तुम्हारी तप स्त्री ने भेजा है ।।५३९।।

तुम्हारी तप रूपी लक्ष्मी उदासीन होकर स्थित है । मैं खेद खिन्न होकर यहां आया हूं । मेरा नाम उसने विवेक रखा है............. ।। ५४० ।।

[५४१–५४२]

मुणि विवेय तुहि पूछउ बात, (ज) य दोसु पइ दीठे जात ।
मणमथ सहिउ बीउ मइ दीठ, मुक्ति लछि ते नियड बइठ ।।
मुक्ति लछि ज (इ) हो सइ दासि, तापहि छूटहि हम निरुभासि ।
पउजोवहि विन्निवि जसुकंति, मुणिवरु तिसु तोडइ ते (दं) त ।।

(जिनदत्त ने कहा) हे विवेक सुनो मैं तुमसे एक बात कहता हूं। पहिले वाले दोष देखे जाते हैं। मुक्ति लक्ष्मी के निकट बैठने पर भी मुझे काम देव पर विजय पाप्त करने की दृष्टि दी है। मुक्ति लक्ष्मी जब (हमारी) दासी होगी तथा हम निश्चय रूप से आभास देकर छूटेंगे। जिसकी कांति प्रकाशित होकर निकलती है ऐसे मुनि श्रेष्ठ (काम देव) के दांतों को तोड डालते हैं। ॥५४१-४२॥

विवेय ∠ विवेक

पज्जोवहि ∠ प्रद्योतित -- प्रकाशित करना

[५४३-५४४]

रतिपति जो इह सो तव लछि, अहो विवेय झत्ति निरु गछि।
विणवहि जाइ मुणिव गरिठु, मुक्ति नियंबणि जो निरु एठु ॥
पहिलइ हूंतउ णिय परिरत्तु, सा छंडिवि महु भयउ आसत्तु।
इव विवेय जएसहि तित्थु, मुणिवरु गणु अछइ जित्थु ॥

(जिनदत्त ने कहा) यहां जो (पहिले) रति पति था वही तप लक्ष्मी का पति है। हे विवेक, शीघ्र ही निश्चित रुप से जाओ और गरिष्ठ (बड़े) मुनिन्द्र से जाकर कहो कि मुक्ति नितंबिनि (उसे) निश्चित रुप से इष्ट है। पहिले मैं अपनी ही (लक्ष्मीपर) अनुरक्त था। उसे छोडकर मैं फिर (तप लक्ष्मी) से आसक्त हो गया। अब हे विवेक, हम उसी तीर्थ जावेंगे जिसको मुनिश्रेष्ठ उत्तम कहते हैं।

[५४५-५४६]

णिक्कारणि हउ णिरु पाठउ, मइं तुहु सामी आइ वीनयउ।
ता जिणदत्त मुणिसरु कहइ, भव समुद्र को सुहयर रहइ ॥
निवियप्पु परमप्पउ झाइ, केवलणाणु अणंतु उपाइ।
पुणु छुडु अठ कम्म खउ लेइ, तीजइ भव मरि मोखह गए ॥

(विवेक ने कहा) हमें निश्चित रुप से निष्कारण भेजा गया है और मैंने हे स्वामी ! तुमसे आकर निवेदन किया है। इस पर मुनीश्वर जिनदत्त कहने लगे कि इस भव समुद्र में कौन (जीव) सुखसे रह सकता है। ॥५४५॥

निर्विकार परमात्मा का ध्यान करके तथा अन्त में तीसरे भव में केवल ज्ञान प्राप्त करके और आठ कर्मों का क्षय करके जिनदत्त ने निर्वाण लाभ लिया। ॥५४६॥

[५४७–५४८]

दुद्धर घोर वीर तउ पालि, साहु सगि दुह कम्म पखालि ।
हनि ते नारि लिगु गय सग्गि, तुह रायसिह काजि निय लगि ॥
यह जिनदत्त चरिउ निय कहिउ, असुह कम्मु चुइ सुह संगहइ ।
वित्थुरु भवियहु सुणहु पुराणि, यहु जिण बोस देहु महु जाणि ॥

अर्थ :— उस वीर ने दुर्द्धर तथा घोर तप का पालन कर सारे दुष्कर्मों का प्रक्षाल कर (धो) दिया तथा वे (चारों स्त्रियाँ) स्त्री लिंग छेद कर स्वर्ग गई। तू भी रायसिंह, अपने काज (आत्म हित) में लग ॥५४७॥

जो इस जिनदत्त चरित को नित्य कहेगा, वह अशुभ कर्मों को चूर कर शुभ कर्म का संग्रह करेगा। हे भविको, इस पुराण को विस्तार से सुनना और इस विषय में मुझे (मूर्ख) जान कर दोष मत देना ॥५४८॥

निय– नित्य

ग्रंथ समाप्ति

[५४९–५५०]

जो जिणदत्त की निंदा करइ, सुनत चउपही जलि जलि मरउ ।
जो यह कथा घालिहइ रालि, तहु मिछत्ती दइ यहु गालि ॥
मइ जोयउ जिणदत्त पुराणु, लाखु विरयउ अइस पमाणु ।
देखि विसूरु रयउ फुड एहु, हत्थालंबणु बुहयण देहु ॥

अर्थ :— जो जिनदत्त (चरित) की निंदा करेगा, वह इस चउपई (बंध–काव्य) को सुनते ही जल जल कर मरेगा। किन्तु जो इस कथा को अपने पास (रख) धारण करेगा (हृदयगंम करेगा) वह मिथ्यात्व गला देगा ॥५४९॥

मैंने उस जिनदत्त पुराण को देखा है जो पं. लाखु द्वारा विरचित जो ऐसा (अथवा अतिशय) प्रमाण है। मैंने इसे स्फुट रूप से रचा है। हे बंधुजन हस्तालंबन (हाथ का सहारा) दीजिये ॥५५०॥

अइस ∠ ईदृश – ऐसा।
अइमइ ∠ अतिशयित – विशिष्ट।

[५५१–५५२]

जो जिरणदत्त कउ सुरणइ पुराणु, तिसको होइ णाणु निव्वाणु।
अजर अमर पउ लहइ निरुत्तु, चवइ रल्ह अभई कउ पुत्तु ॥
गय सत्तावन छह सय माहि, पुन्नवंत को छापइ छाह।
तक्कु पुराणु सुरिणउ नउ सत्थ, भरणइ रल्हु हउ ण मुणउ अत्थु ॥

अर्थ :—"जो जिनदत्त के उपाख्यान को सुनता है, उसके ज्ञान और निर्वाण होता है। वह अजर अमर पद को निश्चित प्राप्त करता है" यह अभई का पुत्र रल्ह कहता है ॥५५१॥

(यहाँ तक कुल) छः सौ (छंद) में से सत्तावन गए (कम हुये)। कौन पुण्यवान अपनी छाया (त्रुटियाँ) छिपाएगा? तर्क, पुराण एवं शास्त्र मैंने नहीं सुने हैं तथा रल्ह कहता है, "मैंने अर्थ पर भी विचार नहीं किया है।" ॥५५२॥

णाण ∠ ज्ञान।

[५५३]

जिणदत्त पूरी भई चउपही, छप्पन हीणवि छहसय कही।
सहसु सलोक विस्स सय रहिय, गंथ पमाणु राइसिहु कहिय ।।

अर्थ: — जिनदत्त चौपई छः सौ में से छप्पन कम (५४४) चौपई में पूरी की गई। रार्यासिह कवि कहता है कि ग्रन्थ का प्रमाण एक हजार श्लोक प्रमाण है ।।५५३।।

इति जिणदत्त चउपई संपूर्ण

संवत् १७५२ वर्षे कार्तिक शुदि ५ शुक्रवासरे लिखतं महानंद पालवं निवासी पुष्करमलात्मज।

यादृशं पुस्तकं दृष्ट्वा तादृशं लिखितं मया।
यद् शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयते ।। १ ।।

शुभं भवेत् लेखकाध्यापकयोः। श्रीरस्तु। पंचमीव्रतोपमनिमित्त

।।शुभं।।

शब्दकोष

अ

अइ— ४००,
अइरावइ = ऐरावत — २३
अइस = ऐसा — ३६२, ५५०
अइसी= इस प्रकार की—१०१,४९७
अइसे = ऐसे — ४८०
अइसो = — ३८२, ४१३
अइसौ —२८१
अइसइ = ऐसा – ४७,२०५,२२०, २२२
अउसप्पिणी = अवसर्पिणी — ३०
अउर = और — ७४, १३७, १४४ ३१४, ४८३
अउरु = और — ४७, ४२५
अकहा = न कहना — ४७५
अक्खउ = कहना — ११६
अक्खर = अक्षर — २०
अकाजु = व्यर्थ — २१३
अकाचसि = आकाश — ३५४
अकिट्टमि = अकृत्रिम — २९१
अकुलाइ = व्याकुलहोना — १००
अकेलउ = अकेला — ३६७
अखइ = कहना — ३४५
अखउ = कहना —२०, २९७
अखहु = कहना — २२१
अखेहु = — ५२६
अखंड = पूर्ण — १७६
अखय = अक्षत — ५३,
अख्यइ = कहना – ४१७
अखिउ = कहना – ३८२
अगनिउ = अगनित – १२६, २८५
अगम = अथाह – १९४
अगर = सुगंधित द्रव्य – ५३,१७२
अगवाण = अगवानी – ५०३
अग्गिलेह = आगे लेने को – ४६१
अगोटिउ = रुकना – १३२
अघाहि = थकना – ७०
अघाइ = गहरी – पेटभर, प्रसन्नता ३०१, ४१५, ५०४
अघाई = – १४९
अघोटिउ = रोकना – १३६
अचरिजु = – ४३१
अचागले – दुष्ट – ४०१
अचामउ = – २७१
अचेयण = अचेतन – ७८
अचंभउ = आश्चर्य – ३६१
अचंभो = – ३६०
अचंभौ = – ४३९,५०९
अछ = बैठे हुए – ३७८
अछइ = – २७३,३३९ – ३४३, ५४४

अच्छरि = अप्सरा – ३३२
अच्छहि = – ३७०,३१९
अच्छीस = – ३९६
अच्छे = अक्षत – ३६०
अजउ = – १८१
अज्ज = आज –२२५,२६५
अज्जु = – ३००,
अजर = – ५५१
अजरु = – ४९४
अजाण = अजान – १८८,४०९
अजिय = अजित – ३, ५२७
अठकम्म = आठकर्म – ५४६
अठविहु = आठप्रकार – ५४,१६८
अठंगु = ४९९
अण = २२१
अणगलिउ = विना छना – ५१८
अणछाजत = अनचाहा – ३७६
अणयार = अनगार,मुनि – ५२०
अणसणु = अनशन – २५२
अणीवंध = अनिबंध – २८९
अणुदिणु = प्रतिदिन
अणुसरउ = अनुसरण करना ३२८
अणेय = अनेक – २८८
अणंगहु = अनंग – ९३
अणंतु = अनंत – १९३,५२२,५४६
अण्णु = अन्त – १९०
अणुव्वय = अणुव्रत – ५१९
अतडउ = विना किसी शब्दके,चुपचाप – २२८
अति = बहुत – ११७,३११,३८४,
अतींते = भूतकाल में – २२,

अतुल = तुलना रहित – ५
अत्थ = अर्थ – १४
अत्थि = – ३८, ९९
अत्थु = – ५५२
अत्थहि = विद्यमान – २२
अथाण = – ४९१
अद्द = – ५२२
अधराउ = आधा राज्य – ३४९
अनइं = – ३७५
अनंगु = कामदेव – ४२८
अनंतु = अनन्त – ६,
अनपर = उमपर – १६९
अनिवार = अनगिनत – २३६
अनिवारु = अनिवार्य रूप से ३३,

अनु अनु = पीछे पीछे – १७९
अन्नु = अनाज – ३२४
अनुदिनु = प्रतिदिन – ५०१
अनुराग = प्रेम – ५३२
अनुवइ = – ४४५
अनेयइ = अनेक – ३६४
अपजस = अपयश – ४७१
अपणी = अपनी – ४०२
अपणु = स्वयं – २२५
अपणे = अपने – २०५
अप्पइ = अर्पण करना – ४७३
अप्पु = स्वयं – ५० ४१७
अप्पउ = अर्पित करना – २४२
अपनाइ = अपनाना – ४१५
अपमाण = अप्रमाण – २६३,२६५
अपरंपर = – ४२६ ४३१, ४४२

इ

उ

उतरि = उतर – २१७
उत्तरु = जवाब
उतहि = उतना – ३९
उत्तंग = ऊंचा – ४३९
उदहिदत्तु = सागरदत्त, सेठ का नाम – १७६
उद्धरउ = उद्धार – ७२
उद्दिमु = उद्यम – १३९
उद्धसे = कहना – २१३
उन = – २५०
उन्नति = – २६३
उपगार = उपकार – १४०
उप्पण्णु = उत्पन्न – ५०९
उपण्णु = उत्पन्न – ५०६
उपण्णो = उत्पन्न हुआ – ५३६
उपगइ = मामा – २६२
उपमादे = – २७१
उपरणु = ऊपर – २५१
उप्परहि = ऊपर – २६७
उरवारि = उखाड़ना – ४११
उपाइ = – ५४६
उपाउ = उपाय – १४५
उपाडि = उखाड़ – ३४५
उप्पाडि = उत्पात – ३४६
उपासु = उपवास – १३४
उर = – ६४
उरणु = उऋण – २८
उरमादे = – २७३
उरवसी = उर्वशी – ८१
उव = – ४८७
उवयरिउ = उबरना – ३४५
उवयारणु = उपकार – २८
उवर = उदर – ३६६
उवरहि = – ४८७
उवरि = उदर – २७
ऊपर – ४७०
उव्वरिउ = बचना – २३४
उवहिदत्त = सागरदत्त – २४५, ४४७ सेठ का नाम
उवहिदत्तु = – २४८
उवहदत्त = – १७५, १७८आदि
उवहदत्त = – १७६, २४०
उवहि = उदधि – २४९, २८३
उवाउ = उपाय – १५१
उवारि = द्वार – ४६५
उसरि = अवसर – ४६३
उह = – २१६
उहकी = उसकी – ७७
उहाणु = दूसरा – २१०
उहि = – २४७
उहु = उस =
ऊगयो = उदित हुआ –३०७
ऊचालि = बुरी बात – २२०
ऊचे = – ३१०
ऊज = – ४४५
ऊपर = – ३४७
ऊपरह = ऊपर – १२
ऊपरि = – ६६, ९१
ऊभे = खड़े हुए – २८४
ऊसरइ = मौसरा – २०५, २११,२२० पारी
ऊसरऊ = पारी – २१२
ऊसारि = उच्चारण करना – ४९
ऋष = ऋषि, साधु – ४८

ए

क

किमु = किस प्रकार – ४०,३७६,३८८
१४३,२३१,२३४,४४०,५२६
किर = – ५११
किरण = दीप्ति – ६६
किरिया = क्रिया – ५२३
किसइ = किस – १७
किसही = किसीभी – २०३
किमि = – २०७
किसी = कैसी – ८६
किमु = कैसे किसे – १०७,२६१,३१५
किमुकई = किसकी – ८४
किह = – ४६३
किहा = कहाँ २६७
कीरति = कीर्ति, परां – ८६, ४३६
किलमाण = क्रीड़ा करती हुई – ६०
किली = – १६५
कीली = कील – ३८१
कुइला = कुचला – ४७६
कुकम्मु = कुकर्म – ३०५
कुकइत्तणं = कुकवित्व – २५
कुचाली = खोटी चाल – ३८१
कुछार = – ४४६
कुर्च्छील = कुत्सित – ३७७
कुटंब = परिजनलोग परिवार – ६०
१०८, १११, ११७
कुठु = – ४४८
कुठारु = कठोर – ४७२
कुढाल = बेढंगी – ३७८
कुढावहि = कुढाना – २१५
कुंथु = कुंथनाथ – ६
कुद्धि = क्रुद्ध – २२४
कुपूत = कुपुत्र – १३६
कुबुधि = विकृत बुद्धि – ११
कुमइ = कुमति – ११
कुमुणिवर = खोटा मुनि –१०१
कुमरि = कुमारी – २३५, २८५, ३४६
कुमरु = – २३४
कुमारिह = कुमारी – २०३
कुमारि = कुमारी – २७८
कुमारि = –१२८
कुमरु = कुमार – १२४
कुल = वंश – ४६, ६६
३७, ७२, १८४,
कुलि = कुल – २३, ५०६५२८
कुलि = जाति – ४४, ४५८
कुलु = कुल, वंश – ६२६
कुलगंगि = – २८१
कुलतिलउ = कुलतिलक – ४८६
कुलमंडणु = कुलमण्डन – ५६
कुलवहु = कुलवधु – २४६
कुलीय = जाति – ४६२
कुवडी = कुवडी, बौना– ४०४
कुवरह = कुमार के – ८१
कुवरि = राजकुमारी – २११
कुसलात = ११७
कुहणी = कुहनी – ३७८
कूजउ = – १७३
कूटइ = कटना ६१२
कूटणु = – २४६
कूड = कुटिल – ३५
कूडउ = बुरा – ३८१
कूडू = कपट – ७१
कूंभी = ४२७
कूरु = कूट ढेर – ३३

कूवडउ = कुबडा- ४००, ४०७
कूवडी = ३७७
कवा = कुआ – १८७
केउ = केतु – १३
केतकु = कितने ही – १२७
केत्तउ = कितना – ३६२
केवडउ = केवडे का – १६६
केवलणाणु = केवलज्ञान ५४६
केला = ३३, ४१२
केहा = क्या ३२३
कैलास = कैलाश – २६२, ३०
कैसे = १४८, १५६
कोइल = १७५
कोट = – ४५८, ४५६
कोडि = करोड – १३०, १३५, –
१८४, १८५, ३६१, ४०६, ४५२
कोडी = – ६१
कौतूहल = कोतूहल – ३२०, ३५१
कोदइ = चावल = ४०६
कोपइ = कुपित.– १५५
कोपिउ = क्रोधित १३३
कोपु = क्रोध – १७०, २४६, २६६
कोलाहलु = शोर – १२३
कोली = जातिविशेष – ४३
कोवि = कोई – ३६
कोस = – १८७
कोहु = क्रोध – ४७०
कौन = १६४
कौवि = कोई – १४५
कंचरण = स्वर्ण – ३६, ४२, ८९
कंचगदे = – ७७१
कंचरी = – ६८
कंचुली = – ६६
कुंजर = हाथी – ३७३
कुंडल = कानों के आभूषण – ६६
कुंडलपुरु = – १६६
कंठारोहणु = कंठ का रुकना – १५६
कंठि = गला – ३७३
कंत = नाथ – १५६, ३०३
कंदलह = ६४
कंधि = कन्धा – ३५८
कांति = सुन्दर – २७३
किंकर = सेवक – ४२१
कुंथू = – ६२
कुंद = एक पुष्प – ६५
कुंभी पाक = २४५

ख

ख = – १८३
खखंदि = कठिनाई – १४३
खचिय = खींचना – ६८
खणि = क्षण – १४२
खडग = तलवार – २१८
खत्री = क्षत्रिय – ४४
खयर = – ५१४
खरी = खड़ी, श्रेष्ठ – १७६, २१५
२८१ – ४१०
खल = निश्चय – ७
खाज = खाद्य पदार्थ – ४१३
खाट = चारपाई – २२५
खाड = खडग – ४२५
खान = भण्डार – १०७
खाल्उ = खाली, पिचका – ३७७

खालु = चमडा – ४७७
खिण्णु = खिन्न – ३५६
खित्ति = क्षिति, पृथ्वी – १
खिन्नु = – ५४०
खियात = ख्याति – ३७०
खिरी = – १७२
खीचि = –१६६
खीणोवरि = क्षीणोदरी – ३०६
खीर = क्षीर – ४१२, ५००
खुजाइ = खुजाना – ४१८
खूटइ = क्षय होना – २२६
खूटउ = खुला – ३४५
खेतपालु = क्षेत्रपाल – १०
खूदंत = खोदना – ३४७
खेऊ = खेद – ३०६
खेमु कुसल = क्षेम कुशल – ११८
खेव = – २६२
खोघरु = – १८३
खोचो = टेढी – ४०५
खोचे = – ३७७
खोजु = – २४३
खोड = खोट – २३८
खोडि = खोट – १३०, १४८
खंड = टुकडा – ४०
खंडागरु = तलवार – ६५
खभ = – १५६, ३४५
खांड = – ४१२

ग

गइयर = हाथी – २३
गइंदु = गजेन्द्र – २३
गउडी = गौडी – २७१
गगन = आकाश – ३२६
गगन गामिनी=आकाश में चलने वाली-२८६
गज = हाथी – ३४५
गजगमणि = गजागामिनी – २७६
गजहि = गर्जना – २६६
गढ = – ४५६
गढह = किले में – ४५७, ४५८
गडवड = गडगडाहट – २६३
गढी = – ७८
गढु = – ४६२
गणह = समूह – ४६६
गणहरविंद = गणधर वृन्द – ३
गणु = – ५४४
गतहि = – ३०६
गयवर = हाथी – ३५७
गयंद = हाथी – ३४६
गरभ = अभिमान – १४१
गरवु = अभिमान – २२६
गरहु = विश्वास – ४०८
गरिठ = गरिष्ठ – १३
गरु = अधिक – २२३
गरुव – बडे – २६८
गरुवउ – अत्यधिक – ५२६
गरुडकेउ – गरुडकेतु – ५०८
गल = – ६४
गलिय – – ४४८
गलींदी – २७२
गलै – गर्दन – ३७४
गवरि = गौरी – ३७६
गव्म = गर्व – ५६

गूढ = – १८३
गेल = गैल, मार्ग – ४६१
गोपाल = = ४७६, ५१३
गोफणी = गोफ्या,पत्थर फेंकनेका अस्त्र
गोधूलक = – ४४३
गोवहि = गोपहि, छिपाना – ३२२
गोहिणी = साथी – १५०
गंगादे = – २७६
गंठि = गांठ – ६८, २१८
गंजणु = अपमान – ७१
गंजियइ = नष्ट – ४७०
गंभीरह = गंभीर – ३४१
गंथ = – ५५३
गंधव्वु = गंधर्व – ३२१, ३८५
गंधि = – ४४८
गंधोवइ = गंधोदक – १६८
गंपि = जाकर – २३४
गंभीरु = गंभीर – २५६
गांठ = – ७०

घ

घड़हडाइ = – १६५
घडियार = घड़ियाल – १६४
घडी = गढ़ी – ८६, १६५, ३३२
घण = बहुत – ३०६, ३४६, ४२३, ४४७, ६०७
घणाउ = घना, बहुत – ४०, ३२०, ३२८,४०१, ४०५, ५२६
घण्यो = पेलना – ४०५
घणाहूल = – १७४
घणा = अणीक – ३४६
घणाह = घना, बहुत – ४०५
घणी = घनी ८६, ८६, २७१, आदि
घणे = बहुत – २२, ६१, ३८६,४४५ ४५३
घर = ५७, ११२, १३१, १३६, आदि
घर घर = – ६०
घरणि = स्त्री – ३१, ४५, ४६
घरवहि = घर में – २१२
घरणी = गृहिणी – ५३३
घरी = गढ़ी ८४, १२१
घलहि = चलना – २७६
घवरु = घणा – १८
घाउ = घात – ४३, २३१
घाघ = उल्लू – ३७६
घाघरी = झालर – २६६
घाठि = घटिया – ४१४, ४०६
घाटि = कम – २६६
घालइ = मारना – १००,१६५
घउ = घी – ४२२
घोर = – ५४७
घ = घोर – ५३६

च

चइ = त्यक्त – ३१, ५१८
चइज्जु = छोड़ो – ५१८
चइवि = चयकर – ५११, ५३४
चउ = चार – १४१, ५०४, ५१६
चउक = चौक – ६०
चउकु = – १२५
चउर्त्थी = – ५३२

जल = पानी – ३१, ५३, ६०, ३६७
जलउह् = जलधि – १६५
जलजंतइ = जलजंतु – १६१
जलदेवी = – २४७
जलव.हु = – १६६
जलसज्जु = – ५१८
जलह = – ४५८
जलहर = – ३५१
जलि जलि = – ४५६
जली = ४०५
जलु = जल – १६६, २३२
जले = जलना – ४१४
जव = जब – १६२
जवु = – २४०, २५१, ४४८
४५६
जवहि = जबसे – ३२३, २२६
जबही = जभी, – ३३५,
४२५, ४२६, ५१५,
जवु = जब – १६६, १३१, ३०६
३६६, २१३, २१६
जीवंजसी = जीवंजसा – ३१८
जसवइ = यशवती – ५३२
जसु = यश – २, १४, ६४
जहां = – ८१, १३६, १६०,
२६२, ३२७. म्रादि
जहि = जो, जहां – १४, ३१, ३६७,
म्रादि
जाइ = गये, जाकर – ४८, ५७, ६२,
जाइवि = आकर – १३२, १३६,
१४६, ५१६
जाइ सइ = – ४२६
जाइ = जाति – १७३
जाग = – १६५
जागइ = जागना – २१०, २११
जाण, जाणइ जाणउ = –
१०३, ६६, १७६, ४४२
जाणि = – ६४, १०२, १३१
२७४, ४२०, ४४८, ४६२, ४६६,
५३२
जाणियइ = जानो – ४०
जाणू = घुटने – ०१
जात = – ११४, १२८,
५४१
जाति = – २६, ३२०, ३२२
१६८
जातिपाति = – ३७३
जातिफल = जायफल – १७१
जातु = कदाचित – ५१
जान = जानना – २६६, ३५६
जाबु = गाल – ४०६
जाम जाम = बार बार – ३४४
जाम = जब तक – १०६, १४५, १५३,
२४३, ३३७,
जामति = जन्म ग्रहण करते ही
– १३८
जामहि = – जब
जायउ = – ५०८
जायव = यादव – ४६१
जाल = – ४७६
जवु = – २३३
जावति = – २०४
जालामालणि = ज्वालामालिनी
देवी – १०
जामउदु = जपापुष्प – १७३

जुवा = जुआ ७६, १५६
जुवाणु = युवा – ६६
जुवार = जुआरी – १२८
जुवारिउ = जुआरी – ६८,७३,१२६
जुवारिन्हु = – १३०
जुहारु = – ११७
जूड = जूट – ३५८
जूडउ = बालों का बांधना – २१८
जूवह = जूंआ – ३३०
जूवा = – ७०, १४२, १३४, ३६६, ३८७
जूहि = – १७३
जठी = बड़ी – ४३, ३३६, ४२३
जेतड़उ = जितना – ३३
जेम = उस प्रकार – १६
जेंवरण = जीमना – १२४
जेंवहु = जीमना – १२४
जेहि = जिसने – २७
जैसे = – ४२८
जो = वह – ८,७६,२०२,२१०, आदि
जोइ = देखना – ५४, १५२, ५१६
जोइणी = जोगिणी ५३८
जोइस = – ४४२
जोइसिउ = – ४४२
जोइसी = – ४४१
जोइसु = – ४४१
जोग = – ३७६
जोगणा = जुगनू – २४
जोउणि= – ४५१
जोड़ि = जोड़कर – २५, ११५,१३५, १४८, २२०, ३७६ आदि
जोतिषु = ज्योतिष ६५
जोयउ = देखना ४८३, ५५०
जोयण = योजन – २३, १६३, १६५, २००
जोवइ = देखना – ६७, १५७, ३०६, ३१०
जोव्वण = यौवन – ६४
जोहि = – ३७१
जंघ = जांघ – ६२
जंजोगु = यथायोग्य २७
जंतु = जानवर, पशु – ६५
जपइ = कहना – ३००, आदि
जंबु = जामून – १७१
जंबुदीपु = – ३०

झ

झकोलइ = – १६४
झड़ति = खींचकर – ३२२
झत्ति = शीघ्र, – ३००, ५४३
झरणा = – १७१
झाइ = ध्यान – ५४६
झाड़ि = झाड़कर – ४७८
झाड़े = – २३६
झाण = ध्यान – ३६७
झाणु = ध्यान – ३६६
झाला = ज्वाला – २२६
झावइ = ध्यान करना ५४
झुलाइ = झुलाकर – २२६
झूठ = – ४२६
झूठउ = झूठा – १४६, ४००,४०३, ४०७
झूठिउ = झूठ – ५८

ट

ठ

ड

ढ

ढालि = गिराना – ३८६, ४२०,
ढीकुलि = – ४५७,

ण

णइ = – ४८८,
णमि = नमिनाथ – ७,
णमिउ = नमस्कार करना – ४६६
णमोथार = णमोकार मंत्र – १५८
णय = – ५२०,
णयण = नयन – ६०, ४८६,
णयणु = नयन – ३६७, ४८४,
णयिर = नगर – २२२, २६३,
णयरी = नगरी – २६६, ३४५,
णयरु = नगर – ४०, ४७२,
णर = – ४२६, ५१४,
णरइ = – ४२७,
णरणाहु = – ४७१,
णरयहि = – ४२७,
णरवइ = नरपति – ४१६, ४३६
णरु = नर – ३४,
णरेंद = नरेन्द्र – २६८,
णव – नौ – १३५,
णवइ = नमस्कार करना – ८,
णवगह = नवग्रह – १३,
णवहि = नमस्कार – ३, ४४,
णवि = – ४२६,
णविवि = नमस्कार – १,
णहवणु = अभिषेक – ५२८,
णह = नख – ६५,
णहयर = – ३१३,
णहि ७ निश्चय से – १२,
णहु = नहीं – ४०२,
णाइ = नाम – ३१, ४४,
णाउ = नाम – ५१५,
णाण = ज्ञान – १८, ५२३, ५३८,
५७१,
णाणवंत = ज्ञानवंत – ५२५,
णामे = नाम – ५२७,
णासत = नष्ट करना – १४१,
णासि = नाश करना – ७,
णाह – नाथ – ३१०, ४८२,
णाहिणरेसरु = नाभि नरेश्वर – १,
णाहो = नहीं – १५४,
णाहु = नाथ – ४२०, ४२१,
णांकरु = अपराधी – ३५,
णिआसि = निवास – ५२७,
णिक्कारणि = विना कारण – ५४५,
णिम्मवियउ = निर्माण करना – ३१३
णिय = निज, नित्य – ५७,६८,
११०, १५८, २२१, ३१८, ५४४,
णियमणि = निज मन – १६२, ४१६,
५३६,
णियरे = पास – ७,
णियाण = निश्चय – ३१४, ५३३,
णिरास = निराश – ५०१,
णिरु = निश्चय से – ५८, ११६,२६७,
४३६, ५१६, ५२६, ५४५,
णिरंजन = – ४६२,
णिसिहु = – ५३४,
णिसुण = सुनो – ४७०, ५३६,
णिसुणई = – २,
णिसुणहु = सुनो – ३२, २५६,
णिसुणहं = सुनो – ४०४,
णिसुणि = – ८३, १३४, ४०६,

ताम = उसको – १०६, १४५,·· आदि
तामहि = उस समय – २२५,
तारादे = – २७५,
तारुणी = तरुणी – ३३५,····आदि,
ताल = – २८२,
ताला = – २२६,
तालु = तालु – ३२६,
तास = उसके – ३४६,
तासु = उसका – २३,········ आदि,
ताह = उस, उन्हें – ३६६,····· आदि,
ताहि = उसे, तब – ७४,······आदि,
ताहं = उनको, तब – १, २२३,
तिउ = – ४५७,
तिण = ते – ३२२, ३६८,
तिणि = उन – ७१, १८५, ३४२,
तिण्णि = तीन – ५१,
तिणु = – ४४७,
तितु = उतना – २२०,
तित्थु = वहां – २६१, ४१६···आदि,
तिन = उन्हें – ८२,
तिनसि = तिनसे – ३६८,
तिनि = तैसी – ३३३, ४१६,
तिन्नि = – ५१६,
तिन्निउ = तीनों – ३४४, ४४३,
तिन्यों = तीनों – ३१६,
तिन्ह = उनके – ३३८, ३८७,
तिन्हइं = उन्हें – १७०,
तिन्हि = उन्है – २०४,
तिन्हु = उन्होने – ४२,····· आदि
तिन्हु कहु = उनके – ११५,
तिन्हु हुं = तीनों – ३६६,
तिमिर = अंधेरा – २८६,
तिय स्त्रियां – ७६,
तिया = तीन अंकों वाला – १२६,
तिरइ = तैरना – २६०,
तिरिय = स्त्री – २५८,······आदि,
तिरियनु = – ४३८,
तिरिया = स्त्री – ४२७,······आदि,
तिरिवि = पार करना – २२२,
तिरी = स्त्री – २७८, ३०६,···आदि
तिलउ = तिलक – १६७,
तिलक = " – ६८,
तिलोत्तमि = तिलोत्तमा – ३७६,
तिलंग = तैलग – २७०,
तिस = उसका – ६२,······आदि,
तिसु = उसे – ३३५,
तिसुधि = त्रिशुद्धि – ५१६,
तिह = उस – १४६,····· आदि,
तिहां = वहां – १५१,
तिहि = उसके – ४७,······आदि,
तिहु = – ३६५, आदि,
तिहुकाल = त्रिकाल – १८६,
तिहु कौ = तिसका – १००,
तिहुवण = त्रिभुवन – ६, २४,
तिहू = तीन – ४२१, ४३०,
तीकउ = – १८२,
तीजइ = तीसरे – ३४२, ५४६,
तीजौ = तीसरा – ················
तीन = ······ – ३४८,
तीनि = तीन – ४१०
तीनिउ = तीनों – ३४४, ३६१,···
····· आदि,
तीन्यौ = तीनों – ३३१
तीय = स्त्रियां – ५३५,

थ

द

दिहि = देता है – १४०,
दीउ = द्वीप – १६६, १६७, ५४१,
दीज = देना – ४८, ११०, १४२,
१४४, १४७, ३८२,
दीठ = दिखाई दिया,– २१६, ५०१,
दृष्टि –
दीठइ = देखने पर – ३१४,
दीठउ = देख कर – १०६, ३१२,
४४८,……आदि,
दीठी = दृष्टि – ११७, ७८, २२०,
दीठु = देखा – ४२४, ४३६,
दीठे = देखे – ३८६, ५१६, ५४१,
दीण = दीन – १४४, ५०४,
दीणा = दीन – ४००,
दीणे = दिये – ६१,
दीन = देने – ३७४,
दीनउ = – १६६, ५३३,
दीनह = दीन – ४१६,
दीनिउ = – ४४६, ५३७,
दीनी = लगायी – १३१, १६२, २२७,
२३६,
दीप = द्वीप – २००, २०२,…आदि,
दीपि = द्वीप – ३६०,
दीवइ = दीपक – ५३,
दीवउ = देना – ७४,
दीवह = द्वीप – ५३५,
दीवि = द्वीप में – २०१,
दीषा = दीक्षा – ५३७,
दीसइ = दिखाई देना – ३२, ३६,
…………आदि,
दीसहि = दिखाई देना – ६३, २६३,
दीह = दीर्घ – ६७, २२६,
दुइ = दो – ६१, १८४,……आदि
दुइजइ = दूसरे – ३४०,
दुइसइ = दो सो – ५५०,
दुख = कष्ट – २०७, २०६, २५८,
४०५, ४१२,………आदि,
दुखह = दुख – ४०४,
दुखी = – ३२,
दुखु = – २,……… आदि,
दुज्जण = दुर्जन – २१,
दुठ = – ४२५,
दुहर = भयकर – १६४, ५३८, ५४७,
दुमह = दोनों में से – ४२०,
दुल्लहु = – ४२६
दुव = दो – ५०५,
दुविह = – ४८५,
दुह = दुःख – ६, ६,…… आदि,
दुहहरण = दुःख हरण – ४,
दुहिया = दुःखिता – २२२,
दुहीं = दुःखी – ५०४,
दूज = – ४४५,
दूत = – ३६८, ४६२, ४७०,
………आदि,
दूतरु = द्रुत – १६३,
दूमहि = दोनों में – ४२२,
दूवइ = दोनों – ३१६,
दूसहु = दुःसह – ४५४,
दूसिउ = – ४४८,
देइ = देना – २०, ४५, ५०… आदि,
देउ = देव –……३, ५४,…… आदि,
देखइ = दिखाई देना – ११८,
देखणइ = देखने – १६३,
देखत = देखते ही – १५५, १६०,

निवासी – ....
नीरंद = नरेन्द्र, राजा – ४१७,
नरु = मनुष्य – २०३, २१४,
नवइ = नमस्कार करे – ४७३,
नवऊ = नमस्कार करता हूँ – १०,
नवजोवणी = नवयुवती – ७५,
नवरस = – २७२,
नवरंग = नवीन रंग – १७१,
नवि = – ४५५,
नसिरउ = निकला – २३५,
नहीं = – ४३२, ४८३,
नाइका = गायिकायें – ६०,
नायिकाए – १२५,
नाइकु = नायक – १६३,
नाइसि = रात्रि – २२३,
नाउ = नाम – ६२, ३१७, ३२१,
३२२, ५४०,
नाक = नालिका – ६६, ३७८, ४४८,
नागु = – २३२,
नागे = – १८५,
नाटकु = नाटक – ३२७,
नातरु = नहीं तो – १४७, १६२,
नाद = स्वर, आवाज – ६६, ३२८,
नाम = – १८५, २६६, ३८७,
नामु = – २५६, ४५४,
नामें = नामकी – ४६,
नायरु = – ४५०,
नायवंतु = नीतिवाला – ८८,
नारि = नारी, स्त्री – ७५, ८३, ८४,
नारिस्थु = ... – ४३०,
नारिंग = नारंगी – १७१,
नारी = स्त्री – १०८, ३३६, ३४४,
नालियर = नारियल – १७०,
नावइ = नमाये हुये – ६७,
नाहु = नाथ – १५५, ३०४, ३१२,
३१५,
नाहि = नहीं – ३०४,
नाही = नहीं – ४७, ६१, १३०
१६४, ...
नाहु = नाथ – १६६,
निकरहि = निकले – १६५,
निकल = चला – ३३८,
निकले = – ४०६,
निकाली = निकालना – २२०,
निकिठी = निकृष्ट – ४०३, ४८२,
निकुताहि = बिनाकिसीकमी के – १०४,
निकुंभ = – ४६१,
निगंथु – निर्ग्रंथ – ५१८,
निछइ = – ४६४,
निछउ = निश्चय – ५११,
निछम्मु = निश्छिद्र – ५११,
निछय = निश्चय – ७२,
निज = अपने – १६०, ३३०,
निठाले = निठल्ली – १६२,
नित = नित्य – ४७३,
निधान = नीचा – ३७८,
निपुंसकु = नपुंसक – १६५,
निम्मल = निर्मल – ५१,
निमित्तु = – ५१२,
निय = निज – ८१, १३४, १५४,
.........आदि
नियकंतु = प्रिय-पति – १५६,
नियउ = निकट – ५४१,
नियम = कायदा – ४१८,

नियमगु = निश्चित मन में – ५४,
नियाण = निदान – २६३, ४८०,
नियरु = निश्चय – ३४६,
नियंवणि = नितंबिनी – ५४३,
निरकरइ = निश्चय रूप से करना – ३५८,
निरक्खहि = देखना – ४३१,
निरखे = देखे – ३५३,
निरमंतु = – ५१८,
निरबाली = उलझने वाली – ३३६, ३४१, ३४३,
निरवासु = न रहने योग्य – ३४७,
निरविस = विष रहित – …………
निरालउ = – ४७६,
निरु = निश्चित ही – १८, ५२, ५३, ६८, १८६,………आदि,
निरुत = – ४६७,
निरुत्तु = – ५५१,
निरुभासि = आभास – ५४२,
निरुहउ = उदासीन – ५४०,
निलउ = – ४८६,
निवडइ = व्यतीत होना – २२३,
निवसइ = रहना – ४६,
निवाणु = निदान – ३५४,
निव्वाणु = – ५५१,
निवात = नवनीत – ४१२,
निवारइ = दूर करना – २०६,
निवारिउं = मना करना – ………
निवियप्पु = निर्विकार – ५४६,
निस = रात – ३१५,
निसाण = निशाना – ४५३, ५०३, ५१५,

निसि = रात्रि – २०३,
निसिभोज = ५१८,
निसुण = सुनो – ११६, २६१,
निसुणहि = सुनो – ८५, ४७५,
निसुणइ = सुनकर – ३६५,
निसुनहि = सुनो – १०८,
निसंगु = निःशंक – २३२,
निसुंमहु = मार डालना – ४०४,
निहचैं = निश्चय से – १६७,
निहाणु = निधान – २६२, २८८,
नीकउ = अच्छा – १११, १५०, २३४, २६५,…… आदि,
नीकी = अच्छी – २२४,
नीको = अच्छा – ११२,
नीत = – ५०७,
नीद = निद्रा – १६०,
नीदउ = निन्दा करना – २१६,
नीर = पानी – ११४,
नीरु = नीर-पानी – ३६८,
नीरह = जल में – ३४१,
नीलामणि = – ४४५,
नीले = नीले वर्ण वाले – ६३,
नींव = नींबू – १६६,
नीसरइ = निकली – २००, २२६, ४५६,
नीसरयो = निकला – ३६६,
नीसरिउ = गये – १६७,
नेउर = नेवरी – ६१
नेत = नेत्र, एकरेशमी कपड़ा – ४६०, ५०३,
नेमु = नियम – २, ५२१,
नेवालउ = निवारिका – १७४,

नेहु = – ५२६,
नंदण = पुत्र,-नंदन – ६०,
नंदणवणु = नंदनवन – १५१,
नंदणु = पुत्र – २६१, ३१८,
नंदन = पुत्र – २५७,
नंदनि = पुत्री – ८६,
नंदनु = पुत्र – १५६,
निंद = निद्रा – २२४,
निंदइ = नींद में – २२७,
निंदा = – ५४६,
निद्राभूती = निद्राके वशीभूत – ३४३,
नींद = सोना – ३०७, ३०६,
नींदमणि = नींद में – ३११,
न्योंत = निमन्त्रण – १२०,
न्हवणु = अभिषेक – १५२,
न्हाति = नहाते हुये – १०२,

प

पइ = पहिले के – ५४१,
पइठ = प्रस्थान किया – १२८,
पइठउ = आना – ४१०,
पइठाण = प्रतिष्ठान – ४०६,
पइठिउ = पहुँचना – १५४, ४८८,
पइठी = बैठी – ३८४,
पइठू = बैठना – ८५,
पइमिति = परिमिति – ५३३,
पइरतु = तैर रहा – २६६, २८३,
३४२,
पइसरइ = प्रवेश करना – २०३,
४८६, ५३६,
पइसरहि = पास – ४५६,
पइसार = प्रवेश द्वारा – १६०,
पइसारि = प्रवेश – २६६,
पइसारिउ = पीछे छोड़ा – १६७,
पइसि = प्रवेश कर – २२८,
पउ = – ५५१,
पउमप्पउ = पद्मप्रभ – ४,
पउमराइ = – ४४५,
पउलि = पौल – ४५७, ४६०, ४६१,
पखालित = धोये हुए – ४६६,
पगार = प्राकार – ८७,
पच्चखु = प्रत्यक्ष – ४०, ४३३,
पचार = पुकार कर – २६२,
पचारहि = ललकारना – २१६,
पचारि = पुकार कर ३५२, ४५६,
पच्चारि = प्रताडना – १३०,
पच्चारिवि ललकारना – २२७,
पछण्णु = प्रच्छन्न – १५४,
पछतावउ = पश्चाताप करना – २२०,
पछिम = पश्चिम – ४६६,
पज्जोवहि = प्रकाशित करना – ५४२,
पटतरइ = तुलना – १०२,
पटृय = – १०६,
पटवा = रेशमी वस्त्र बुनने वाला –
४३,
पटोली = ... – ४११, ४६०,
पटोले = रेशमी वस्त्र – १०३, ६१,
५०३,
पटोलो = ... – ४२६,
पट्ट = ... – ११२,
पट्टणि = नगर – ३४४,
पट्टिया = पटिया – ६६,
पाठइ = भेजना – १४७,
पठवउ = प्रेषित किया – १३२,

पठाइ = भेजना – ८२,
पड़ = पट-चित्रपट – १०५,
पड़इ = गिरकर – ६२, २२६, २४२,
३६४,
पडतव = पड़ने पर – ४६१,
पडयै = देना – ३३७,
पडहि = – २४६,
पडही = पटही (बाजा) – ३८०,
पडाइ = गिर पडा – ३४०,
पडाइरइ = ······· – १६१,
पडि = चित्रपट – १०४, १०६,
पडिउ = पडना – ७६, १३४, १३६,
१३७,·········आदि,
पडिगाहिं = ············ – ५३१,
पडिघडंती = गिराकर – १५७,
पडिमाइ = प्रतिमा – ५२३,
पडियउ = पड़ा – २०५,
पडिहार = प्रतिहारी – ४६७,
पडिहारु = ············ – ४६८,
पड़ी = गिरी – ३१, ५५, ४२७,
पडु = चित्रपट – ············
पडे = पड़ना – ४०८,
पढ़ण = पढ़ने के लिये – ६३, १२६,
पढ़त = पढ़ते हुये – ६५,
पढ़मु = ············ = ५३४,
पढ़िउन = नहीं पढ़ा है – २०,
पणवइ = प्रणाम् करते हैं– १५, ८६,
पणवउ = प्रणाम करता हूं– ३, २८,
पणमउ = प्रणाम करता हूं–११, १२,
पणसइ = – १६६,
पणाठी = नष्ट करना– ३२३,
पणोत = प्रति– ५०७,
पत = – ३६२,
पतइ = पात्र– २०४,
पताका – – १६२,
पताल = पाताल– २४३,
पतालहि – पाताल– ३६७,
पतिवारु = विश्वास– ३०३,
पत्ति = पत्नी– ५५,
पतीजइ = विश्वास– ३६६,
पद = – ५२०,
पदमणि = पद्मिनी– १०२, २७४,
पदमावती = पद्मावती देवी – १०,
२७३,
पदारथ = वस्तु (रत्न)– ८६,
१३२, १३५,
पदार्थ = – १८७, २८६,
पदोलि = मजबूत– १७०,
पन्न = – २८६,
पभणइ = कहने लगा– ४७०,
पभणेइ = ,, – १३३,
पभणेवि = ,, – १६,
पभणेहि = ,, – २६३,
पमाण = प्रमाण– २४,
पमाणु = प्रमाण– २६०, ५५०, ५५३,
पमुह = – ४२६,
पय = पद, चरण– ८, १४, २५,
१६६, ५२४, ५३०,
पयड़ = प्रकट– ६०,
पयडंतह = प्रतिपादित करना– २१,
पयडंति = प्रकट करती है–२८०,
पयत्थ – पदस्थ– ५२२,
पयदल = पैदल– ४५२,
पयपाइ = पद पाना– १६२,

पयपंच = पंच पद (पञ्च परमेष्ठि)– २५३,
पयार = – ५२४,
पयासहि = प्रकाशित– ३७१,
पयसित = प्रवेश होकर– ३५४,
पयी = पैरों में– ६२,
पयंड = प्रचण्ड– १९४,
पर = अन्य, लेकिन– ४२, ४७, १११, .१६४ आदि
परऐमिय = परदेशी– २२३,
परकम्म = पराक्रम– ३६२,
परखि = परीक्षा– ८१,
परछण्णा = छिपा हुआ– ३७१,
परछनु = प्रछन्न, छिपकर– ३०८,
परजा = प्रजा– ३५, ३९९, ४७१,
परठइ = प्रस्थापित किया– ५०७,
परठइय = भेजना– ४२२,
परणाइ = विवाह करना– २३६,
परणारि = परस्त्री– ३५,
परणी = व्याही, विवाह किया– ३६०,
परणेइ = विवाहना– ३८०,
परतह = प्रत्यक्ष– ३२,
परतिय = दूसरी स्त्री– २१८, २५७,
परतिषु = प्रत्यक्ष– ४२४,
परतीर = समुद्रपार– १७६, १७६,
परतु = – ४२७,
परतूस = प्रतोष, सन्तोष– ३०१,
परदव्वह = परद्रव्य– ६८,
परदेश = – ४९२,
परधान = प्रधान– १८८,
परनारि = परस्त्री– ६८,
परम = – ५३८,
परमप्पउ = परमात्मा– ५४६,
परमप्पा = परमपद– ५२१,
परमेठि = परमेष्ठि– ५२, ४७३, ४८७, ४९३, ४९४,
परवाणि = प्रमाण– १०३,
पखालि = धोना– ५३८, ५४७,
परलोप = परदेश– २२२,
परसइ = स्पर्श करना– ८,
परसन्नो = प्रसन्न होओ– १६,
परह = दूसरों की– ५०,
परहस = प्रसन्न– १४५,
परहमु = परिहास– २२२,
पराई = दूसरों की– १४१, २१४, ३६५,
पराण = प्राण– २५२, ३०४, ३१४, ३५७,
परि = गिरना– २४१, ४०२, ४९७,
परिखा = खायी– ४५८,
परिगहु = विश्राम– ३५०, ४६०,
परिजा = प्रजा– ४५६, ४५७, ४५८, ४७०, ५०५,
परिठइ = रखना– ३३४,
परिठविउ = परिस्थापित– ६६,
परिणइ = परणाना– ३४९, ३७२,
परिणाई = ...– ४४४,
परिणाम = नतीजा– ३७६,
परिणामु = नमस्कार– ५१५,
परिणावहि = विवाह करो– २८४,
परिणाविय = विवाह किया– २८५,
परिणिय = विवाही– ३९०,
परिणेइ = परणी, व्याही– २५६,
परितहि = पड़ते ही– १६६,
परिपुण्ण = परिपूर्ण– ५०६,

फ

ब

भ

भत्त = भक्त = ६८,
भमइ = घूमना – ३२६,
भमत = भ्रमण करना – ८५,
भमिय = फैलना – ४५,
भमंतु = – २२६,
भय = डर – ३४६, ३५६,
भयऊ = हुआ – ६०, ………आदि,
भयो = हुआ १२३, ………आदि,
भरइ = भरा – २६८,
भरण = ………… – ४८१,
भरतार = स्वामी – ३०४,
भरलइ = भरलिये – १८४,
भरह = भरत – ६४,
भरहखेत = भरत क्षेत्र – ३०,
भरहि = ……… – १८६,
भराति = भ्रांति – ५११,
भरि = भर – ६८, ………आदि,
भरिउ = भरा – ४०५,
भरिथालु = थाल भरकर – ४६४,
भरी = भरना – ८७, आदि,
भलउ = भला = ३५३,
भलि = अच्छा – २०४,
भली = सुन्दर – ८५, आदि,
भले = ………… ४४१,
भलौ = सुन्दर – ३५५,
भव = जन्म – १६६, ३५५, आदि,
भवउ = – ५३८,
भवकूवि = भवकूप – ५२४,
भवण = भवन – ४१, आदि,
भवणु = जिन-मन्दिर – १५२, आदि,
भवमल = – ५२०,
भवियउ = भव्य – ३६१, ४३८,
भवियणइ = भव्यजनो – २५६,
भवियहु = भव्य – २५०, आदि,
भव्व = भव्य – ५०, ५२०,
भव्वु = भव्य – ५१२,
भाइ = भाव – २८, आदि,
भाउ = भाव – ६, आदि,
भाग = भागका – ५३२,
भाज = भागती – ३५६,
भाट = भाट – ३८०, ५०३,
भातु = भात – ४२४,
भादव = भाद्रपद – २६,
भामरि = भ्रमरी – ५३०,
भामादे = – २७१,
भारती = सरस्वती – १६,
भालु = भाल – ३४५,
भाव = विचार – ६६, ७५,
भावइ = – ४८४,
भावण = – ५२१,
भावती = अच्छी लगती है – १५, २७६,
भाष = वचन – २२२,
भासहि = कहने लगे – १२६,
भासियहु = कहा हुआ – ५८,
भिक्खाहारी = भिक्षाहारी – ४०१,
भिख्या = भिक्षा – ३७२,
भिटाइय = भेंट कराना – १५०,
भिडाइ = भिड़ जाना – ३६८,
भिंभली = – ७८,
भिंभलु = विह्वल – ३४५,
भीड़े = – १२१,
भीतरि = अन्दर – ३६, ४६७, आदि
भुगति = भुक्ति – १६६,

भुजदंड = बाहु – ३५३,
भुजंगु = सर्प – २२४,
भुणसास = प्रकाश – २३२,
भुतउ = – २२७.
भुयंगु = सर्प – २२७,
भुवण = भुवन, जगत – २२, आदि,
भुव बल = भुजाओं का बल – ६५,
भू = भूमि – ३४६,
भूख = भूखा – ६२३, ५०२,
भूंजिउ = भोगना – ३७६,
भूपाल = राजा – ३२७,
भूलिवि = – ७८,
भूवणाहि = भुवन – ३७०.
भूवित = भूषित – ४११,
भेउ = भेद – ५२, ... आदि,
भेजंत = – ४५७,
भेट = भेंट – ३२४,
भेटण = भेंट – २६३,
भेटणि = भेंट के लिये – ४६४,
भेडक = भीरू – ३५३,
भेय = भेद – २८८, आदि,
भोग = – १२७, आदि,
भोगमति = भोगमती – २७२,
भोगवइ = भोगता था – २०२,
भोग विलासनि = भोगविलासिनी – २७४,
भोगहि = – ५०७,
भोगु = भोग – १६६,
भोजन = – ५०२,
भोय = – ५१२,
भोयण = भोजन – ३७२,
भोलइ = भोला – २११,
भोलउ = भोला – ४०८,
भंग = विघ्न – ३४६,
भंजणु = भंजन, नष्ट – ३४६,
भण्डार = खजाना – २०२,
भंडारहं = भण्डार को – १३३,
भंडारिउ = भंडारी – १३३,
भंभापाटण = – १६६,

म

म = नहीं – ३०३, ३०६, ...आदि,
मइ = मेरा – १६, ४१, ... आदि,
मइगल = मद गलित – ४५१,
मइमेहा = मतिमेध – ५०६,
मइल = मलिन – १६८,
मउ = मद – ३६,
मउण = मौन – ३६७, ४६१,
मउणवउ = – ४६२,
मउरउण = मुकुट बिना – ३६,
मकार = 'म' से आरम्भ होने वाली चीजों के नाम, मक्कार (बदमाश) – ३६,
मक्खरु = – ३६,
मगधदंण = – ४५६,
मगर = – ३६७,
मगरमछ = – १६४,
मगह = मगध – ३१,
मचकुंद = – १७३,
मच्छ = – १६५,
मछ = मच्छ – ३६७,
मछरु = मत्सर – ३६,
मछिंदु = मछंद – ३६,
मज्ज = मद्य – ५१८,

मज्झि = मध्य – ३०, १५०, २५३, ... आदि,
मज्झु = मुझे – २८, ... आदि,
मझारि = में, मध्य, ८८, २२०,आदि,
मड़उ = मुंडी – २२५, ३६५,
मडु = मुंडा हुआ – ३७२,
मण = मन – २९२, ... आदि,
मणमथ = मनमथ (कामदेव)–५४१,
मणवयकरण = मन, वचन और काय – २५७,
मणहं = मन में – २२१,
मणहि = – २४७,
मणि = मन – २५, ५०, ...आदि,
मणु = मन – ५४, ५८, ६४, आदि,
मणुअ = मन – १५५,
मणुसु = मनुष्य – २६४,
मत्त = मात्रा, मस्त – २०, २२,
मत्तइ = माता से – १४६,
मतलोगु = मृत्यु लोक – २७,
मति = – २४५,
मतिहीण = मतिहीन – १८८,
मती = – ४४०,
मतैं = मतानुसार – १४८,
मथियउ = मथना – ३८४,
मन्दिर = जिनालय – ४२१,
मन = – २०६, ... आदि,
मनपुरी = मन को पूरा (संतोष) करने वाली – २७८,
मन भावती = – ५०८,
मनि = मन मैं – २४०, ३८४,
मनु = मन – ६७, ६८, ७२, ७५, ... आदि,
मनोहरु = मनोहर – १०८,
मय = मद – ३४५,
मयण = मदन (कामदेव) – ६८,
मयणदीउ = मदनद्वीप – १६७,
मयणसुन्दरी = मदन सुन्दरी – २७३,
मयमतु = मदमत्त – ३४७.
मयरा = मदिरा – ३६,
मयसार = मद सहित – ६४,
मया = – ४३, ३१५,
मयंक = चन्द्र – २२१,
मरइ =मरना – २०३,
मरगजमणि = – ४४५,
मरजिया = – १९२,
मरण = मृत्यु – ६, २६१, ३६५,
मरत = मरता – १२३,
मरविण = – ३६,
मरहि = मरना – १३८,
मराउ = मरजाऊँ – १५६,
मराल = हंस – १५.
मरि = मरी – ३६ ४४६, ५३५, ५४६,
मरु = मरकर – ५३६,
मरुवउ = मरुआ – १७३,
मरुहटी = मराठी – २७०,
मरैवि = – ५३४,
मलणु = मर्दन – ३६,
मलहारि = – ५२८,
मल्लिणाह = मल्लिनाथ – ७,
मलिणु = मालिन्य – ३६,
मसाणि = श्मसान – २२५, ३६५,
मह = में – ४२०,
महवणु = महत्वपूर्ण – ३६०,

मंत = मंत्रणा – २४८, आदि,
मंति = मंत्री – २०५,
मंतिहि = मंत्रियों – ३६६, आदि,
मंदर = महल – ३६,
मंदार = – १७४,
मंदिर = आवास, महल – ८६,
मंदोदरि = मंदोदरी – २७५,
मंस = मांस – ३६,
मंसु = मांस – ५१८,
मंत्र = मंत्रणा – ३६४,
मंत्री = मंत्री (सचिव) – २०३, ३६४, ४६३,

यह = यहां – ४३२, ... आदि,
यह रही = हरी होना – १६४,
यहि = – १३६,
यों = इस प्रकार – १७,

रई = रची – १६८, ...आदि,
रउद = रौद्र – ५२२
रखहि = – ४६२,
रचउ = रचना करना – १६,
रचीय = – १२५,
रचे = – ४५७,
रजउ = – १८१,
रडइ = रुदन – १५५,
रड़ियइ = रोने लगी – १५४,
रणि = युद्ध में – ५३६,
रणु = – ४८०,
रतन = – १३५,
रतिपति = कामदेव – ५४३,
रथनुपुहि = रथनूपुर – २६७,
रमइ = रमने लगे – ७३, ७६,
रमायणु = रामायण – ६४,
रउय = रचना करना – २५, ५५०,
रयण = रत्न – ४१, १३४, आदि,
रयणनु = रत्न को – २६८,
रयणह = – ४६०,
रयणाइ = रत्नादि – ५२३,
रयण्णह = रत्नों को – २४१,
रयणि = रात्रि – ३०७,
रयणी = रत्न – २३६,
रयणु = रत्न – २६२ ३७३, आदि,
रयवर = काम – ५३६,
रल्ह = 'कवि का नाम' – १५, आदि,
रविधाम = सूर्य के प्रकाश में – ३७६,
रस = – ७६,
रसण = रसना – २८८,
रसु = रस – २८८,
रष्या = रक्षा – ११,
रहइ = – १५१, १५८, आदि,
रहणु = रहना – २५४,
रहस = सुख – १६५,
रहहि = रहना – २८८,
रहावइ = सान्त्वना – ३१६,
रहि = – ४६१,
रहि = उरमा – २७, ...आदि,
रहिय = रहना – २५८, ...आदि,
रहीं = रहना – ३३१, ... आदि,
रहु रहु = चुप रहो – २१५, २३०, २६६
रहे = रहना – १३०, ३४८, आदि,
राइ = राजा – १६२, ...आदि,

राइचंपउ = रायचंपा – १७३,
राइण = राजा – २१०,
राइसिहि = राजसिंह कवि – २००,
राइसिहु = राजसिंह (रल्ह कवि)–८,
राइसीह = राजसिंह – ४३६,
राइसुन्दरि = राजसुन्दरी – २२२,
राउ = राजा – ४, ...आदि,
राउमति = बुद्धिमान राजा – ४६३,
राख = रखी – ४६०,
राखहि = रखता है – १४०,
राखहु = रक्षा करो – ४५६,
राखि = छोड़कर – २६२,
राज = राज्य – १२७, ४१३,
राजथाणु = राजा का स्थान – ४०,
राजनु = – ४६५, ४६६,
राजभोग = – ५११,
राजा = नृपति – ४०, ४१,...आदि
राजासइ = राजा स्वयं – ३५१,
राजु = राज – ३२,......आदि
राणि = रानी – २६८......आदि
राणी = रानी – २०२..... आदि
रातहि = रात्रि को – ५०२,
राति = रात्रि – २१०, २९९, ३००,
रामा = – २७८,
राय = राजा – २२३......आदि
रायणु = राजन् – २३८,
रायरहु = राजा – ४८०,
रायसिउ = राजसिंह – २६८,
रायसिंह = ,, – ५४७,
रायसोय = राजा अशोक – २६५,
रायस्यो = राजा से – २१६,
रालि = डालना – २४१......आदि
रावत = राजा – ४५२,
रावलि = राजा – ४२२,
रासि = समूह – ७, ८३, ११६,
राहणु = – ५२४,
राहाइ = रहा – ३४०,
राहु = – १३,
रिसउ = – ५२७,
रिसहाइ = वृषभादि – १,
रिसहु = वृषभनाथ – १,
रिसि = ऋषि, मुनिवर – ५८, ६२,
रिसीस = ऋषियों के ईश – ३,
री = अरी – २०७,
रीती = – ४४२,
रुउ = रूप – ५३८,
रुदन = – २०८.
रुधित = धारण किया – १५४,
रूप = सौन्दर्य – ८४, ...आदि,
रूपजा = रूप में – ८३,
रूप निवासु = रूप का निवास – ४१,
रूपरासि = रूपराशि – ६०,
रूपसुन्दरी = – २७३,
रूपहि = रूपकी – ८३,
रूपाइं = – २७१,
रूपिणि = – ४२६
रूपु = रूप – १००, १०४,
रूलइ = हिलना – ६८,
रूव = रूप – ४६, ६०......आदि
रूवडउ = सुन्दर – १६६......आदि
रूवड़ी = रूपवती – १११, ११७,
रूव मुरारि = रूप मुरारि – २७१,
रूवह = रूपवान – ४०१,
रूवहिं = रूप की – ११६,

रूसि = क्रोधित – ३०६,
रेख = रेखा – २७२, ४७२,
रेवती = रानी का नाम – २७५,
रेह = रेखा – ६४......आदि
रोपि = रोपकर – ११५,
रोपिउ = खड़ा किया – १६२,
रोपियउ = – ४४३,
रोय = – ३००,
रोल = रोला (शोर) – ४५५,
रोवइ = रोती है – १५४......आदि
रोवहि = " – २१५......आदि
रोवंती = – २२२,
रोसु = रोष – २१,
रोहणि = रोहिणी – १०,
रोहिणी कंतु = रोहिणी देवी के पति, चन्द्रमा – १२
रंग = – ६३,
रंजणु = रंजायमान – ४५,
रंजावहि = रिझाने – ३३५, ४०१,
रंजि = रंजायमान (प्रसन्न) – २१,
रंभ = रंभा – ३७६,
रंभादे = – २७३

ल

लइ = लिया – ७६, ८०......आदि
लइकर = लेकर – २१२,
लइजाइ = लेजाना – १७५,
लइरु = लेकर – ४१६,
लए = लेना – ४०७, ४५१, ४६१,
लक्खण = लक्षण – २०,
लक्षण = चिह्न – ५६, ८१, ४२८,
लखण = लक्षण – ४२३,
लखु = लक्ष – २३,
लगण = लग्न – ३५६,
लगु = लगना – ६७, ४५६,
लगुण = लग्न – ११७, १२४,
लगनु = मुहूर्त – ११२,
लगि = लगो – ५४७,
लगिउ = – ४६६,
लछि = लक्ष्मी – १३६, ...आदि,
लछी = लक्ष्मी – ५३८, ...आदि,
लजालु = लज्जाशील – ६६,
लज्जविणु = विना लज्जा के – ६८,
लड़ि = – ४३४,
लइउ = प्राप्त किया – २५६,
लयउ = लेकर – ५३, ६४, आदि,
लये = लिये – ४५१,
लयो = लिये – १३७, आदि,
ललाट = भाल – ६८,
ललित = पली हुई – ३०६,
लवइ = कहना – ४७६,
लवणिउ = नवनीत – ५१८,
लवणोवहि = लवणोदधि – ३०,
लवंग = लौंग – १७१,
लहइ = प्राप्त करना – २६४, आदि,
लहय = लेकर – ५३,
लहर = – २४७,
लहरि = – १६४,
लहिउ = प्राप्त किया – ५०७,
लहिय = प्राप्त करना – ५२६,
लाइ = लाकर – ८, ३६६, ४०३,
लावइ = – ३००,
लाकड़ी = लकड़ी – ३७७,
लाख = लक्ष – ७२, ८२, आदि,

लाखु = पं० लाखु – ५५०,
लागइ = – १४८,
लागउ = लगता हूँ – १०, ५१६,
लागि = स्पर्श कर – २४२, २५५,
लागी = – ११४, २४६, ३१७,
लागु = लगा – २३२,
लागे = लगे – ३६६,
लाग्यो = – २२७, आदि,
लाड़ि = लाड़ी – २७०,
लाणी = – ४४२,
लापड़ = लंपट – ४७७,
लापसी = ········· – ४१२,
लयइइ = लगाना – १४३,
लाव = – ७५,
लावऊ = लाओ – ४७४,
लावण्ण = मुन्दर – ७८,
लावत = – ३५५,
लावहि = लाना – ३०६,
लावै = लगावै – ७२,
लिउ = लिया – २५२,
लिखइ = – १४६,
लिखत = लिखते हुये – ६५,
लिखतह = लिखते ही – १०४,
लिखी = लिखी हुई – ११७,
लिय = लिया – ४७२,
लिलाडेहि = ललाट पर – ७७,
लिलार = ललाट – २६०,
लिहाइ = लिखाकर – ११२,
लिगु = – ५४७,
लीए = – १८५,
लीज = लेना – ४८, ३२४,
लीणु = लीन – ४७०,
लीय = लेकर – ३३१,
लीलारस = भोग-विलास – ·········
लीलि = निगलना – १६५,
लीव = बालक – ६६,
लेइ = लेकर – ७६, १४७, ३७४,आदि
लेउ = – ४७०, ४७८,
लेख = – ११६,
लेखइ = समझना – ३४७,
लेखि = पत्र – १४६,
लेण = लेने को – १४६, ४२१,
लेत = लेना – ४११,
लेपसो = लेप से – ३३२,
लेहि = लेते हैं – ३४, १६२, आदि,
लेहु = – ८१, ४६६, आदि,
लोइ = लोग – ३२, आदि,
लोउ = लोग – १६६,
लोग = लोक – ४०३,
लोक = संसार, लोक – ८७,
लोकु = लोग – ३५६,
लोग = – २३५, ३११, आदि,
लोगु = लोग – ११६,
लोगुवागु = जन समुदाय – ३६६,
लोचण = लोचन – २८२,
लोटणी = – ४६८,
लोणु = नमक – १४०,
लोपहि = छिपाना – ३२२,
लोभिउ = लोभी – ३६६,
लोय = लोग – ४२, ३६६,
लोयण = लोचन – ४०१,
लोह टोपर = लोहे की टोपी – १६२,
लोहे मार = लोहे की मारी – ······
लंक = कटि – ६२,

लंपट = लंपटी – ४०३,
लंपटहु = लंपटी – १२८,
लंतिय = लिये – ६०,
लंव = – ४४६,

व

वइ = – ४८३, ५४६,
वइठ = बैठकर – १२२, ५४१,
वइठउ = बैठी – ४२३,
वइद = वैद्य – ३७,
वइराइ = वैराग्य – ५१२,
वइरिउ = वैर – २२६,
वइल्ल = बैल – १८८,
वइसइ = – ४६०,
वइसरइ = बैठ गया – १२६,
वइसारहु = बैठाना – ४२०,
वइसारि = बैठाकर – ११०, ११६,
वइसि = बैठकर – ७७, २२३,
वउ = वपु (शरीर) – ६६,
वउलसिरी = – १७३,
वकार = 'व' से प्रारम्भ होने वाली–३७,
वछ = वत्स – १४४, ३६२,
वज्ज = वज्र – २८८,
वज्जरणी = वज्रणी – २८८,
वज्जरिउ = – ५२२, ५२४,
वज्र = इन्द्र का आयुध – ३१३, ३२८,
वज्र = – ४७७,
वड़ = – ४७६,
वडइ = बड़ी – १४३,
वड़रण = गिरना – ५१२,
वडवानल = समुद्र की आग – ......
वडवार = वडी देर.......................
वड़हि = बढ़ते थे – ४६१,
वड़ी = बहुत – २६६,
वढ़े = – ४६५,
वरण = वन – ७७, ३१२, ३४७, ५३०,
वणजी = – ५३०,
वण्णं = – ४४०,
वण्णइ = वर्णन करना – १००,
वणउ = वर्णन करना – ४००,
वणजारे = व्यापारी – १८७,
वणमहि = वन में – ३२७,
वणवाल = वनपाल – ५१३,
वणसई = वनस्पति – ५१४,
वण्णि = – ६५,
वण्णियइ = वर्णन – ४०, ६०,
वणिकु = महाजन – ३७,
वणिज = व्यापार – १७६,
वणिजहु = वनज, व्यापर – ४?०, ४१५
वणिजारिन्हु = – २४८,
वणिजाए = व्यापारी – १८६, १६१,
वणियार = – ३७,
वणिवर = व्यापारी – १७७, १६१,
वणिवरु = व्यापारी – १६६, ४७२,
वणिवार = वणिक् दल – २३६,
वणिंद = वणिकों में इन्द्र – २५४, (जिनदत्त)
वण्णी = – ४३३,
वण्णु = वर्ण – ६२,
वत्त = बात – ६८, २२१, ३६१
वत्ति = बात – ४६५,
वत्तीसहु = – ४३३,
वत्तु = बात – २१३,
वत्थ = वस्तु = ३१,

वहे = – ५००,
वहेड़ = १७२,
वहेड़े = – ४१६,
वहोडइ = हरी – ३६३,
वृप = वृक्ष – १६०,
वाइ = बावड़ी – ८७, १५६,
वाइणो = लाहना – ५३१,
वाईसइ = २२ – २६,
वाए = – १६६,
वाखर = पशु विशेप काठी – १२१, १८२, १८४, २०१
वाखरु = – १७९, १८९,
वाचि = – ११६,
वाजू = वाजा – २४८,
वाजणे = बाजे (वाद्य-यन्त्र) – ६१,
वाजहि = वजना – २८०,
वाजेवि = बजने लगे – १२०,
वाट = मार्ग दर्शन – ४५४,
वाड़ा = – ४५८,
वाड़ी = वाटिका – ३४, १६०, आदि,
वाढ़ = बढ़ई – ३७, ६३,
वाणहि = – २२१,
वाणि = वाणी – १४, ४५, आदि,
वाणी = वाणी – १४,
बाणु = – ३७,
वामण = ब्राह्मण – ४४,
वात = बात – ११६, ३३०, आदि,
वाता = वार्त्ता – २२४, ४०२,
वातु = वार्त्ता – २०९, आदि,
बादि = – १८४,
वाघउ = – ४७४,
बाघे = – ४९५,

वापह = पिता – ५०२,
वापहि = पिता – ५०१,
वापु = पिता – १३७, आदि,
वामण = ब्राह्मण – ३२१,
वामणु = ब्राह्मण – ११५,
बाय = वायु – १२,
वार = बार, मार्ग, देरी – १४१, २९९
वारवार = बार २ – ३७३,
वारस = बारह (१२) – १९०,
वारह = बारह (१२) – ८५, आदि.
वारि = द्वार – १५७, आदि,
वारिठिया = – ३७,
वरिस = – ४३६,
वारु = समय – २१७, ४४३,
वारुणु = – २२६,
वाल = – १०५, ४७६, ५१३.
वालउ = बाला, वालक – १७४, ४१५
वालम = स्वामी – ३०५,
वालही = वल्लभा – २७९,
वालहे = वल्लभ – ३०३,
वाला = – २७८,
वालि = बालकर – १५६,
वालिय = वाला – ३८२,
वाली = नवयुवती – ३४१, ३४३,
वावण = बोना – ३०७, ३४२, आदि
वावणइ = बोना – ३४९,
वावलउ = पागल – ३२९, ३३२,
वावली = बावली – ३०६,
वास = – ४४३,
वासणु = पुरस्कार का वस्त्र – ३३१,
वासरि = दिन – ३४२,
वासव = इन्द्र – ३५,

विनवो = विनती – ४१६,
विनु = बिना – ४६, ३१४, ३१५,
विनोद = रंजन – ६६, २८०, ३२८,
विघ्न = – ५५३,
विन्निवि = निकलती हैं – ५४२,
विपरितु = विपरीत – ३२६,
विप्पह = विप्र – ११२,
विप्पु = ,, – १०५, ११२,
विप्पुरिउ = विस्फुरित – ३०,
विप्र = – ४४१,
विभ्रम = भ्रम – २८०,
विभूषित = भूख रहित – ३२५,
विमल = विमलनाथ – ५, ११०, आदि
विमलमइ = विमलमति (ती) – १०१, १५४,
विमलमति = ,, – ११७,
विमलसेठ = विमलसेठ – ८६,
विमला = – ४५०,
विमलाणगु = – ५२७,
विमलामइ = विमलामती – ४४४,
विमलामति = ,, – १०६,
विमलामती = ,, – ३३८,
विमलासेठिणी = विमला नाम की सेठाणी – ८६,
विमलु = विमल – १२४, ३१६, आदि
विमलुमनि = विमलमती – ३२७,
विमाण = विमान – २६६, २६७,
वियखल = विचक्षण – ३४१,
वियसाइ = हँसकर – १६३, २०६,
वियसिउ = विकसित – ३६८,
वियसंतु = ,, – १५१, आदि,
वियाधि = व्याधि, बीमारी – २०३,
वियारि = विचार – ५२१, ५२३,
वियूर = पूरित – ३६,
वियोड़ = विवेक – ५४०,
वियोग = विरह – १७७,
विरति = वैराग्य – ६४, ६८,
विरध = वृद्धि – ६३,
विरयउ = विरचित – ५५०,
विरलउ = विरला – २१४,
विरलौ = – २१४,
विरसोरा = विजौगा – ४१३,
विरह = वियोग – ४००, ...आदि,
विरिणि = विरहिणी – ३१६,
विरुद्ध = विरोध में – ३५२,
विरुद्धु = विरुद्ध – ३५०,
विरूप = असुन्दर – ३२८, ४०३,
विलखवि = विलखना – ३०७,
विलखाइ = विलखते हुये – १२६, १३७, ...आदि,
विलखाणिउ = रोते हुये – २३६,
विलखियउ = – ४६८,
विलखीइ = रो-कर – २१०,
विलखौ = विलखना – ३५७, ४१८,
विलवहु = व्यतीत करना – ३००,
विलसाइ = भोगने लगे ....
विलसहि = विलसना – ४१३,
विलसंत = भोगता है – २६६,
विलाइवी = – १३३,
विलाउलि = वेनाकुल..........
विलाए = विलाना – ४०३,
विलावल = देश का नाम –१८६,
विलास = ... – ५०२, ५०४,
विलासगइ = विलास गति – १०१,

वीनयउ = विनती करना – ५४५,
वीपुमा = – ३०५,
वीयराउ = वीतराग – ५२,
वीयराग = „ – २५,
वीर = बहादुर – ७५, ...आदि,
वीरणाहु = वीरनाथ (म० महावीर) – ८,
वीरमदे = – २७६,
वीरराइ = – १६१,
वीरु = वीर – ७२, ...आदि,
वीरन्ह = वीरों ने – ७७,
वील्ह = – १८३,
वील्हे = – १८२,
वीस = बीस (२०) – ३६, ...आदि
वीसमइ = विस्मृत – २६२,
वीसरइ = भुलाना – ५०१,
वीह = बीभी – ३५३,
वुज्झि = ... – ५२१,
वुद्धु = बुध – १३,
वुरु = ... – ३७,
वुवा = ... – ४०८,
वुलाइ = - ३२०,
वुलाइय = बुलाना – २६१,
वुसि = राजा – ४५२,
वुह = बुधमान – ३७, ४६,
वुहयण = बुधजन – ५५०,
वूचे = बूचे – ३७८,
वूड़ = डूबना – १६५,
वूड़ि = „ – २४७,
वूड़िउ = डूबा हुआ – ७२,
वूड़िवि = „ – ३४१,
वूडं तिहि = – ५२४,
वूडयो = – २४८,
वूढ़ि = वृद्धा – २२२,
वेग = – २२८,
वेगहु = शीघ्र – २६८,
वेगि = „ – १६६, १६७, २०७,
वेचियइ = बेचना – १४४,
वेटी = बेटी – ३८१,
वेठि = बैठना – ४६, ४७५,
वेठिउ = घेर लिया – ४५६,
वेडु = बाल – ३५८,
वेणानयरु = वेणा नगर – १६६,
वेणालए = „ – १८४,
वेण्णि = दोनों – ११५,
वेघियउ = विह्वल – ७६,
वेर = – १७२,
वेल = – १७३,
वेलि = लता, – १५७,
वेला – १६८,
वेसा = वेश्या – ३७, ७०,
वैठिउ = – २२४,
वोधु = – ३२६,
वोल = – ३६४, ४७६,
वोलइ = बोले – ५८, १७८, ३०१,
वोलण = बोलने – ३४३,
वोलग = – ४६६,
वोलहि = बोलना – ३६८,
वोलु = बात – ७३, ...आदि,
वोले = कहना – ३७६,
वोलेइ = बोला – ३०६,
वोहथु = जहाज – १८४,
वोहु = बोध – ५३६,
वंछइ = चाहना – ४२, ७४, ...

वंदण = वन्दना – ३७,
वंदणु = बन्दनार्थ – ५१५,
वंदन = वंदना – ५१६,
वंदरा = – ३७,
वंदह = वंदना करके – १५६,
वंदि = ,, – २६१, २६२,
वंदिणीजण = बन्दी जन – ८८,
वंधइ = बांधकर – ३२६, ४७८,
वंधण = बंधा हुआ – ३४४,
वंधणी = – २८६,
वंधि = बांधना – ३५६,
वंभण = ब्राह्मण – ३७,
वंभणु = ,, – ३३५,
वंवालु = जोर शोर से – १७५,
वंसविद्धि = वंश वृद्धि – ६७,
व्यवहरइ = व्यवहार – ३५,
व्याकारण = – ६४,
व्याधि = व्याधि – ४४८,
व्याह = विवाह – ३२६,
व्योहार = व्यवहार – ३२,

श

शब्द = आवाज – १७५,
शरीर = देह – ११८,
शुक्लज्झाण = शुक्लध्यान – ५२२,
शुखु = सुख – ४१४,
शुद्ध = पवित्र – ५१४,
शुभ = ... – २८८,
शुहिणालु = दूत का नाम – ४६४,
श्रवण = श्रमण – ५०,
श्री रघुराइ = नाम – ३६५,
श्रीवसंतमाला = – २७६,

ष

षण-षण = क्षण २ – ३४४,
षोडसु = सोलह – २४,

स

स = वह – १५७, ३५८,
सइ = उनके, राजा – १, २८०, ३५०
सइहार = सहकार – १६६,
सउ = सौ – १६५, २००,
सउकु = उत्साह पूर्वक – ६०, १२५,
सउंघी = सस्ती – २०१,
सउरा = सब – ४०७,
सकइ = कर सकना = ३६२,
सक्कइ = – ५१६,
सकउ = सकना – १७८,
सकरू = शंकर – १०७,
सकहि = सकना – ३६३,
सकहु = ,, – ७३,
सकार = 'स' से प्रारम्भ होने वाले –
सकुटंवउ = सकुटुम्ब – ३२,
सके = ... – ४४०,
सखी = सहेली – १०२, २४५, २५६,
सग्ग = स्वर्ग – ३१, ५२८,
सग्गमोक्ष = स्वर्गमोक्ष – ५११,
सग्गवर = श्रवक – ५०७,
सग्गहि = उपसर्ग – ४८७,
सगि = ... – ५४७,
सगुणु = शकुन – ५७, ४४१,
सगे = – ४०८,
सजण = सज्जन – १११,
सजि = सजना – २५१,
सड़ि = – ४४८,

साहूर = साहूकार – ११८,
साहस = साहसी – २५८, ३८६, आदि
साहसु साहस – १३६, २४२,
साहि = सहारे – ३६७, ५३७,
साहिब्वउ = साधूंगा – ५२७,
साहु = सेठ – ३८, ५८, ११३, आदि
सांकरे = सांकले – १६१,
सांझौ = संध्या समय – २१७,
सिउ = से, सब – २६३, ४२६, आदि
सिऊ = – ३८,
सिखवय = शिक्षा व्रत – ५१,
सिखि = – ३८,
सिग्घु = शीघ्र – १५४,
सिगरी = सभी – १२१,
सिठ = प्रसिद्ध – १३,
सिद्धउ = सिद्ध हुआ – २५६,
सिद्धि = – २८७,
सिर = मस्तक – १५४,
सिरघ = शीघ्र – ४६७,
सिरहु = सिर पर – ६८,
सिरहु = ,, – १५३,
सिरि = सिर – २२८,
सिरी = – २६८,
सिरीखंड = श्रीखंड – ३७२,
सिरिगुण = – १८०.
सिरिमइ = श्रीमती – २२१,
सिरिमति = , – २५६,
सिरीया = ,, – २७, २५४,
सिरीयामति= ,, – २३६, आदि,
सिरु = सिर, मस्तक – ८, २२६, आदि
सिला = शिला – ३३३,
सिलारूप = शिला के रूप में – ३३५,
सिलाहु = शिला – ३३४,
सिवदेउ = – ५२८,
सिवपुरि = मोक्ष – ४,
सिहु = साथ – १०२, १६८, आदि,
सिंगारमइ = शृङ्गारमती–२८१, ३४२,
सिंघलदीपि = सिंघलद्वीप – ३६०,
सिंचण = सींचना – १६८,
सिंचि = सींचकर – १०६,
सिंचिउ = सींचना – १६६,
सिंदुबार = – १७४,
सिंह = प्रमुख – ४६५,
सिंहल = सिंहल – ३४०, ...आदि,
सिंहासण = – ४६०,
सिंहासणु = सिंहासन – ४१६,
सिंहुज = – २८६,
सीखिउ = सीखा – ६५,
सीखी = – ३३३,
सीधर = – ४४१,
सीमा = – ३८, ४७०,
सीयल = शीतल – ५,
सीयलक = ,, – १४,
सीयलु = ,, – ५,
सीया = सीता – ३६६,
सीरघु = श्रीरघु – ३८५,
सील = – ३८,
सीलवत = शीलवान – ६६, ४६६,
सीलु = शीलव्रत – १५७, २५१,आदि
सील्हे = – १८२,
सीवल = सेमल – २६०,
सीस = – ४३०,
सीसइं = – ३६,
सीसे = शिरस्त्राण – ४५७,
सीहहि = सिंह – ३५७,
सींग = – १८४,

सुमरइ = स्मरण किया – २५४, ३३४
सुमरणि = – ४८७,
सुमरत = स्मरण करते – २५२,
सुय = – २७४,
सुर = देवता – १०२, ५१४,
सुरगा = – २७२,
सुरतारि = सुरतारी – २७०,
सुरय = सूरत – २८०,
सुरह = स्वर्ग – ३६, २६८,
सुरही = सुरभित – १७४,
सुरा = – १६३,
सुरु = सुर, देवता – ७, २५३,
सुरुपाल = श्रीपाल – १८१,
सुरेख = शुभ रेखा वाली – ४६, ६५,
सुरेन्द्र = इन्द्र – २६८,
सुलखणु = सुलक्षण – ११३,
सुव = – ४६२,
सुवणु = सवर्ण – ४५,
सुविचार = विचारपूर्वक – ६०,
सुव्वस = – ३८,
सुवा = लड़की – २२०,
सुवास = सुगंधित – १६७,
सुविशाल = बड़े – ४५,
सुव्वि = – ३२८,
सुसर = श्वसुर – १४६, २४४ आदि,
सुसरु = ,, – १४६, २४४,
सुसरे = ,, – १५७,
सुसारि = सार – ५२३,
सुह = सुख – १३, ………आदि,
सुहगादे = – २७४.
सुहड़ = सुभट – १२४,
सुहणाल = जातिविशेष के योद्धा–४६०

सुहयर = सुख से – ५४५,
सुहवइ = – ५३२,
सुहसार =सुखसार – ३८,
सुहाइ = शोभा देना – ४५ ६३, आदि
सुहि = सुखी – ३६,
सुहु = सुख – २४५,
सुंड़ि = सूंड – ३५५,
सुंडु = ,, – ३४६,
सुंदरि = – ४३०,
सुंदरीय = सुंदरी – २२३,
सूकउ = सूखी – ३६३, ४६५,
सूकी = सूखे – १६५,
सूखे = ,, – २६०,
सूझइ = दिखाई देना – १६४, ४५३,
सूडिउ = सूंडी से – ३४५,
सूढु = – १८३,
सूती = सोगई – २२५, ३४३,
सून = सूना – ३१३,
सूनी = – १२६,
सूर = सूर्य – ३६, …………आदि,
सूरू = ,, – १३, २६६, ५५०,
सूवा = तोता – ६६,
सेज = शय्या – २१६,
सेठ = – ४८, ……आदि
सेठि = सेठ – ४५, ४६, ……आदि
सेठिणि = सेठानी – ५६, ……आदि
सेठिपुत्र = (जिणदत्त) – २३१,
सेतु = – १६३,
सेयंस = श्रेयांसनाथ – ५,
सेव = – ५१४,
सेवज = सेवा – २६८,
सेवती = – १७३,

सेव्वउ = सेवा करना– ………..,
सेवा = – ३२४,
सेष = शेष – ४५८,
सोइ = वही – ४८४, ………आदि,
सोउ = „ – २६६,
सोग = प्रशोक – २८५,
सोगु = शोक – १६५, ………आदि,
सोघरणी = घरना – १५३,
सोजि = उस – ६०, ………आदि,
सोतहु = सौत का – १८३,
सोतियहि = श्रोत्रिय – ३८,
सोनवती = – २७७,
सोने = स्वर्ग – १३५,
सोपुरण = पुनः – १८६,
सोभाष = सुन्दर वचन – २७९,
सोभित = शोभित – १४१,
सोम = चन्द्रमा – १३, आदि,
सोमदत्तु = सोमदत्त – १७०,
सोय = वही – ५८,
सोरठी = सौराष्ट्री = २७०,
सोलह = १६ – २८६, आदि,
सोवइ = सोना – ३०१,
सोवण्ण = स्वर्ण – २८२,
सोवरणु = सोने में – २३२,
सोवती = सोती हुई – ३१८,
सोवन = स्वर्ण – ८६, २७२, आदि,
सोवह = सोना – ३०२,
सोवहि = सुशोभित होना – ६८, आदि
सोवि = वह, सोना – १५४, …आदि
सोवंतिय = सोती हुई – ३०९,
सोहइ = शोभित – ८६, ……आदि
सोहउ = ,, – ३४६,
सोहहि = ,, – ९५, १०९,
सोहा = – ३८,
सोहियउ = शोभा देना – ४५,
सौ = – १०१,
सौवइ = सोना – २२५,
सोह्णो = सम्मुख – ३५३,
संक = शंका – ३८४,
संकट = – ४८४,
संखदीउ = शंखद्वीप – १९८,
संगहइ = संग्रह – ५४८,
संगुम = – ५१८,
संघ = – ५०४,
संघल = सिंहल – २००,
संघहु = संघ – ११,
संघात = समूह – १५९, २५५, ४८६,
संचिउ = संचय किया हुआ – ५४,
संजमु = संयम – २, ५२१,
संजाय = – ५३४,
संजुत = सहित – ४७, १०८, आदि,
संजुतु = संयुक्त – ४३७, ५२८,
संजूत्तु = ,, – ५६,
संजोइ = संजोकर – ४१२,
संत = शान्त – ३८, ……… आदि,
संतापु = संताप – १३६, १३७, १४२,
संति = – २४९,
संतिरणाह = शांतिनाथ – ६,
संतु = शांत होकर – १७,
संतुही = संतुष्ट – १७,
संदेहु = सन्देह – ३८२, ……आदि,
संपइ = सम्पत्ति – ४८, ….. आदि,
संपत्ति = वैभव – २,
संपय = संपति – १४४,

हरे = – ४४३,
हल्ल = हल्ला – १३३, ४५५,
हवइ = ... – ५१०,
हसइ = हंसते हुये – ३२९, ३३६,......
हसतिनचाहु = प्रसन्न हुआ – ११३,
हसहि = हंसना – ३३३, ३३४,
हसाइ = हसावे – ३३४,
हसाउ = हंसादू – ३३३, ३३७,
हँसि = हँस – ३३५, ४१७,
हसंतु = – ४३०,
हस्त = हाथी – १२२,
हहड़ाइ = अट्टहास – ३३५, ३३६.
हहि = है – ३३२, ३७१,
हाइ = – १५६,
हाउ = – ३७५,
हाकट = पशु विशेष – ४०७,
हाकि = हाक – ३५४, ४५३,
हाकिउ = हिलाया – ४६५,
हाट = दूकान – ५०३,
हाथ = हस्त, हाथी – २५, ...आदि
हाथहि = – २३०,
हाथि = हाथी, हाथ – ३५४, ...,
हाथिउ = हाथी – ३६०,
हाथिजोड़ि = हाथ जोड़कर – १६३,
हाथु = हाथ – ५६, ...आदि,
हात्थिउ = हाथी – ३४८,
हार = माला – १०६, ...आदि,
हारि = ,, – १३०, ... ,,
हारिउ = हार गये – १३०, ३३८,
हारिवि = हारकर – १३६, १४३,
हारूडोरू = हालडोल – ४२२,
हारे = ... – ....,

हाव-भाव = – २८०,
हासउ = हंसी – ३२९,
हाहाकारू = हाहाकार – २१५, ४२५,
हित = भला – १७६,
हियइ = हृदय – ३६८, ...आदि,
हियउ = ,, – ७६,
हियडइ = हृदय में – ५६,
हियड़ा = ,, – ३१३,
हियलोकणी = हृदय लोकिनी – २८७,
हीण = हीन – २०,
हीणवि = – ५५३,
हीणहं = असमर्थ – २०८,
हीणे = हीन – ३७४,
हीणंगु = – ४२९,
हीरा = – १९८,
हीरादे = – २७५,
हीरामणि = हीरे की मणि – ६७,
हुइ = होकर – २७, ...आदि,
हुइहइ = होगा – ११६,
हुई थी = – १६८,
हुउ = मैं – ....,
हुउसउ = हो सकता हूँ – २८,
हुय = – १५४,
हुवऊ = होकर – ....,
हुवासणु = हुताशन (अग्नि)– १५६,
हूतइ = होकर – १६७,
हूल = हल्ला – १७४,
हूवउ = – २३२,
हूं = मैं – १६३, ३०२, ... आदि,
हेम = – ४३२,
हेला = धाक – ३६६,
होइ = होना – २, २०, ... आदि,

हो।इसइ = होवेगा – २८३,
होउ = है – २६६, ५०६,
होरिण=चिन्ता – १४२,
होति = – १५३,
होनि = अगवानी – १२३,
होय = – ५८,
होसइ = होगा – ४७, ५६, ५८,
होसहि = होंगे – १,
होह = होय – ३५०,
होहि = – २३०, २४२,
हंटे = घूमे – ३८६,
.... आदि,
हंसइ = हंसते हैं – ११६, १४३,
.... आदि,
हंसकूट = – ३६४,
हंसगइगमरिण = हंस की चाल चलने वाली – ४६, ...
६०, १०२,
हंसतूल = हंस के समान – २६६,
हंसागमरिण = हंस गामिनी – १५४,
२७४, ...आदि,
हंसागवरणी = हंस गामिनी – १५५,
हंसि = हंसकर – ७३, १६५,
हंसिनी = – २७७,
हंसु = हंस – ६१,
हांकि = हांकि – ३६८,
हिंडइ = घूमना – २२६,
हुंतउ = होकर – २००,
हुंति = होने पर भी – ३२५, ४३०,
हूंतउ = (था) – २४४, ५४४,

॥ इति ॥

अर्थ-संशोधन

प्रस्तुत रचना हिन्दी की एक प्राचीन काव्य-कृति है। इसमें अपभ्रंश शब्दों की बहुलता है। प्रकाशन के पश्चात् पुस्तक को देखने पर कतिपय अर्थ संशोधन अपेक्षित लगे, उन्हें नीचे दिया जा रहा है। इनमें लगभग आधे स्थलों पर मेरे द्वारा दिये हुए अर्थ हैं, उनके हमने तारक चिन्ह लगा दिये हैं, शेष आधे स्थलों पर नये अर्थ प्रस्तावित हैं। आशा है पाठक इन अर्थों पर विचार करेंगे।

*१. ८. ३· 'धर सिर लाइ' का अर्थ किया गया है 'साष्टांग नमस्कार करके', होना चाहिये 'धरा पर सिर रखते हुए'। साष्टांग नमस्कार भिन्न होता है।

२. ३९. ३: 'सहिउ तहि मछिंदु मउरउ ण दीसइं' का अर्थ किया गया है 'मछिन्दु (मछन्द) मउरउ ण (मुकुट बिना)', 'सहिउ' को कदाचित् होना चाहिये 'महिउ', क्योंकि 'मकार' युक्त नाम वाले पदार्थों का ही इस छंद में उल्लेख हुआ है, और इस पाठ को लेकर अर्थ होगा— 'मही (छाछ) तथा मत्स्येन्द्र (बड़ी मछलियाँ) तथा मयूर भी नहीं दीखते थे।

*३. ७४. २: अर्थ में दिये हुये 'इससे अधिक क्या कहूँ' के लिये मूलपाठ में कोई शब्दावली नहीं है और न उससे अर्थ में ही कोई स्पष्टता आती है।

*४. ९१. ३: 'जाणू थाणू विहितहि घणे' का अर्थ किया गया है— 'घुटनों के नीचे स्थान टिकोणे बहुत घने थे' किन्तु 'जानु-स्थान' से 'घुटनों के नीचे का स्थान' अर्थ नहीं लिया जा सकता है, न वह स्थान सघन ही होता है। संभवत: जाणू=मानों, थाणु/_स्थाणु = स्तंभ, विहि = दोनों, तहि = वहाँ हैं अत। अर्थ होगा 'उसके [दोनों पैर ऐसे थे] मानों वहाँ दो सघन (स्तंभ) स्थाणु हों':

*५. ६३. ३: 'नीले चिहुर स उज्जल काछ' का अर्थ किया गया है, 'उज्ज्वल एवं नील वर्ण की रोमावलि थी'। 'रोमावलि' उज्ज्वल वर्ण की किसी भी तरुणी की नहीं हो सकती है। अर्थ संभवतः होगा, 'उसके चिकुर (केश-पाश) नीले (श्याम) थे, और उसकी कक्षा (कटि पर की फेंटी) उज्ज्वल [वर्ण की] थी'। किन्तु तीसरे और चौथे दोनों चरणों के तुक में 'काछ' है, इसलिये असम्भव नहीं कि 'काछ' दोनों में से एक चरण में स्मृति-भ्रम से आ गया हो, पाठ कुछ और रहा हो।

*६. १०६. ४: 'चन्दन सिंचि लइ उछंग' का अर्थ किया गया है, 'उसे चंदन से सींच कर सचेत कराया गया'। होना चाहिये, उसे (उस चित्रपट को) चन्दन से सिक्तकर [विमलमती ने] क्रोड (गोद) में ले लिया'।

*७. १२२. ४: 'चंपापुरिहि पइठ' का अर्थ किया गया है, 'चम्पापुरी की ओर चले', किन्तु होना चाहिए 'चंपापुरी में प्रविष्ट हुए'।

*८. १२३. ३: 'भउ हल्ल कल्लोलु' का अर्थ किया गया है 'शोरगुल एवं प्रसन्नता छा गयी', जबकि होना चाहिये 'हल्ल (तुमुल शब्दों) का कल्लोल (तरंगोल्लास) सा हुआ'।

*९. १२६. ३: 'समदी विमलमती विलखाइ' का 'कुमारी विमलमती को विलखते हुये विदा किया'—अर्थ देते हुये अन्य अर्थ के रूप में दिया गया है' 'समधी (ब्याही) विलखती हुई विमलमती को', जो कि संभव नहीं है, क्योंकि 'समदी' 'समधी' से भिन्न शब्द है, और दोनों में से किसी शब्द का भी अर्थ 'ब्याही' नहीं होता है।

१०. १२८. ३: 'आइ कुमारी' का अर्थ किया गया है 'कुमारी आ रही है', किन्तु 'विमलमती' उस समय कुमारी नहीं, विवाहिता और जिनदत्त की पत्नी थी और उसका 'जुए के समय वहाँ उपस्थित रहना' पाठसिद्ध भी नहीं है। अतः 'आइ कुमारी' का अर्थ सम्भवतः होगा, 'क्वार की [जुआ खेलने की] फसल आगई है'।

११. १५६. ४: 'हाइ बाइ गुसंइ सहि छाड़ि कंति गयंउ कंत मोहिं' के 'हाइ बाइ गुसंइ सहि' का अर्थ नहीं किया गया है, जो कि सम्भवतः होना चाहिए 'हाय बाई (माँ), गुस्से के साथ—'। केवल दो स्थानों पर कवि ने फारसी-अरबी शब्दों का प्रयोग किया है और उनमें से एक यह है।

*१२. १६६. २: 'अन पर परितहि दीनउ भोगु' का अर्थ किया गया है, 'उस पर (गंधोदक) पड़ते ही भोग में रखने योग्य हो गया', जब कि होना चाहिए उस (अशोक) ने अन्य स्वभाव में पड़कर भोग (फल-फूल) दिये'।

*१३. १७०. २: 'तिन्हइं हार पदोले (पटोले) किए' का अर्थ किया गया है: 'उन्हें अब हरे एवं मजबूत कर दिये', किन्तु होना चाहिये, 'उन नालियरों ने भी' जैसे रमणियाँ हारों तथा पटोलों—रेशमी वस्त्रों से करती है, [प्रसन्न होकर] हार-पटोल किये (पुष्पपत्रादि से अपना अलंकरण किया)।

१४. १८२.२: 'ते बाखर भरि चले वहूत' का अर्थ किया गया है, 'वे भी अपना सामान बाखरों में भरकर चलें' किन्तु होना चाहिये 'वे भी बहुतेरा बाखर (क्रय-विक्रय का पदार्थ) [वेष्ठनों में] भरकर चले'।

१५. १८४. १-२: 'पूतु न जाणउ बाखर आदि, कोड़ि सींग भर लइ जेवादि' अर्थ किया गया है 'उन्होंने बाखरों में क्या है, यह न जानते हुये भी कोडियों एवं सींगों को बैलों पर लाद लिया', किन्तु होना चाहिये, 'पूत (पुत्र-जीवक—एक फल-जिसके बीजों की मालाएँ बनती थीं, जो प्रायः बच्चों को स्वस्थ रखने के लिये पिन्हाई जाती थीं) के बाखर (सौदे) का तो आदि (परिमाण) ही ज्ञात न होता था और जवादि (एक सुगंधित द्रव्य) का एक कोटि सींग (बैलों) का भार ले लिया गया'।

१६. १८४. ४: 'दुइ बोहथु भरि वेणा लए' का अर्थ किया गया है, 'जिससे दो जहाज भर लिए और वेणा नगर (को जाने का संकल्प) लिया', किन्तु होना चाहिये, 'दो जहाजों का भार [उसने] वेणा (खस) का ले लिया'।

*१७. १८६. २: 'गए विलावल कइ पइ पसारि'–जिसमें 'पइ पसार' न हो कर पाठ 'पइसारि' होना चाहिये, का अर्थ किया गया है 'वे विलावल तक चलते गये, किन्तु अर्थ होगा 'वे बेलाकुल (बन्दरगाह) के प्रवेश [द्वार] पर पहुँच गए'।

*१८. १८६. ३: 'वलद महिष सवुदइ निरु करहिं' का अर्थ किया गया है, 'उन्होंने बैलों और भैंसों को दूसरों को दे दिया', किन्तु होना चाहिये, उनके बैल और भैंसे निश्चय ही शब्द करते थे'।

*१९. १९३. ४: 'सुरा सेतु दीसइ सु अणंतु' का अर्थ किया गया हैं, अनन्त जल ही जल चारों ओर दिखाई पड़ता था', किन्तु होना चाहिये, [वहां] अन्तहीन [सा] सुरा-सेतु [उन्हें] दिखाई पड़ रहा था [जिसे छोड़ते हुये वे आगे बढ़े]'।

२०. १९९. १–२: 'पणासइ धणु जलु जिणवरु नाहु, भव अंतर दीठिउ जलवाहु' का अर्थ किया गया है, 'वहां जल के मध्य जिन–चैत्यालय था तथा वहां उन्होंने भव से पार करने वाले जिनेन्द्र भगवान के दर्शन किये', जब कि होना कदाचित् चाहिये, [उन्होंने जिनेन्द्र भगवान से निवेदन किया], 'हे जिनेन्द्र नाथ, हमारा धन जल में प्रणष्ठ होना चाहता है, क्योंकि हमें भव (समृद्धि?) में जलवाह (जल-जंतु-विशेष) दिखाई पड़ा है।'

*२१. २१३. २: 'आहूठ······डि उद्धसे जिणदत्तु' का अर्थ पाठ त्रुटित होने के कारण नहीं दियो गया है, किन्तु तत्सूचक कोई सकेत होना चाहिये था। 'उद्धसे' 'उद्ध्वस्त हो गए' अथवा 'उद्ध्वस्थ थे' है।

२२. २२१. ४: 'मिठिया कि अण वाणहि हणहि' में 'अण वाणहि' का अर्थ नहीं किया गया है, 'अण वाणहि' —है 'बिना बाणों के'।

*२३. २२५. २, ३६५. ३: 'मडउ' का अर्थ मुंडी (मुंड) किया गया है, जब कि होना चहिये 'मृतक' = मुर्दा, [मनुष्य का] शव।

*२४. २२८. २: 'कासुतणर कहाहि' का अर्थ किया गया है, 'जिससे कौनसा पुत्र नर कहा जायेगा'। पाठ त्रुटित है, अवशिष्ट शब्दों का अर्थ होना चाहिये कदाचित् 'तू किसीका··· कहलाए।'

२५. २४६. ४: 'वहु रोवहि अरु धीजहि नयणु' का अर्थ किया गया है, 'तुम बहुत रो रही हो, अब नेत्रों को धैर्य दो' किन्तु होना कदाचित् चाहिये, 'तुम बहुत रो, और नेत्रों को बरबाद कर रही हो।'

२६. २५०. १: 'रहिउ उन ठाउ (नठाउ?)' का अर्थ नहीं किया गया है। अर्थ होगा 'सभी कुछ नष्ट हो (?) गया था।'

*२७. २५५ ४: 'पाय लागि जिणदत्त संभालि' का अर्थ किया गया है 'उसके (विमलमती) चरणों में लगकर जिनदत्त को पुकारा', जबकि प्रसग-सम्मत अर्थ होना चाहिये, 'उसने [जिनेन्द्र के] चरणों से लगकर जिनदत्त को [सस्वर] स्मरण किया।'

*२८. २५६.४, ३६२.१, ३६५.४: 'भविय' का अर्थ 'भव्य' किया गया है, जब कि होना चाहिये ∠ भविक = मुमुक्षु। (दे० छंद २५०.३, ४३८.२)
*२९. २६५.२: 'आवहु अज्ज न मारउ बोलु' का अर्थ किया गया है 'आओ, मारने के बोल मत बोलो' किन्तु होना चाहिये, 'आओ, आज मैं बोल न मारूंगा (छुरी मारूंगा),

३०. २६५.३: 'तो न मुणसु जो अैसो करउ' का अर्थ किया गया है, 'जो ऐसा नहीं करेगा', होना चाहिये, 'तो मैं मनुष्य नहीं, यदि मैं ऐसा करूं (केवल बोल मारूँ)'।

३१. २६८.३: 'णं सुरेन्द्र जो थापिउ सुरहं' का अर्थ किया गया है, 'मानों इन्द्र ने ही वहां स्वर्ग की स्थापना की हो', किन्तु होना चाहिये, 'मानों वह सुरेन्द्र है जो [उस पद पर] देवताओं द्वारा स्थापित किया गया हो।'

*३२. २७१.४: 'अचाभउ मुतभउरुव मुरारि' का अर्थ नहीं किया गया

है, शब्दावली ज्यों की ज्यों अर्थ में भी दुहरा दी गई हैं, किन्तु अर्थ होगा, 'जिसका अत्यद्भुत पुत्र रूप मुरारी हुआ है ।

३३. २७४.३: 'रेह सुमई सुय पदमणि' का अर्थ तत्सम शब्दों में दुहरा भर दिया गया हैं— 'रेखा सुमति सुता पद्मिनी है', जबकि अर्थ होना चाहिये [और] सुमति रेखा है जो पद्मिनी कन्या है— अर्थात् जन्म से पद्मिनी है ।'

*३४. २६०.२: अर्थ में दी हुई शब्दावली 'जिससे उसका मुख चमकने लगा' का आधार मूल पाठ में नहीं है, और न इससे अर्थ में ही कोई स्पष्टता आई है ।

*३५. २६२.२: 'मण चिंति अयासि उपमंड' का अर्थ किया गया है, 'वह पास आगई', किन्तु होना चाहिये, 'मन द्वारा चिन्तित होते ही वह आकाश में [जहाँ जिनदत्त था] उत्पतित हो गई (उड या उठ आई)' ।

*३६. २६८.३: 'विण्णु विचित्तहु वेगह गहो' का कोई अर्थ नहीं किया गया है. होना चाहिए 'उस विज्ञ (जिणदत्त) ने [विमान पर चढ़ने पर] विचित्र वेग ग्रहण किया' ।

*३७. ३०१.१, ४१५.१: 'अघाइ' का अर्थ 'थक कर' और 'अपार' किया गया है, जबकि होना चाहिये, 'तृप्त होकर' और 'भर-पेट' । (दे० ५०४.४)

३८. ३०४.१: 'सती तिरी ते नाह मुजाण' का अर्थ किया गया है, 'सती वह है जो (अपने) सुजान (नाथ) के सामने (अपना) अस्तित्व मिटा दे', जब कि होना चाहिये, 'सती स्त्री अपने स्वामी को [ही] जानती है ।"

*३९. ३२२.१: 'झडत्ति' का अर्थ 'खीझकर' किया गया है, किन्तु होना चाहिये झटिति = शीघ्र ही' ।

*४०. ३२६.४: 'जिणदत्तु भणति नारि मइ दिठु' का अर्थ किया गया है, 'नारी (विवाह योग्य स्त्री) को मुझे बताइए', किन्तु होना चाहिये 'जिसे जिणदत्त कहा जाता है, उसकी नारियों (पत्नियों) को मैंने देखा है ।'

*४१. ३३३.३–४: 'तउ मे देव तिनि सीखी कला, जौ न हसाउ पाहणु सिला' का अर्थ किया गया है, 'हे देव! मैंने तो वह कला सीखी है कि मैं पाषाण की शिला को भी न हंसा दूं (तो मेरा क्या नाम)', जब कि होना चाहिये, 'हे देव, तब तो मैंने वह कला सीखी ही नहीं, यदि मैं पाषाण–शिला को (भी) न हँसा दूँ।'

४२. ३४१.४: 'सो बुलाई' का अर्थ किया गया है, 'वह लौटकर,' जबकि होना चहिये, 'उस [मौन धारण किए हुई] स्त्री को बुलवाकर [मौन तोड़कर] बोलने के लिए प्रेरित कर'।

४३. ३४२.२: 'सुणि सुणि तिरिया मेलउ परिया जहा गयउ सोइ' का अर्थ किया गया है, 'हे स्त्री सुनो, सुनो, जैसे ही वह (सागर में) गगा, वह छोड़ दिया गया', जब कि होना चाहिये, 'हे स्त्री! सुनो, सुनो, [समुद्र में] छोड़ दिये जाने पर वह जहाँ गया'।

४४. ३४४.३: 'देई देई जाम जाम तहि बहु रयण समत्थि' का अर्थ किया गया है, 'वह उसे बार-बार रत्न देने लगा', जब कि होना चाहिये 'अभी वह उसे समस्त [प्रकार के] बहुतेरे रत्न देने लगा'।

४५. ३५५.४: 'भव लावत लयउ जिणदत्त' का अर्थ किया गया है, 'उसके भव (जन्म) का ज्ञान कराते हुये पकड़ा', किन्तु होना चाहिये, 'जिनदत्त उस [हाथी को] भँवाने (चक्कर देने) लगा'।

४६. ३६०.४: 'सव पुरु सामि अचंभो भगउ' का अर्थ किया गया है, 'सभी पुरुषों को आश्चर्य हुआ', जब कि होना चाहिये, '[उसने कहा,] "हे स्वामी, समस्त पुर को आश्चर्य हुआ–"'।

४७. ३६२.३–४: 'जो मोहिउ पूतलिय पहाण, पुण्यवंत को सकइ पहाण (वखाण?)' का अर्थ किया गया है 'जो पत्थर की पूतली को देखकर मोहित हो गया, उस पुण्यवंत की कितनी प्रशंसा की जावे?' किन्तु होना चाहिये,

'जिसने पाषाण की पुतली को मोहित कर लिया उस पुण्यवंत की प्रशंसा (?) कौन कर सकता है ?'

पाषाण शिला को तारुणी विद्या द्वारा मोहित कर हँसाने और उसके द्वारा लोगों का मनोरंजन करने का प्रसंग कुछ ही पूर्व आया है (छंद—३३५-३३६), दोनों चरणों के तुक में 'पषाण' है, जिनमें से पहला प्रसंग के लिये अनिवार्य है और दूसरा अर्थ-हीन, इसलिए दूसरे के स्थान पर पाठ संभवतः 'वखाण' होना चाहिये था।

*४८. ३६३.१: 'परिहसु लियउ दिसंतर करइ' में 'परिहसु' का अर्थ 'खुशी के साथ' किया गया है, किन्तु 'परिस' ∠ परिहास = [लोक द्वारा किया जाने वाला] उपहास है, जुए में ग्यारह करोड़ रुपये हार जाने के लोक-परिहास के कारण ही जिणदत्त देशान्तर गया था (दे० छंद १५६)।

४९. ३६३.२: 'जहि कौ हाथ अंजणी चडइ' का अर्थ किया गया है 'जिसने अपने हाथ से अंजनी (गुटिका) चढ़ाई', किन्तु होना चाहिये 'जिसके हाथ अंजनी गुटिका चढ़ी' (दे० छंद १५२)।

५०. ३७६.३: 'अण छाजत इहसइ सबु कोइ' का अर्थ किया गया है, 'यहाँ सब अनचाहा हो रहा है', जब कि होना चाहिये, 'अशोभन को सभी लोग हँसते हैं।'

५१. ३८४.४: 'अति करि मथियउ कालकुठु होइ' के 'कालकुठु' का अर्थ किया गया है 'कालकुष्ट', होना चाहिये 'कालकूट', समुद्र से उसके अत्यधिक मंथन के कारण 'कालकूट' निकला था।

५२. ३९२.२: 'किन पत तौ मिलवहु वइसारि' का अर्थ किया गया है, 'तब उन्हें बैठाकर मिल क्यों नहीं लेते?' जबकि होना चाहिये. 'तब उन्हें बिठाकर उनमें [अपना] प्रत्यय (विश्वास) क्यों नहीं मिलाते (उत्पन्न करते) हो?'

*५३. ४०९.४ 'कोदइ' का अर्थ 'चांवल किया गया है, किन्तु 'कोदई'

कोदव ∠ कुद्दव ∠ कुद्रव (चांवल से भिन्न) एक प्रकार का निकृष्ट धान्य है।

५४. ४११ ३: 'मूवित (मूषित)' का अर्थ 'प्रसन्न हुई' किया गया है, जब कि होना चाहिये 'आभूषित हुई'।

५५. ४१८ ३–४: 'निय म [न] विरह न पावइ जाएा। धूतह दिण्ण राइ की आएा।' का अर्थ किया गया है, 'इस वियोग के वह कोई कायदे-कानून नहीं जानता था, किन्तु उसने तो धूर्त को राजा की दुहाई दिलादी', जबकि होना चाहिये, '[अपनी स्त्रियों को देखने पर] अपने मन में जब उसे उनमें वियोग के लक्षण नहीं ज्ञात हुए, तो उसने उक्त धूर्त को राजा की आन(सौगन्ध)दी।'

५६. ४२५.२: 'हाहा कारु [अ] पर किउ तवहि' का अर्थ किया गया है, 'तब दूसरी ने हाहाकार किया', किन्तु होना चाहिये, 'तब [उसकी] अपर स्त्रियों ने भी उसमें हुंकारी भरी – उन्होंने भी उसकी भांति उक्त धूर्त को पति स्वीकार किया'।

*५७. ४२५.४: 'निय सामिउ तिन्हु खाडइ बहिउ' का अर्थ किया गया है, 'अपने स्वामी पर तीनों ही खड्ग चलाओ', जब कि होना चाहिये, 'अपने [विदेश से लौटे हुये वास्तविक] पती पर तीनों ने खड्ग चलाया है।'

५८. ४२६.१–२: राय पमुह सब जाएहु झूठ' का अर्थ किया गया है 'सब कुछ (हप्पा सेठ के वचन को)', जब कि कदाचित् होना चाहिये '[उन दुष्टाओं के] समस्त कथन को'।

५९. ४३२.२: 'संभलि पुहूम ताह मुह बात' का अर्थ किया गया है, 'हे पृथ्वीपति! उसकी बात को स्मरण कर', जब कि होना चाहिये, 'हे पृथ्वीपति, मेरी बात सुनो'।

*६०. ४३२.४: 'हेम(हम?)पिउ देव नहीं सावलउ' का अर्थ किया गया है, 'हमारा पति तो, हे देव! सोने का सा है, सांवला नहीं है, किन्तु 'हेम' पाठ, जिससे 'सोने का सा' अर्थ लिया गया है, असंगत है, उसके स्थान पर शुद्ध पाठ

'हम' होगा, जिसका अर्थ होगा 'हमारा' ।

*६१. ४३८.४: 'सइ राजा उठि लागिउ पाइ' का अर्थ किया गया है, 'सब राजा के चरणों से लगे', जब कि होना चाहिये 'राजा सइ (स्वयं) उठकर उस (जिणदत्त) के पैरों लगा' ।

६२. ४४१.४: प्रति में पाठ 'सीरघ' है, जिसके स्थान पर 'सीघर' का सुझाव दिया गया है, किन्तु 'सीरघ' ठीक इसी प्रकार (छंद ४६८ में) आया हुआ है, इसलिए लगता है कि प्रति का पाठ अशुद्ध नहीं है ।

६३. ४४४.२, ४५६.१: प्रथम स्थान पर 'ठाठा' का अर्थ 'उठकर' किया गया है, दूसरे स्थान पर 'ठाठा करना' अर्थ में वह यथावत् है, किन्तु 'ठाठा करना' का अर्थ 'सज्जा करना' तथा 'ठाठा' का अर्थ 'सजे-बजे हुए' ज्ञात होता है ।

६४. ४४६.१: 'देस कुछार' का अर्थ 'कुछारु देस' किया गया है जो कि निरर्थक है, किन्तु शुद्ध पाठ 'कुछार' के स्थान पर 'कुठार' ∠ 'कोठार' ज्ञात होता है (दे० छंद ४७१) जो सं. कोष्ठागार=भण्डागार, भण्डार है ।

६५. ४५३.३–४: 'हाकि निसाण जोडि जणु हणे, अपुनइ देश पलाणे घणे' का अर्थ किया गया है, 'जब समस्त निशानों को जोड़कर उन पर चोट की गई तो बहुत से स्वतः ही अपने देश भाग गये', जब कि होना चाहिये– 'हक्का (पुकार) लगाकर जब सेना के लोगों ने निशानों पर आघात किए, तो अनेक देश [और उनके राजा] अपने–आप हां भाग निकले' ।

*६६. ४५६. ३: ' परिजा भाजि गई जहि राउ ' का अर्थ नहीं किया गया है, होना चाहिये 'प्रजा भागकर वहां गई जहां पर [गढ में] राजा था' ।

६७. ४५७. ४: 'रचे मारु कहु सीसे घणी' का अर्थ किया गया है, 'मार करने के लिये अनेकानेक शिरस्त्राण रचे गये' किन्तु होना चाहिये 'मारों (योद्धाओं) ने अनेक कौसीसें (∠कपि शीर्ष=बुर्जें) बनाइं' ।

६८. ४५८. १: 'कोटा पा [गार] (उ) त्तंग अपार' का अर्थ किया गया है, 'कोट के पास ऊंची प्राकार थी', जब कि होना चाहिये, 'कोट का प्राकार अत्यधिक उत्तंग (ऊंचा) था'।

६९. ४६०. ३: 'सुहनाल' का अर्थ 'तोप' किया गया है, किन्तु 'सुहनाल' एक योद्धा का नाम है, जो आगे राजा चन्द्रशेखर के दूत के रूप में जिणदत्त के पास जाता है। (दे० ४६४. २, ४६९. १)।

७०. ४६५. २: 'हाकिउ कणइ दंड परिहारि' का अर्थ किया गया है, प्रतिहारी ने स्वर्णदण्ड हांका (हिलाया)'. जबकि होना चाहिये 'कनक-दण्ड धारण करने वाले प्रतिहारी ने उसे हांका (पुकारा)'।

*७१. ४६९. ४: 'देवि सीसु धिर लगिउ पाउ' का अर्थ किया गया है, 'विश्वास दिलाकर उसने राजा के चरणों का स्पर्श किया'। 'देवि सास' के स्थान पर शुद्ध पाठ कदाचित् 'दे विसासु' मान कर किया गया है, किन्तु राजा (जिणदत्त) के दर्शन करते ही उसे विश्वास दिलाने का कोई प्रश्न नहीं उठता है, इसलिये यह अर्थ प्रसंगसम्मत नहीं है। शुद्ध पाठ 'देवि' के स्थान पर कदाचित् 'देखि' होगा, इसलिये अर्थ होगा, 'राजा (जिणदत्त) को देखकर दूत अपना सिर रखते हुए उसके पैरों लगा'।

७२. ४७५ ३: 'अकहा कहा किम कहियइ वेठि' का अर्थ किया गया है। 'यहां बैठकर न कहने योग्य बात क्यों कहते हो ? ' किन्तु होना चाहिये, 'यहां बैठकर वह अकथनीय (जिणदत्त के द्वारा नगरश्रेष्ठी जीवदेव को मांगने का) कथन कैसे कहा जाए ?

*७३. ४७९.२: 'वरु किनु नयरहं कुइला बवइ' के 'कुइला' का अर्थ 'कुचला' किया गया है, किन्तु 'कुइला' 'कोयला' है. और 'कोयला बोना' एक मुहावरा है, जिसका अर्थ होता है 'आग लगाना'।

*७४. ४८३.१: 'तूटउ इ.........सामिय दुहु तणउ' का अर्थ किया गया है,

'हे स्वामी, (अपने दोनों) का दुःख टूटा हुआ है (दूर हुआ चाहता है)' किन्तु प्रसंग के अनुसार अर्थ इसके ठीक विपरीत होना चाहिये, 'हे स्वामी [हमपर] दुःख का ....टूट पडा है'।

*७५. ४६४.१: 'विसुरिउ' का अर्थ 'विसूर कर (चिन्तारहित होकर)' किया गया है, जबकि इसके विपरीत उसका अर्थ 'चिंताकर (सोचकर)' होना चाहिये ।

*७६. ४६७.३: 'किछु परि जाणउ देउ निरुत' का अर्थ किया गया है, 'तो हे देव ! हम कुछ निरुत जानें (कहें)', किन्तु होना चाहिये 'हे देव, हमें निरुक्त का (ठीक बात) कुछ परिज्ञान हो'।

*७७. ५०३.१: 'भए वघाए हारु निसाण' के 'हारु निसाण' का अर्थ किया गया है, 'पौसो (धौसा) पर चोट पड़ी'। 'पौसा' निरर्थक है और 'हारु' भी अशुद्ध है, उसके स्थान पर पाठ प्रति में 'हुए' होना चाहिये और 'हुए निसाण' का अर्थ होना चाहिये निसानों (धौंसों) पर चोट पड़ी'।

७८. ५०५.३: 'एक चित्त दुख (दुव) रहिय सरीर' का अर्थ किया गया है, दोनों एक-चित्त दो शरीर होकर रहने लगे', किन्तु 'दुव' न होकर प्रति में पाठ 'दुख' है, अतः अर्थ होना चाहिये, 'वे एकचित्त और दुःखरहित शरीर के थे'।

७९. ५०७.१-२: 'करहि राजु भोगहि परठइ, नीत पणीत सतीण भए' का अर्थ किया गया है, '(जिणदत्त) राज्य करते हुए भोग में प्रस्थापित हो गए और नित्य प्रति उनमें सतृष्ण होते गये', किन्तु 'नीत पणीत' 'नित्य-प्रति' नहीं हैं, वह 'नीति-पणति' ज्ञात होता है, जिसका अर्थ 'नीति और व्यवहार' होना चाहिये ।

*८०. ५१२.१-२: 'उक्क वडण वइराइ निमित्त, लहिवि भोय संसारह वित्त' का अर्थ किया गया है, 'उल्कापात के निमित्त से भोग ग्रहण को संसार की स्थिति को बढ़ाने वाला जानकर उसे वैराग्य हुआ', किन्तु मेरी राय में

चाहिये होना उत्क-पतन (वासना से निवृत्ति) और वैराग्यलाभ के निमित्त ही संसार के वित्त का भोगलाभ कर'।

८१. ५१३.३: 'परिवारह सो हियउ महंतु' का अर्थ किया गया है, 'अपने परिवार के सहृदय से महान् हो गया', जब कि होना कदाचित् चाहिये, 'परिवार पूर्ण होने के कारण वह हृदय का महान् हो गया था'।

८२. ५१५.१: 'गुरु' का अर्थ '(उसका) गुरु' लिया गया है, किन्तु शब्द संभवत: केवल 'पूजनीय व्यक्ति' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

८३. ५१७.२: 'कह (हुमु) णीसरु गालिउ कम्मु' का अर्थ 'कह' के अनन्तर 'हु' लगा करके किया गया है, 'मुनीश्वर ने कहा, कर्मों को नष्ट करो'। किन्तु कदाचित् होना चाहिये [तब] मुनीश्वर ने, जिन्होंने कर्मों को गालित कर रखा था—छान रखा था, 'कहा'।

*८४. ५२१.१: 'बारह भावण कहिय वियारि, संजमु नेमु धम्मु तउ चारि का अर्थ किया गया है 'बारह भावनाओं का विचार (चिन्तन) करो, तथा' संयम, नियम, (दश–लक्षण) धर्म और तप इन चारों को.........'। किन्तु होना चाहिये, 'मैंने बारह भावनाओं को विचार कर कहा और संयम, नियम, धर्म तथा तप इन चार के विषय में बताया'।

८५. ५२१.३: 'अब्भंतरि परमप्पा बुज्झि' का अर्थ किया गया है, 'परम पद के लिये अभ्यंतर (अन्तरंग) रूप से जानो', जब कि होना चाहिए, 'अभ्यंतर (अन्त:करण) के परमपद को जान कर'।

८६. ५२२. ४: 'शुक्ल ज्झाण वज्जरिउ अलेउ' का अर्थ किया गया है– 'शुक्ल ध्यान के भेदों को जान कर ग्रहण एवं त्यागो', जब कि होना चाहिये, 'मैंने अलेप (अलिप्त) शुक्ल ध्यान का कथन किया'।

*८७. ५२९.४:, ५३०.२: 'वणिजी' का अर्थ 'लेन देन' किया गया है होना चाहिये 'वाणिज्य' = 'क्रय विक्रयादि'।

*८८. ५३४·३: 'तहि थइवि' का अर्थ 'वहां से चयकर' किया गया है, जो निरर्थक लगता है, होना चाहिये 'उन्हें त्याग कर'।

*८९. ५३९' २: 'रय' का अर्थ 'काम' किया गया हैं, किन्तु कदाचित् होना चाहिये 'रजस'।

९०. ५४०. १: 'निरूहउ' का अर्थ 'उदासीन' किया गया है, किन्तु निरूह ∠निरूह ∠णिरोव = आदेश, आज्ञा है।

९१. ५४१. ३: 'मणमथ सहिउ दीउ मइ दीठ, मुक्ति लछि ते नियड वइठ का अर्थ किया गया है, 'मुक्ति लक्ष्मी के निकट बैठने पर भी मुझे कामदेव पर विजय प्राप्त करने की दृष्टि दी है' किन्तु होना चाहिए, 'उहके द्वीप को मैंने मन्मथ के सहित देखा है, मैंने देखा है कि वह मुक्तिलक्ष्मी के निकट बैठा है'।

*९२. ५४४. ४: 'मुणिवरु गणु अछइ जित्थु' का अर्थ किया गया है, 'जिसको मुनिश्रेष्ठ उत्तम कहते है' किन्तु होना चाहिये 'जहां मुनि श्रेष्ठ गण [रहते] हैं'।

*९३. ५४७. २: 'साहु सगि' का अर्थ 'सारे' किया गया है, किन्तु 'सगि' संभवतः 'संगि' है और इस संशोधन से अर्थ होगा, 'साधु [जिणदत्त] के संग में [रहकर]'।

९४. ५५०. ३: 'देखि विसूरु रयउ फुड एहु' में से 'देखि विसूरु' का अर्थ नहीं किया गया है। उसका अर्थ होगा 'उसे देखकर तथा [उसका] चिन्तन कर'।

माताप्रसाद गुप्त